# विश्वचेतना के मनस्वी सन्त

मुनि सुमन्त भद्र

# विश्वचेतना के मनस्वी सन्त :
# मुनि श्री सुशील कुमार

•

प्रेरक :

## श्री सुभाग मुनि जी महाराज

लेखक :

## मुनि सुमन्त भद्र

•


## अहिंसा प्रकाशन

अहिंसा विहार

सी-ब्लाक, डिफेन्स कालोनी,

नई दिल्ली

अहिंसा प्रकाशन
सी-ब्लाक, डिफेन्स कालोनी,
नई दिल्ली

© मुनि सुमन्त भद्र

प्रथम संस्करण १९७४
प्रतियाँ : ३०००
मूल्य : पन्द्रह रुपया

मुद्रक :
आदर्श प्रेस, कूचा चेलान, दरियागंज, दिल्ली-६

वितरण केन्द्र :
१. १२, शहीद भगतसिंह मार्ग,
नई दिल्ली-१
२. अहिंसा भवन, शंकर रोड,
नई दिल्ली-६०

# समर्पण

परमश्रद्धेय मुनि श्री छोटेलाल जी महाराज
को
उन्हीं के यशस्वी शिष्य का जीवन-वृत्त
सविनय, सप्रणाम

# स्तवन

सत्य-शील-शुचि-मार्दव-संयुत, मुदित उदार विचार-समन्वित
दिव्य गुणों के पावन संगम, मुनि सुशील जन-जन से वन्दित
सस्मित आनन दीप्त प्रभामय, ओजमयी मधुरामृत वाणी
उरतन्त्री के उद्वेलन से, निःसृत जन-जन की कल्याणी
हे प्रत्यूष—किरण के उद्गम, तपः तेज के धारक भास्कर
ऋद्धि-सिद्धि के मन्त्र मनोहर, अखिल विश्व के धर्मधुरन्धर
मानवता के चिर उद्बोधक, त्रस्त जगत् के शरण, सदय हो
पाकर तुम्हें शरण्य, कल्पतरु, सारी मानव-जाति अभय हो !

—मुनि सुमन्त भद्र

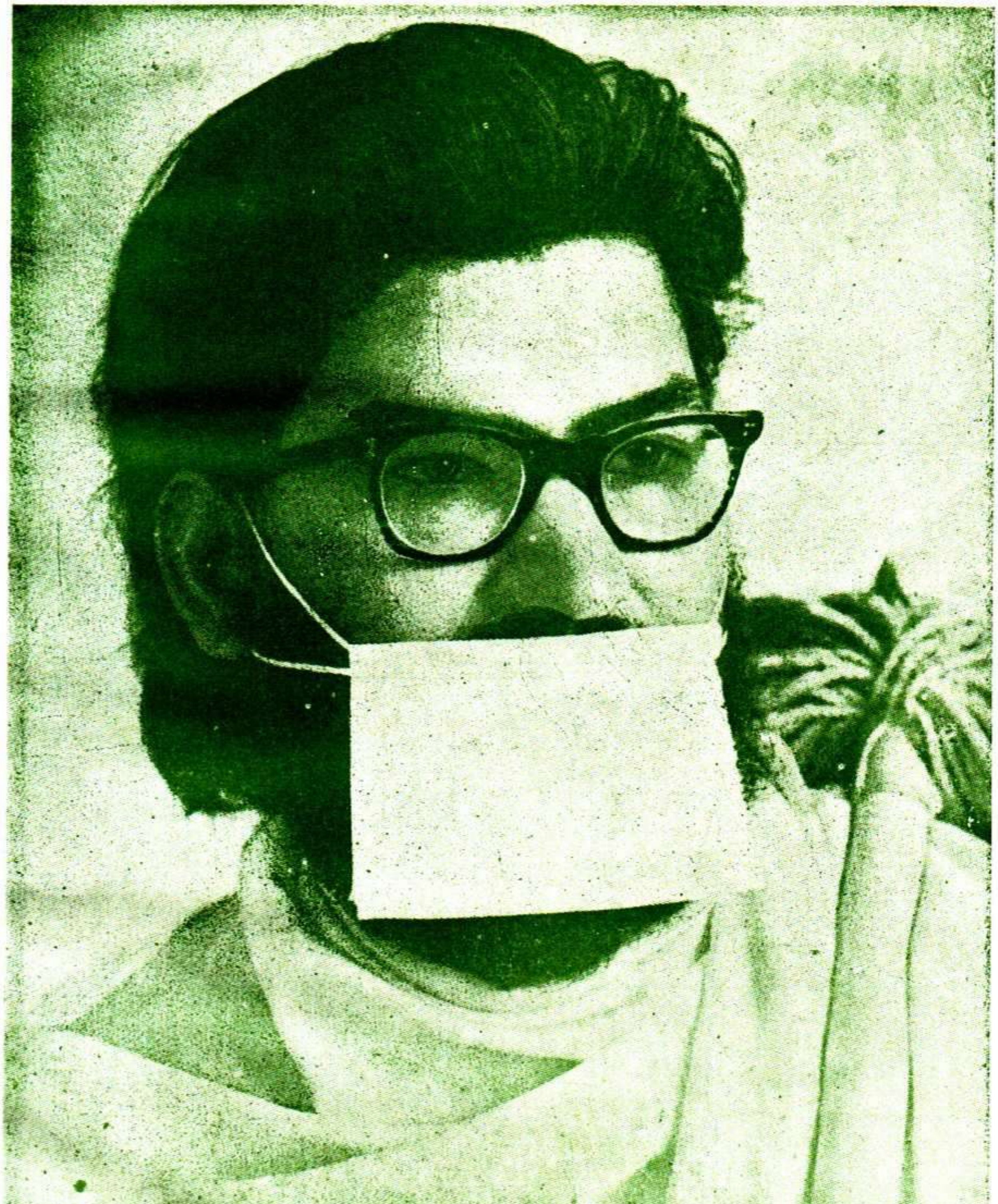
मुनि श्री सुशील कुमार जी म०

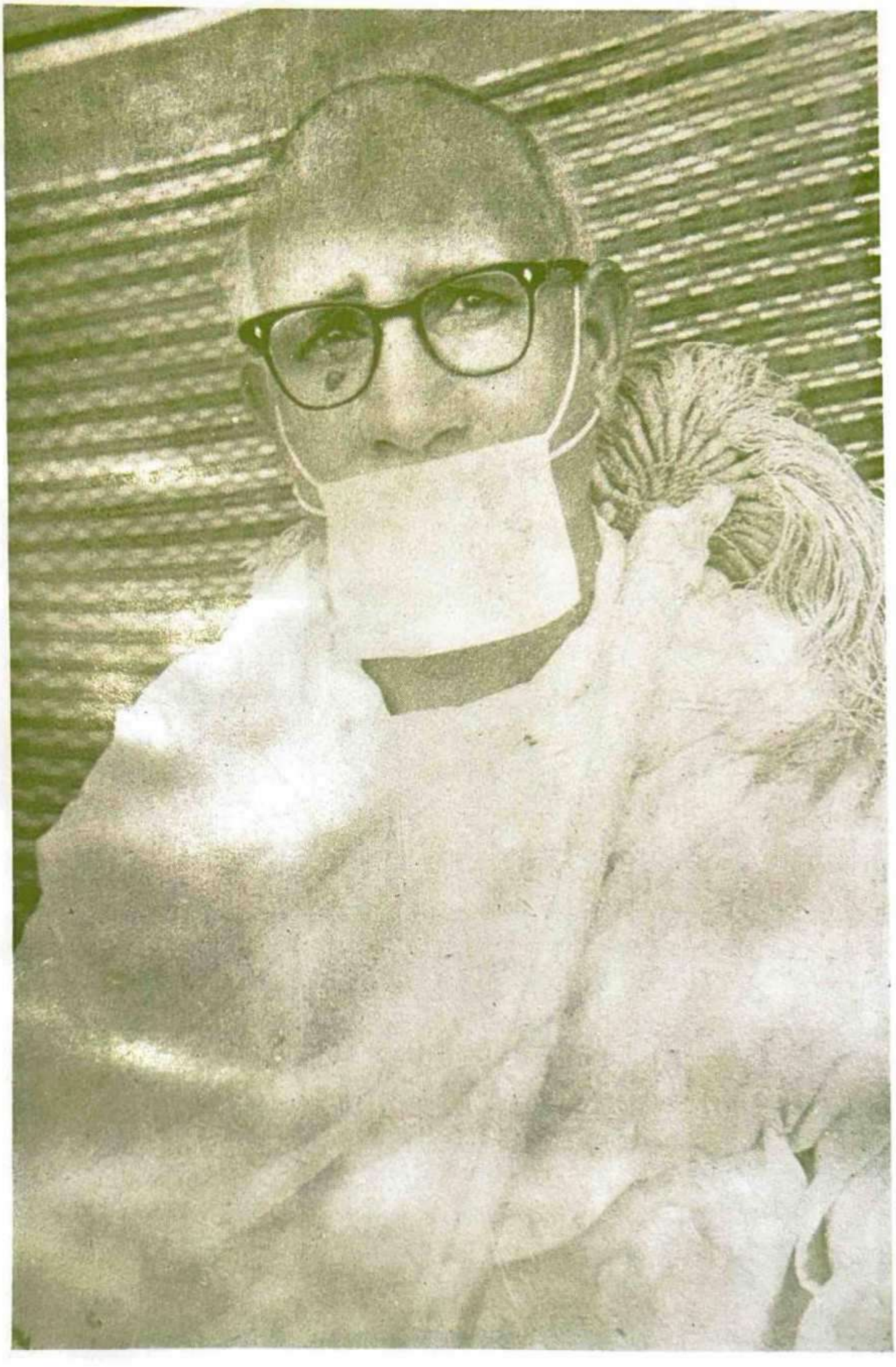

मुनि जी के दीक्षागुरु मुनि श्री छोटेलाल जी महाराज

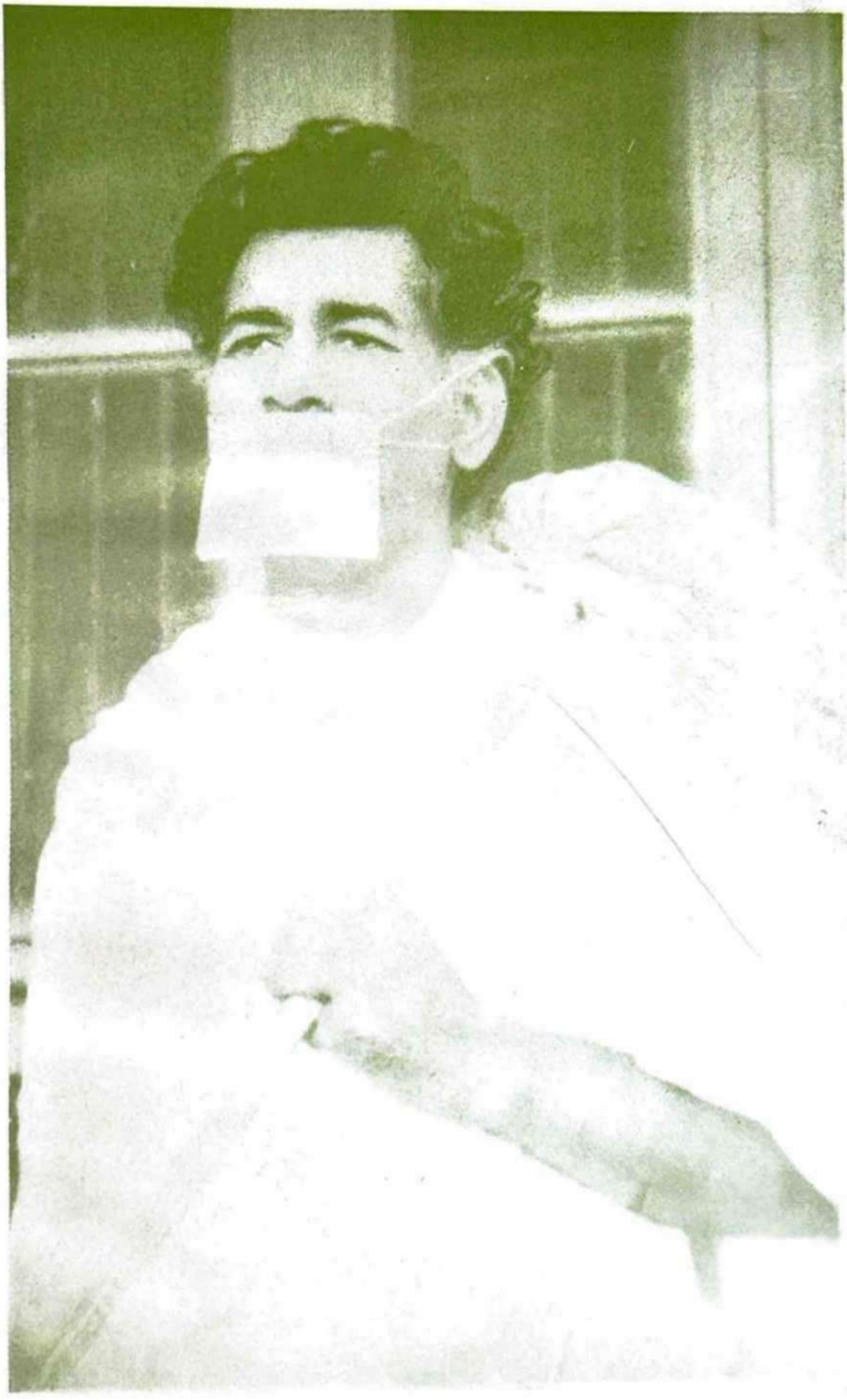

श्री सुभाग मुनि जी म० जिनकी प्रेरणा से पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका

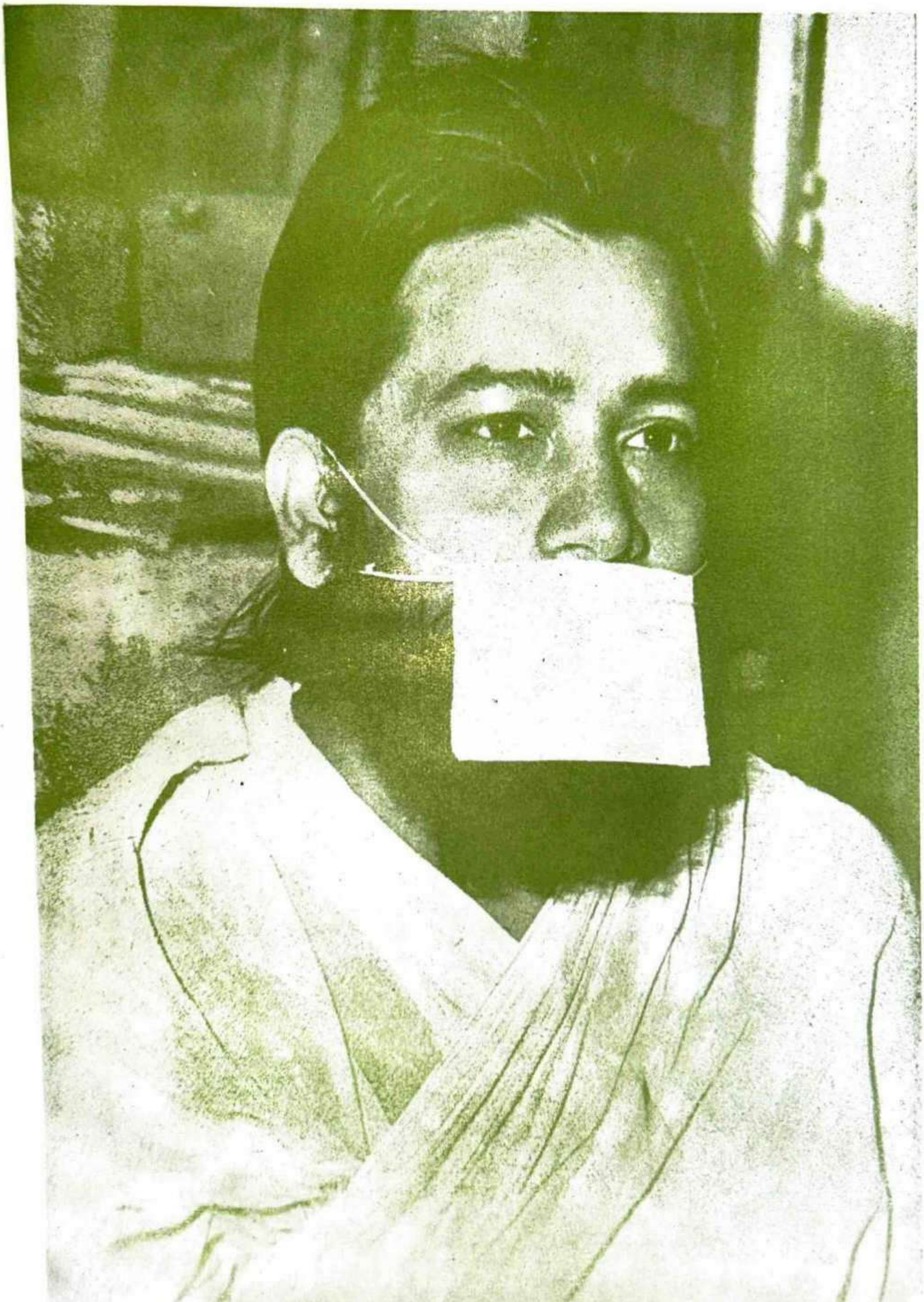

लेखक

# अनुक्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | आभास | ... | १ |
| २. | भविष्य का कल्पतरु | ... | ४ |
| ३. | जन्म एवं शैशव | ... | ९ |
| ४. | दीक्षा | ... | १६ |
| ५. | तरुणाई के सपने | ... | १८ |
| ६. | महत्संकल्प | ... | २७ |
| ७. | सादड़ी सम्मेलन | ... | ३० |
| ८. | समन्वय की ओर | ... | ४५ |
| ९. | नई उद्भावनायें | ... | ५० |
| १०. | विश्व-धर्म सम्मेलन | ... | ५४ |
| ११. | प्राणिरक्षा और अभयदान | ... | ८१ |
| १२. | गोरक्षा आन्दोलन | ... | ८४ |
| १३. | नये-नये धर्म, नये-नये रूप | ... | ९१ |
| १४. | एशियाई धर्मों का मिलन | ... | ९६ |
| १५. | कल्याण-मार्ग : धर्मयोग | ... | ९९ |
| १६. | धार्मिक सम्प्रदायों में परम ऐक्य | ... | १०१ |

# अनुशंसा

मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज भारत के ख्यातनामा सन्त हैं। मानव-जाति के अभ्युत्थान के लिए समर्पित उनका यशस्वी जीवन जन-जन के लिए अभिनन्दनीय है। अपने जीवन की अनेकविध उपलब्धियों को उन्होंने जन-कल्याण के लिए जिस सहृदयता, निःस्पृहता और मनस्विता से अर्पित कर दिया है उसका उदाहरण समय के आयाम में अविस्मरणीय प्रतिमान है। आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में जव कभी भूमा सन्त और सृजनशील स्वप्नद्रष्टा का इतिहास निर्मित होगा, मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। कितना आश्चर्य होता है उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर जव हम देखते हैं कि सामान्य शिक्षा-दीक्षा एवं सामाजिक परिवेश में निर्मित एक व्यक्ति विश्वचेतना का प्रतीक वन गया और जीवन तथा जगत् के वरेण्य मूल्यों की स्थापना में उसे सर्वाधिक सफलता और ख्याति मिली!

बुद्ध, महावीर, राम, कृष्ण, गुरुनानक, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और गांधी की अविच्छिन्न परम्परा के इतस्ततः अनेकानेक अवतारों और सन्त-महात्माओं ने भारतीय संस्कृति की चिन्तन-परम्परा को युगानुकूल भाव-सामग्री दी और उस चिरन्तन भावधारा को अजस्र एवं अक्षुण्ण रखा। इस सन्दर्भ में जव हम मुनि श्री सुशील कुमार जी के कृतित्व एवं विचार-सरणि का मूल्यांकन करते हैं तो पाते हैं कि बीसवीं शताब्दी में सांस्कृतिक तत्त्वों के निर्माण में उनकी भूमिका विश्वधर्म की है। शिक्षा, राजनीति, धर्मनीति और अध्यात्म सवमें उनकी गहरी पैठ है और अपने सूक्ष्म दृष्टि-विन्दु और विश्लेषण की प्रतिभा के कारण उसे विस्तृत संदर्भ में उन्होंने संवारा है।

विज्ञान और तकनीकी युग की अहिंसा-दृष्टि को संरचना में उनका मनोशिल्प सार्वभौम रूप से स्वीकृत एवं मान्यताप्राप्त है। उनके आचार-विचार में अहिंसा केवल बुद्धि-विलास या तर्क-वितर्क न होकर जीवन्त आचार-पद्धति और जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि है। अहिंसक समाज को रचना की दिशा में उनके अभिनव प्रयोग भारत की आध्यात्मिक युवा पीढ़ी की संरचना की आधारशिला हैं। धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ग और वर्ण की विनाशिनी संकीर्णताओं के परिवृत्त को तोड़कर विश्व-धर्म एवं विश्व-परिवार की परिकल्पना को मूर्तस्वरूप प्रदान करने में वे अहर्निश रत हैं। उनके महत्संकल्प और अध्यवसाय का ही परिणाम है कि उनके निर्देशन में अनेक संस्थाएँ चल रही हैं और आज की तनावपूर्ण एवं कुण्ठाग्रस्त युवापीढ़ी के लिए आशा एवं विश्वास के अनुरूप अभिनव मानदण्डों का सृजन कर रही हैं।

मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज का जीवन-वृत्त सहजीवन और सह-

चिन्तन की ओर पाठकों को प्रेरित करेगा, इस अभिलाषा से 'विश्वचेतना के मनस्वी सन्त' को जन-जन के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुस्तक के लेखन से लेकर मुद्रण तक मेरे आराध्य गुरुवर्य श्री सुभाग मुनिजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहे हैं। इतने निःस्पृह और जागरूक सन्त की छत्रछाया में रहकर यह कार्य जितनी सुगमता से मैं कर पाया उसके लिए किन शब्दों में उनका आभार व्यक्त करूँ! जब-जब मुझे प्रमाद अथवा विस्मृति ने आविष्ट किया, उनके स्नेहसिक्त उद्बोधन ने मेरी तन्द्रा भंग की और मैं नित नयी स्फूर्ति से इस कार्य का सम्पादन करता रहा। दूसरों का नैतिक शोषण कर अपने यश-गौरव की उद्घोषणा करने वाले महत्त्वाकांक्षी सन्त तो बहुत मिल जायेंगे किन्तु अनाम रहकर दूसरों के निर्माण में अपनी समस्त उपलब्धियों का दान करने वाले अति न्यून होंगे। आज मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज जो कुछ हैं उसमें श्री सुभाग मुनि जी महाराज का बहुत बड़ा योगदान है। जो भी कोई स्पृहणीय वस्तु या अलंकरण उन्हें मिला, उन्होंने मुनि श्री सुशील कुमार जी के श्रीचरणों में अर्पित कर दिया और स्वयं अवढरदानी अनगार की तरह बिना किसी ऐहिक भावना के तटस्थ-भाव से जीवन-यापन कर रहे हैं। इस कृतित्व का समस्त श्रेय उन्हीं को है।

पितामह गुरुदेव परमश्रद्धेय जैन-धर्मभूषण स्थविरपदविभूषित मुनि श्री छोटे लाल जी महाराज के वात्सल्य एवं स्नेह ने मेरे मनोबल में वृद्धि की और विभिन्न स्थलों पर अपने रचनात्मक मार्ग-दर्शन के द्वारा पुस्तक निर्माण में उन्होंने मुझे गतिशील बनाया। उन्हीं पूज्यचरण के करकमलों में इस कृति को समर्पित करते हुए मैं अद्भुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। प्रमादवश पुस्तक में निहित त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।

इस पुस्तक के निर्माण में मेरे अग्रज सन्त मुनि श्री अमरेन्द्र कुमार जी महाराज, श्री अशोक मुनि जी महाराज, मुनि श्री धर्मकीर्ति जी महाराज, श्री मदनलाल जैन, आदर्श प्रेस के संचालक श्री छुट्टनलाल गुप्त, कुमारी मधु जैन, श्रीमती विमल प्रकाश जैन श्री सुरेन्द्र मोहन बंसल आदि का स्नेहपूर्ण सहयोग मुझे समय-समय पर मिलता रहा है। श्री अरिदमन जैन, स्वर्गीय पृथ्वीराज जैन के सुपुत्रों श्री पुरुषोत्तम जैन, श्री महेन्द्र कुमार जैन, श्री चमन लाल जैन, श्री डिप्टीमल—जजमल जैन आदि से परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से मिले प्रत्येक प्रकार के सहयोग के लिए मैं उनके प्रति विनम्र आभार व्यक्त करता हूँ।

—मुनि सुमन्त भद्र

जैन भवन
१२, शहीद भगत सिंह मार्ग,
नई दिल्ली-१
रक्षाबन्धन, ३ अगस्त १९७४

# आभास

आज जिस बहुमुखी व्यक्तित्व को हम मुनि श्री सुशील कुमार के नाम से जानते हैं, वह अनेक व्यक्तित्वों का समन्वित रूप है जिसमें उर्मिल सागर का गाम्भीर्य, अंशुमाली का तेज, वैश्वानर की दीप्ति, सुधाकर की सौम्यता, हिमाद्रि का आचल्य, मरुत् का उद्दाम वेग, वसुन्धरा की क्षमा और ध्रुव का धैर्य है; उसकी तितिक्षा और अभीप्सा में नचिकेता और प्रज्ञा में शुकदेव का व्यक्तित्व झांकता है। कितना विलक्षण होगा वह व्यक्ति जो दरिद्र-नारायण की झोंपड़ी से राजमहल तक शान्ति और स्वस्ति का अलख जगाता चलता है! कितनी गहराई होगी उसकी आंखों में जो वात्सल्य और करुणा की जगपावनी विमल धारा का उत्स है! विश्वास नहीं होता होगा लोगों को कि एक अनगार संन्यासी जिसके पाँव नंगे, जिसके सिर पर कोई छत्र नहीं, कुटुम्ब के नाम पर एक कृश काया, किन्तु हृदय में 'बसुधैव कुटुम्बकम्' की उदात्त भावना, किस प्रकार जनता का हृदय-सम्राट् बना, अपनी धुन में चल रहा है। बसन्त आता है अलस-उन्मत्त और चंचल, पतझर आता है—उदास—कुण्ठित और श्रीहीन, ग्रीष्म का आतप और शीत के तुषार किन्तु सबसे निरपेक्ष सदाबहार यह मनस्वो कौन है जिसकी आँखें शून्य की विभुता से साक्षात् करती हुई किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित हो गयी हैं! अवश्य यह कोई महायोगी होगा जो नश्वर संसार की भंगुरता की उपेक्षा करता हुआ आत्मकैवल्य की आभा से सम्मोहित हो चुका है। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता वह तो हृदय की भग्न तन्त्री में एक दीर्घ आलाप भर कर झंकृत करता जा रहा है परिवेश को! सम्भवतः अमृत बाँटने की अभिलाषा उसके पांव धरती पर टिकने नहीं देती, वह चल रहा है गहरे-उथले, उबड़-खाबड़ विविध व्यवधानों की बिना परवाह किये!

सघन आम्र कुंजों में जब कोकिल का मर्मभेदी गीतस्वर मुखरित होता है, नवोढ़ा कलियों का शृंगार अलि-गुंजन को मौन निमंत्रण देता है, पवन-बाँसुरी का मादक-स्वर केलि-सरोवर की अभिराम जलराशि को स्पन्दित करता है, सौरभ के भार से झुका हुआ पवन-

दोल अवश हो जाता है, तरुण तपस्वी की कुंचित केशराशि विभा के तिमिरांकित प्रमाद को अपदस्थ कर मदन-विजयिनी की संज्ञा से अभिहित होती है। उसकी काव्यमयी वाणी में नवयुग के अभिनव प्रत्यूष की अमर भैरवी निनादित होती है जिसे सुनकर यौवन उद्बुद्ध होता है, सुप्त आत्मगौरव जागृत होता है और तमस् के अभेद्य आवरण को चीरती हुई असंख्य किरणें युग को अभिनव आलोक से पूर देती हैं। मौन और आहत स्वरों की रागिनी अंगड़ाई लेती है और बज उठती है प्रयाण की भेरी। ऐसा सम्मोहन, ऐसा उद्बोधन, ऐसी प्रेरणा — क्या किसी एक ही व्यक्तित्व से निःसृत हो रही है ! संगीत-योगी तानसेन ने जब दीप मलार गाये थे, लक्ष-लक्ष मृण्मय दीपों से अग्निशिखा प्रज्वलित हो उठी और जब मेघ-मलार का समय आया, तृषिता धरित्री को तप्त करने के लिए मेघराशि आकाश-मण्डल से उतर आयी थी किन्तु जो एक साथ दीप और मेघ मलार लेकर अवतरित हुआ हो उसके प्रभा-मण्डल की कल्पना की जा सकती है ?

अनेक अनुमान, अनेक सम्मभावनायें, असंख्य प्रतिमान और अमित प्रतीकों का पुंजीभूत रूप-असंख्य दीपों की एक शलाका, असंख्य पुष्पों की एक सुरभिराशि, अनेक तीर्थों का एक संगम, अनेक मेरुओं का एक सुमेरु, अनेक मातृकाओं में एक प्रणव—क्या वही एक में अनेक और अनेक में एक हैं—मुनि सुशीलकुमार।

अनादि काल से चली आ रही भारत की सांस्कृतिक परम्परा में संतों का योगदान अविस्मरणीय है। ऋषभदेव से लेकर व्यास, वाल्मीकि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, बुद्ध, महावीर, समर्थ गुरु रामदास, त्यागराज, तिरुवल्लुवर, एकनाथ, ज्ञानेश्वर, जगद्गुरु शंकराचार्य, पीर निजामुद्दीन, कबीर, गुरुनानक, चैतन्य महाप्रभ, तुलसी, मीरा, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रमण महर्षि तथा श्री अरविन्द और महात्मा गांधी जैसे अनेक ऋषि-मुनियों और मनीषी द्रष्टाओं ने भारतीय संस्कृति की गरिमा को काल के विभिन्न आयामों में अक्षुण्ण रखा है। हिमालय से कन्याकुमारी और कच्छ से बंगाल की खाड़ी तक सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का जो अनाहत संगीत युगों से मुखरित हो रहा है उसमें इन्हीं सन्तों की आत्मा ध्वनित हो रही है। यदि हम भारतीय इतिहास को एक अविच्छिन्न सन्त-परम्परा की की समुज्जवल गाथा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

भारत केवल नदियों, पर्वतों, मैदानों और वनों से घिरा एक भूखण्ड ही नहीं है, उसका अपना भावात्मक स्वरूप भी है। जहाँ की नदियों के कल-कल में दया, क्षमा करुणा और आर्जव का संगीत मुखरित हो रहा है, जहाँ के वनों में वेदमन्त्रों की ऋचाएं और सन्तों की मधुरामृत वाणी गूंज रही है, जहाँ की शस्यश्यामला धरित्री के अंचल में जीवनदायी स्तन्य और वात्सल्य है; वही देवभूमि है भारत जिसके लिए कहा गया है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत-भूमि-भागे
स्वर्गापवर्गास्पद-हेतु-भूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्

प्रकृति का केलिगृह भारत जहाँ गिरिराज हिमालय के हिमाच्छादित उत्तुंग शृंग, गंगा, यमुना, सरस्वती, रावी, चिनाव, झेलम, सतलज, व्यास, कृष्णा, कावेरी आदि नदियों का

कल-कल संगीत, बसन्त के मादक वातावरण में आम्रमंजरी पर पंचम स्वर में कूकती कोकिला का कण्ठ-स्वर, विविध वर्णी पुष्पों के गुच्छ पर रसलोलुप भौंरों का गुंजन, अपने कोमल आघात से हीरे के वज्र-हृदय को विदीर्ण कर देने वाला शिरीष कुसुम, सूर्य और चन्द्रमा को दर्पण दिखाने वाली अंगनायें मृगी और मृगलोचनी – क्या ये सब मिलकर स्वर्ग की सुषमा को पृथ्वी पर नहीं उतार लाये हैं ? वास्तव में भारत-भू पृथ्वी का स्वर्ग है। तभी तो यह महादेश विश्व का अनादिकाल से आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है ! अनेक लुटेरे, अनेक भिखारी आये पर यहाँ की सम्पदा कभी रिक्त नहीं हुई। अनेक आपदाओं और झंझावातों से जूझते रहने पर भी यहाँ के नर-नारियों के अधरों की अल्हड़ मुस्कान और बालक-बालिकाओं की खिलखिलाहट कभी मलिन नहीं हुई। विश्व में कई संस्कृतियां जन्मीं, आज सब भू-लुण्ठिता और वंचिता हैं किन्तु भारतीय संस्कृति का गौरव कभी धूमिल नहीं हुआ क्योंकि इस विशाल संस्कृति में ओज और माधुर्य, प्रज्ञा और पारमिता, आस्था और विश्वास, श्रद्धा और समर्पण, सत्य, निष्ठा और धृति, स्नेह और वात्सल्य —न जाने कितने अमृत स्रोत हैं जिनसे आप्लावित इस महनीय संस्कृति का अमरत्व कोई भी आक्रामक छीन नहीं सकता।

विश्व-विजेता सिकन्दर महान् हो या मुहम्मद गोरी, नादिरशाह, महमूद गजनवी अथवा बाबर, सबको इस वत्सला भूमि ने कुछ अद्भुत दान दिया है। बाहरी सभ्यताएं भी आकर यहाँ पोषित हुई हैं। यहाँ स्वागत सब का हुआ है। ईसा मसीह हों चाहे पैगम्बर मुहम्मद, जरथुस्त्र हों चाहे कनफ्यूशियस, सुकरात हों चाहे पाइथागोरस, सबकी विचारधारा को यहाँ एक नया आयाम मिला है। साँची का स्तूप, ताजमहल, अजन्ता, एलोरा और एलिफंण्टा की गुफायें, खजुराहो का मुखरित शिल्प विधान, सबने विश्व के कला-कौशल स्थापत्य को कुछ-न-कुछ दिया। अमृता शेरगिल और जामिनीराय की कला-कृतियों को देखकर हमें यह अभाव नहीं खलता कि माइकलेंजिलो या पाब्लो पिकासो इस देश में क्यों नहीं हुए। हनुमान और राम-लक्ष्मण को अपने कनवास पर उतारते हुए मकबूल फिदा हुसेन और राम-कृष्ण स्तुति में फैयाज़ खाँ का अलाप : प्रदर्शित करते हैं कि कला की उपासना हो या भक्ति, जाति या सम्प्रदाय, कभी बाधक नहीं बन सकते। यह भारत की वीणा के विभिन्न तारों की एक बानगी है; उन सब में भारत की आत्मा की स्वरलहरी तरंगित हो रही है।

●

# भविष्य का कल्पतरु

भारतीय संस्कृति के निर्माण में सन्तों का योगदान सर्वोपरि है। मन, वाणी और काया से हिंसा असत्य, चौर्य और मैथुन का परित्याग कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की पंचवेणी के तीर्थसलिल से अखिल विश्व के कल्याण का व्रत लेकर चलने वाले महान् सन्तों ने आत्मपरीक्षा और सत्यं, शिवम् सुन्दरम् का पावन उपदेश देकर जन-मानस को जहाँ निःश्रेयस् का मार्ग दिखाया वहीं अपने लिए नाना प्रकार के उपसर्गों का वरण किया है। जैन धर्म की चर्या का तो कहना ही क्या। क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंश अचेल, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण, स्पर्श, जल, सत्कार-पुरस्कार, निशंक, प्रज्ञा, अज्ञान और दर्शन—इन २२ परिषहों का वरण कर असिधारा मार्ग पर अनवरत रूप से चलता है। भगवान् महावीर ने साधु जीवन के स्वरूप का निदर्शन करते हुए बताया है कि साधु को ममतारहित, निरंहकार, निःशंक, और प्राणिमात्र पर समभाव होना चाहिए। लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान सब को समभावपूर्वक स्वीकारते चलना अनगार का जीवन धर्म है।

श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रवर्तित अक्षुण्ण श्रमण-परम्परा के मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज २०वीं शताब्दी के विद्यमान प्रकाश स्तम्भ हैं। वे एक विरत, निःस्पृह, संयमशील और सच्चारित्र्य के धारक मनस्वी सन्त हैं, जिन्होंने यौवन के प्रारम्भ के पहले ही किशोरावस्था में संसार के वैभव-विलास और माया-मोह को छोड़ कर चिरकालीन उदासीनता के महापथ का अनुसरण किया और नाना प्रकार की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए सम्प्रदाय, जाति, धर्म, भाषा, समाज और वर्ग के अनेकानेक विषम कंटकों से भरे मार्ग का अपनी अद्भुत क्षमता से परिष्कार कर राजमार्ग का निर्माण किया, जिसका अनुसरण कर आने वाली पीढ़ियां जीवन और जगत् की वास्तविकता से परिचय प्राप्त कर सकेंगी और उनके जीवन-यापन की पद्धति का पथ

अधिकाधिक प्रशस्त, समुज्ज्वल, बाधारहित एव सरल होगा । आज भारत में मानव समाज को सही नेतृत्व प्रदान करने वाले सन्तों में मुनिश्री सुशील कुमार जी का नाम सबसे पहले लिया जाता है । अपने आध्यात्मिक जीवन में मानवमात्र के कल्याण का ज्योतिकलश लेकर चलने वाले मुनि श्री का वर्चस्व न केवल भारत अपितु विश्व-मानस ने एक स्वर से स्वीकार किया है । राजनीति का नेता हो, चाहे आध्यात्मिक सन्त, व्यापारी हो अथवा व्यवहारवादी समाज शास्त्री—सबने आपकी गरिमामय जीवन-सरणि से पूर्णता एवं अभिवृद्धि का मंत्रस्वर ग्रहण किया है । दूसरों के प्रति शिरीषकुसुम से भी कोमल और अपने लिए वज्र से भी कठोर मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज का लोकोत्तर चरित्र जन-जन के लिए वंदनीय है । भगवान् महावीर ने चण्ड कौशिक को विष के बदले अमृत का दान दिया, महात्मा गांधी ने अपने हत्यारे नाथू राम गोडसे को किसी प्रकार पीड़ित न करने को कहा, महात्मा ईसा ने अपना वध करने वाले लोगों के लिए कहा कि हे ईश्वर, इन्हें क्षमा करना क्योंकि ये नहीं जानते कि इनका कर्तव्य क्या है । इसी प्रकार उदारमना मुनिश्री के जीवन में अनेक ऐसे प्रसंग आए जहाँ उन्होंने बुराई का प्रतिकार भलाई से कर के अपने हृदय की विशालता, सहिष्णुता और अहिंसावादिता का परिचय दिया । बहुत कम ऐसे लोग मिलते हैं जो ख्याति एवं सिद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने के बाद भी इतने विनम्र, सरल और निरभिमानी रहे हों । तुलसी दास ने कहा भी है :—'प्रभुता पाई काहि मद नाहीं' किन्तु मुनिश्री सुशील कुमार जी ने प्रत्येक ऐसी परिस्थिति में जहाँ मान और दम्भ का प्रश्न आया, अपनी ऋजुता और दम्भ-राहित्य का ही परिचय दिया है । महाश्रमण मानतुंगाचार्य ने कहा है :—

**स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,**
**नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।**
**सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मि,**
**प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ।**

—हे भगवान् इस संसार में बहुत-सी माताओं ने सैंकड़ों पुत्रों को जन्म दिया किन्तु किसी भी मां ने तुम्हारे सदृश पुत्र को जन्म नहीं दिया । सारी दिशायें किरणों को धारण करती हैं किन्तु अनन्त किरणों के धारक सूर्य को तो केवल पूर्व दिशा ही जन्म देती है । भगवान् आदिनाथ के सम्बन्ध में कही गई यह उक्ति बहुत अंशों में मुनिश्री के सम्बन्ध में भी घटित होती है । संसार के मनीषी वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टाईन ने महात्मा गांधी के सम्बन्ध में कहा है—"भावी पीढ़ियां कठिनाई से विश्वास करेंगी कि गांधी जैसा हाड़-मांस का पुतला इस पृथ्वी पर कभी विचरा था ।" आइंस्टीन की यह उक्ति मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज के विषय में पूर्णतया चरितार्थ होती है । अध्यात्म की यह चलती-फिरती प्रतिमा विश्व में किस के लिए वरणीय नहीं है ! धर्म और समाज के यथातथ्यपरक नेतृत्व को अपने भीतर समाहित करते हुए शांतिप्रियता, गुण-ग्राहकता, विद्वत्ता, लोकप्रियता, आदर्शवादिता और वैराग्य-सम्पन्नता से मंडित यह तितिक्षु जब चलता है, करोड़ों लोग उसके पीछे चल पड़ते हैं । दर्शक यह कहने के लिए बाध्य हो जाता है :—

**चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर ।**
**गड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गए कोटि दृग उसी ओर ॥**

सम्मोहक व्यक्तित्व, आयामरहित गति और भविष्य के स्वर्णिम सपनों की मशाल लिए चलने वाला साधुमना जननेता जब किसी उद्देश्य के प्रयाण के लिए चलता है तो लगता है जैसे त्रिभुवनविजयी आनन्द का कुसुमशर लिये चल रहा हो और सारा वातावरण किसी विशेष प्रकार के माधुर्य, सात्विक मादकता, और सम्मोहन का शिकार हो गया हो।

महापुरुषों के जीवन की यह स्वाभाविक नियति हुआ करती है कि वे अवढरदानी की तरह प्रत्येक याचक की झोली भर देते हैं किन्तु अपने न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें आकिंचन्य स्वीकार करना पड़ता है। मुनिश्री सुशील कुमार जी भी ऐसे ही अकिंचनव्रतधारी अनगार हैं। अनेक प्राणियों की तृषा को अपनी अपार करुणा के अमृत से भिगो देने वाला संबुद्ध जब सामान्य से सामान्यतर के समक्ष अपनी झोली फैलाता है तो लगता है, विश्वम्भर भिक्षु की लीला कर रहा है। ज्ञान की सम्पूर्ण गरिमा को धारण करने वाला जन-जन के प्रति जब अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है तो लगता है कि सरस्वती का अमृतपुत्र अज्ञान का शोधन करने में लगा है। न जाने कितने प्रतिमान विभूषित होते हैं, मुनिश्री सुशील कुमार के व्यक्तित्व से !

पैगम्बर मुहम्मद जब इस पृथ्वी पर अवतरित हुए, युग-मानस ने उनके प्रति सामान्य जन का व्यवहार किया। महावीर ने जब कैवल्य की अपरिमित चेतना-सत्ता को धारण किए हुए अपने आप को जन-सामान्य के बीच प्रस्तुत किया तो उनकी वाणी का नाना रूपों में अर्थानयन हुआ। सुकरात जब अपने सात्विक नीति और सत्यतापूर्ण उपदेश के लिए छल-छन्दरहित बाल-योगी के रूप में अपने को प्रस्तुत किया, विभ्रान्त जन-समाज के बीच उन्हें विषपान करना पड़ा। आखिर शिव के अतिरिक्त कौन ऐसा दिगम्बर हो सकता था जो अमृत कलश को विलगा कर त्रैलोक्य के कल्याण के लिए विषघट को अपने भीतर उतार ले ? जन-स्वस्ति के इन्हीं मानदण्डों में से एक मानदण्ड हैं—मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज, मानव की संपूर्ण इयत्ता को अपने अन्तर्जगत् में देवतुल्य स्थान प्रदान कर निर्धन की कुटिया से राजमहल तक बंधुत्व और प्रेम का अलख जगाने वाला तरुण संन्यासी अपने जीवन की अग्निवीणा पर जब स्वर-लहरियों को उतारता है तब तमसामृत दीनों का संसार आलोकित हो उठता है। फिर भी इस देवपुरुष को सन्तोष नहीं होता। वह कहता है—

**गिर चुके फूल हैं डाली के, बुझ चुके दीप हैं थाली के।**
**वनमाली तेरी पूजा का मैं दूजा क्या सामान करूँ॥**

अथवा राम के प्रति व्यक्त किए गए गोस्वामी तुलसीदास के कथन को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जाये तो कहना पड़ेगा :

**जो गति जोग बिराग यतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।**
**सो गति देत गीध सबरी को प्रभु न अधिक जिय जानी॥**
**जो सम्पति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहं लीन्हीं।**
**सो सम्पदा विभीषण कहे अति सकुहं सहित हरि दीन्हीं॥**

देने वाले तो इस संसार में बहुत हैं किन्तु ऐसा दाता कौन होगा जो याचक को देकर अपने आपको उसका कृतज्ञ माने और याचक को यह अनुभव हो—

**'तुम सो जो मांगनो न मांगनो कहायो है।'**

दीन-दुखियों की करुण पुकार सुनकर नंगे पांव चल पड़ने वाले प्राणिवत्सल का जीवनव्रत ही जब ऐसा हो तो उसकी उपमा संसार में सिवाय भागवत् चेतना के और कहां मिलेगी ? मैं नहीं मानता कि नर को नारायण के रूप में इतनी बड़ी प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला सन्त अपने प्रति इतना उदासीन हो सकता है कि अपनी भूख-प्यास, निद्रा, सुख आदि शारीरिक आवश्यकताओं का उसे भान ही न रहता हो । आत्मजागृति के क्षणों में मानव-जाति का यह कल्पतरु कोटि-कोटि वसंत अपने परिवेश में लेकर चलता है और यश का एक भी सौरभकण अपने मानसिक शरीर पर श्लिष्ट नहीं होने देता । जिसने अज्ञान के घोर तमस् में भटकती हुई पीढ़ी के मार्ग को प्रकाशित करने के लिए अपने आपको दिन-रात दीपक की तरह जलाया किन्तु जिसे दीपक होने का भान न हुआ । जो प्रत्येक तत्त्ववेत्ता के लिए सुधानिधि होते हुए भी आत्मनिवेदन के क्षणों में सामान्यतम घटक के रूप में अपने आपको स्वीकारता है । उसके स्तवन के लिए शब्द की कौन-सी कोटि समीचीन होगी ! अनेकानेक जन-प्रतिमाओं को जिसने चैतन्य बनाया उस चेतन सत्ता को क्या नाम दें ! आस्था और विश्वास के रजत लोक में मुझे जब किसी उपमान की खोज होती है, मैं अपने आप को असमर्थ पाता हूं । हिंसा, शोषण, कदाग्रह, अज्ञान, अन्याय, अत्याचार, पीड़ा और राग-द्वेष से पूर्ण जगत् के बीच जब अनन्य प्रेम की इस अखंड शलाका की ओर दृष्टि जाती है तो आशा की असंख्य किरणें एक साथ मनोभूमि में कौंध जाती हैं और लगता है कि इस अभागे युग के भाग्य को संवारने वाला शांति और विश्वमैत्री का देवदूत सबके उद्धार के लिए उद्यत हो गया है ।

अंध परम्पराओं, रूढ़ आस्थाओं और आधारहीन मूल्यों के जीर्ण-शीर्ण खंडहर को ध्वस्त कर नए आध्यात्मिक विश्व के सृजन के लिए अपने आप को समर्पित कर देने वाले शिल्पी की तरह मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज की भूमिका अपने आप में अनेक संभावनाओं को संजोये हुए अविरल गति से अग्रसर हो रही है। संसार के बुद्धिवादी दार्शनिक अथवा भौतिकवादी वैज्ञानिक इस परम सत्ता को स्वीकारें या छोड़ दें, यह निरपेक्ष रूप से एक दिन नए विश्व के निर्माण का स्वप्न साकार करेगी । हो सकता है, तर्क-वितर्क की बुद्धि अपने भीतर से इस अमृत सलिल को बह जाने दे किन्तु वह कहीं न कहीं इस रत्न गर्भा से समेरु का निर्माण कर ही लेगा । यह भी हो सकता है कि तामसी वृत्तियों के विरुद्ध उसे बहुत बड़े संघर्ष का सामना करना पड़े और आसुरी शक्तियां उसके अस्तित्व को समाप्त करने के लिए अपना समग्र अस्तित्व दाव पर लगा दें किन्तु इस अमृत बीज को भौतिक जगत् का कोई भी तत्त्व अस्तित्वहीन नहीं कर सकता । आशा और निराशा, सफलता और विफलता, उत्थान और पतन, शत्रुता और मित्रता, राग और द्वेष प्रत्येक द्वन्द्व को इस अजेय शक्ति के सम्मुख पराजित होना पड़ेगा । आने वाला विश्व जिस प्रकार के समग्र व्यक्तित्व का वरण करेगा उसमें इसका स्थान सर्वोपरि होगा । कौन जानता है इसकी मुट्ठी से कितने सूर्य एक साथ उगेंगे और विश्व मानस के भाग्य पर चिरकाल से छाया हुआ दुर्भाग्य का गहन कुहरा कितनी जल्दी विलीन हो जाएगा ! पाशविकता एक दिन इसी अमरता के हाथों पराजित होगी । मानवता के गौरवपूर्ण इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ इसी नायक की यशोगाथा से भास्वर होगा । यही ग्रहपति धराधाम पर शाश्वत भूकम्प

लायेगा । तब विश्व की कौन-सी ऐसी वाणी होगी जिससे इसकी स्वस्ति का स्वर मुखरित नहीं होगा ? पृथ्वी पर एक अभिनव अरुणोदय अवतरित होगा । दिशाओं के कंठ से एक नया गान निःसरित होगा—

**इस अभिनव विधान का नायक इस अभिनव वसंत का अलिवर**
**ज्योतिपुंज विभ्रांत जगत् का सबको आज जगाने आया**
**उतरा स्वर्ग धरा पर ऐसे धुला तमस् चिरकालिक मन का**
**परम सुशील तत्व की महिमा आओ हम सब मिलकर गायें ।**

●

# जन्म एवं शैशव

विश्ववन्द्य अभिनव भारत के निर्माता महात्मा गांधी ने कहा था—भारत की आत्मा गांवों में निवास करती है। समय-समय पर गांवों ने ही ऐसे रत्न दिए हैं जिनसे पिरो कर बनाए हुए अगणित कंठहारों ने भारत मां के वक्षस्थल को सुशोभित किया है। आज के हरियाणा प्रान्त के गुड़गांव जनपद में शिकोहपुर नाम का एक ऐसा ही ग्राम है जहाँ की प्राकृतिक सुषमा चारों ओर फैली हुई पहाड़ियों, हरे-भरे खेतों, झीलों, मनोहर वनों और नाना प्रकार के पशु-पक्षियों में बिखरी पड़ी है। यहाँ के निवासी सरल हृदय भावुक और मिलनसार हैं। इस छोटे से गांव में जहाँ मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों को न्योछावर कर देने वाले वीर सैनिक देश के सजग प्रहरी, शिक्षक और किसान-मजदूर हैं वहीं विश्व को आध्यात्मिकता का शाश्वत संदेश देने वाले महात्मा भी। विभिन्न जातियों और धार्मिक मान्यताओं के लोग एक-दूसरे से सुख-दुःख में कंधे से कन्धा मिलाकर चलते हैं। उनकी एकता, पारस्परिक प्रेम और एक-दूसरे के प्रति समर्पण की भावना अनुकरणीय है। इसी गांव के लोग एक रात्रि के गहन अंधकार और सन्नाटे के वातावरण में सुख की नींद सो रहे थे कि सहसा आकाश में घनघोर घटायें घिर आईं। बादलों की गर्जना और बिजली की कौंध से प्रकृति में एक अद्‌भुत सम्मोहन व्याप्त था। क्षण-क्षण आकाशमण्डल में कौंध जाने वाली विद्युत् रेखा रात्रि के गहन अंधकार में मानो किसी प्रकाशपुंज के पृथ्वी पर अवतरित होने की सूचना दे रही थी। सारा वातावरण मधुर संगीत से व्याप्त था। एक ब्राह्मण दम्पति अपने शयनागार में निद्रानिमग्न था। पत्नी स्वप्न-लोक के कुछ दिव्य-दृश्य देख रही थी। जब स्वप्न के दृश्य समाप्त हुए, पत्नी ने पति को सारा वृत्तांत सुनाया। सर्वप्रथम पत्नी ने पति का चरणस्पर्श किया। तत्पश्चात् स्वप्न का वर्णन प्रारम्भ हुआ। इस वर्णन को सुनकर पति का हृदय उल्लास से नाच उठा। पति ने कहा—"निश्चय ही हमारे घर में किसी चमत्कारी आत्मा का प्रादुर्भाव होगा।" पत्नी यह सुनकर हर्ष मिश्रित लज्जा से भाग खड़ी

हुई। उसका मानस-मयूर प्रसन्नता से नाच रहा था। उसके मानस-पटल पर अनेकानेक रंग-बिरंगे दृश्य चल-चित्र की तरह घूम रहे थे।

वे पति-पत्नी थे पण्डित सुनहरा सिंह और श्रीमती भारती देवी। पण्डित सुनहरा सिंह जन्मना ब्राह्मण होते हुए भी कर्मणा योद्धा थे जिन्होंने विश्व के कई युद्धों में एक सैनिक के रूप में भाग लिया। परिवार की देख-रेख का सारा भार श्रीमती भारती देवी पर था जो न केवल नाम से भारती थीं, अपितु आचार और व्यवहार में भी भारतीय नारी की समुज्ज्वल उदाहरण थीं। प्राचीन भारतीय नारी की गरिमा के अनुसार आप उच्च धार्मिक संस्कारों वाली निर्भीक और सौ दुःख पाकर भी अतिथि सेवारत आदर्श गृहणी थीं। आपकी शिक्षाओं, अनुशासन और सही मार्ग-दर्शन का ही प्रतिफल था कि परिवार के सभी प्राणी अपने-अपने दायित्वों का निर्वाह करते हुए सन्मार्ग पर अग्रसर होने लगे। आप साहस और शौर्य की साक्षात् प्रतिमा थीं। एक बार की घटना है, एक ग्रामीण बालक को उसके परिवार वालों ने सताया। आपके मातृ-हृदय से भला यह कैसे सहन हो सकता था। आपने तत्काल उसका विरोध किया। बात यहाँ तक बढ़ी कि वे लोग लड़ाई-झगड़े पर उतारू हो गए। उस समय घर में आपके सिवा अन्य कोई भी सदस्य उपस्थित नहीं था। स्वयं ही लाठी लेकर आप मैदान में उतर आईं और बड़ी बहादुरी से उन्हें ललकारा। मुकाबले में प्रतिपक्षियों को मुंह की खानी पड़ी।

धीरे-धीरे ६ मास व्यतीत हुए। १५ जून सन् १९२६ को जब एक ओर भारतवर्ष स्वातंत्र्य संग्राम में व्यस्त था और दूसरी ओर देश में साम्प्रदायिकता की आग भड़क रही थी, मनुष्य-मनुष्य के खून का प्यासा था, मां भारती की कोख से एक सुन्दर सुकान्त बालक का जन्म हुआ। चारों ओर आनंद की लहरें छा गईं। एक अद्भुत आह्लाद चारों ओर के परिवेश से परिलक्षित होने लगा। जो भी नवजात शिशु का दर्शन करता वह कृतकृत्य हो जाता। काल-क्रम से चन्द्रमा की कलाओं की तरह बाल शिशु बढ़ने लगा। जब नामकरण का समय आया तो नाम पड़ा सरदार सिंह। घर के सभी सदस्य उसे सरदार कह कर पुकारते थे। समय का विधान कहिए कि बाद में उसका नाम सही अर्थों में सार्थक हुआ और वह जनता का सरदार बना।

एक दिन की बात है, बालक सरदार जब ६-७ वर्ष का ही था कि घूमता-घूमता गांव के बाहर निकल गया और खुले वातावरण में दूर-दूर तक फैले हुए हरे-भरे खेत खलिहानों को देखता हुआ ठंडी-ठंडी समीर का आनंद लेता हुआ प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करने लगा। बालक क्या देखता है कि साथ ही के एक खलिहान में एक बूढ़ा व्यक्ति लाठी का सहारा ले कर झुका हुआ चल रहा है, जिसके चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई हैं, दन्तविहीन पोपला मुंह और शरीर अस्थिपंजर-सा प्रतीत हो रहा है। वह कभी इधर और कभी उधर आ-जा रहा है। बालक सरदार का संवेदनशील हृदय विचलित हो उठा। शीघ्र ही उसके पास जाकर उसने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की, "बाबा यहां क्या कर रहे हो? क्या यहां तुम्हारा कुछ खो गया है?" बूढ़ा व्यक्ति जिसकी आखें दया की याचना-सी करती हुई प्रतीत हो रही थीं, बोला, "नहीं बेटे ऐसी कोई बात नहीं। मैं तो यहां इस खेत की रखवाली कर रहा हूँ और जीवन में अपने किए हुए कर्मों का फल भोगते हुए आयु के शेष दिन व्यतीत कर रहा

हूँ ।'' बच्चे ने भोलेपन से पूछा, ''बाबा कर्म के फल से तुम्हारा क्या मतलब ?'' बूढ़ा व्यक्ति जिसने अपने जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे, बच्चे के इस प्रश्न का क्या उत्तर देता। जिस ने अभी तक अपने शैशव के ७ वर्ष भी पूरे नहीं किए थे । किन्तु बालक की जिज्ञासा ने बूढ़े को आश्चर्य में डाल दिया । उसने जैसे बालक सरदार की जिज्ञासा को टालते हुए कहा, ''जाओ बेटे खेलो-कूदो और जीवन का आनंद लो । समय आने पर स्वयं ही तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा !''

बालक सरदार का हृदय बूढ़े व्यक्ति की दशा देखकर करुणा से भर गया । वह बूढ़े के मन को और अधिक दुखाना नहीं चाहता था । इस लिए यह जिज्ञासा अपने मन में लिए हुए ही घर की ओर लौट पड़ा । रात्रि भर उसके मन में रह-रह कर बूढ़े व्यक्ति की शोचनीय दशा का विचार आता-जाता रहा । कभी उसके जर्जर शरीर का ढांचा उसकी आँखों के आगे घूमने लगता तो कभी विचारमग्न होकर यह सोचता कि बाबा ने कहा था कि यह सब कर्मों का फल है । समय आने पर स्वयं समझ जाओगे । आखिर यह कर्म क्या है ? मैं स्वयं इसे कैसे समझ पाऊंगा ?

समय का चक्र चलता रहा । बालक सरदार प्रतिदिन किसी विशेष विचार में खोया हुआ-सा रहने लगा । एक दिन ऐसा भी आया जब ७ वर्ष के अल्पवय में ही अपने माता और पिता का घर छोड़कर किसी और घर का मेहमान बनकर सरदार चला गया । बालक के हृदय में उथल-पुथल मची हुई थी । अपने पुत्र की यह दशा मां भारती से कैसे छिपी रह सकती थी । जब मां ने बालक की उदासी और अन्यमनस्कता का कारण पूछा तो सरदार ने सहज ढंग से उत्तर दिया, ''मां तुम्हारे घर में मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं है ।'' मां सरदार के उत्तर से आश्वस्त नहीं हुई। कोई न कोई बात अवश्य थी जिसे उसका पुत्र उससे छिपा रहा था ।

एक दिन सरदार की बुआ श्रीमती चम्पा जी का आगमन हुआ । आते ही उन्होंने बालक सरदार के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखकर भारती जी से कहा, ''तुम कितनी भाग्यशालिनी हो, ऐसा पुत्र रत्न पाकर !'' यह कहते-कहते उनकी आंखें भर आईं । इसका कारण यह था कि उनकी एक कन्या के सिवाय कोई संतान नहीं थी और भारतीय समाज में सन्तानहीना स्त्री की आन्तरिक व्यथा का अनुमान लगाया जा सकता है । श्रीमती चम्पा देवी के मन में विचार आया कि यदि यह बच्चा मुझे मिल जाये तो मैं धन्य हो जाऊँगी । एक दिन अनुकूल समय पाकर श्रीमती चम्पा ने अपनी मनोभावना सरदार के माता-पिता के सम्मुख व्यक्त कर दी । उन्होंने याचना के स्वर में कहा, ''यदि सरदार को आप मेरी झोली में डाल दें तो मेरी अन्धेरी दुनिया में उजाला हो जायेगा और मेरा स्त्री-जीवन सार्थक हो जाएगा । इसके लिए मैं जीवन भर आप लोगों की आभारी रहूँगी और प्राणपण से सरदार का लालन-पालन करूंगी ।'' श्रीमती चम्पा के इस प्रस्ताव ने पण्डित सुनहरा सिंह और श्रीमती भारती देवी को असमंजस में डाल दिया । एक ओर बहन के हृदय की व्यथा और दूसरी ओर सन्तान के प्रति मोह था । श्रीमती चम्पा की आंखों से बहती हुई अविरल अश्रुधारा ने सरदार के माता-पिता को अभिभूत कर दिया । पंडित सुनहरा सिंह ने बहन को सांत्वना देते हुए कहा, ''रो मत बहन, सरदार तुम्हारे पास रहे या मेरे पास, दोनों में कोई अन्तर नहीं है ।

तुम्हारी खुशी के लिए मैं अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का त्याग कर सकता हूँ।" इतना कह कर उन्होंने सरदार को श्रीमती चम्पा देवी को समर्पित कर दिया। श्रीमती चम्पा की आंखों से प्रसन्नता के आंसू फिर एक बार ढुलक गए। उनके चेहरे पर एक अपूर्व आभा दौड़ गई। ऐसा लगा जैसे उनका मन-मयूर अकाल में जलदोदय से नाच उठा हो। उनके हृदय की कली खिल उठी। अनेक बार उन्होंने सरदार को अपनी गोद में उठा कर चूमा, प्यार किया और अपने वक्षस्थल से चिपकाये रहीं। बालक सरदार के मन पर इस घटनाक्रम का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। निर्लेप होकर वह बालसुलभ दृष्टि से सब कुछ देखता रहा।

बालक सरदार के लिए मां भारती और बुआ चम्पा जी में कोई अन्तर नहीं दिखाई दिया। संभवतः दोनों में वात्सल्य का एक ही हृदय विद्यमान था। अब बालक सरदार अपनी बुआ जी के घर पर बड़े ही लाड़-प्यार से रहने लगा। सरदार को गन्ना चूसने का बड़ा शौक़ था। गन्ने की ललक ने ही सबसे अधिक सरदार को अपनी ओर आर्कषित किया। आज के मुनि श्री सुशील कुमार जी अब भी अपने बचपन के संस्मरण के क्षणों में गन्ने के प्रति अपने अनन्य प्रेम और झुकाव की बात नहीं भूलते। बुआ का घर मेरठ जिले के सरूरपुर गाँव में था। आज तो सरूरपुर एक ऐतिहासिक महत्व का गांव बन गया है और वहां के नर-नारियों में बालक सरदार (मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज) के जीवनक्रम की अनेक मधुर स्मृतियां जुड़ी हुई हैं। बुआ जी तथा फूफा पंडित बलवन्त सिंह जी हर समय बालक का ध्यान रखते और सदा इस प्रयास में लगे रहते थे कि कहीं बच्चे को कोई कष्ट न पहुंचने पाये।

शैशव का विकासक्रम ऐसे ही चल रहा था कि पंडित बलवन्त सिंह जी कहीं जाने की तैयारी में जुटे हुए थे। बालक सरदार ने उनसे पूछा—आप कहां जा रहे हैं ? पंडित जी ने सीधा-सा उत्तर दिया, "बेटा मैं जगरांव जा रहा हूं। बालक सरदार के कौतूहल-पूर्ण मानस के लिए इतना-सा उत्तर पर्याप्त नहीं था। उसने पुनः प्रश्न किया, "जगरांव किस लिए जा रहे हैं ?" पंडित जी ने हंस कर कहा, "बेटा, वहां एक महान् सन्त आए हुए है, मैं उन्हीं के दर्शन के लिए जा रहा हूँ।" 'सन्त' शब्द बालक सरदार के लिए नया था। उसने इच्छा प्रकट की—"मैं भी उनके दर्शन करने चलूंगा।" पंडित जी ने बच्चे को बहलाना चाहा। उन्होंने कहा, "बेटा, तुम्हारी अवस्था अभी खेलने-कूदने की है। जब तुम बड़े हो जाओगे, तब उनके दर्शन करना। किन्तु सरदार इस बात के लिए तैंयार नहीं था। उसने हठ पकड़ ली कि मैं उनके दर्शन करने अवश्य चलूंगा। उस समय बालक सरदार के मन में सहसा बूढ़े का दृश्य कौंध आया, जिसे कुछ ही दिनों पहले उसने खलिहान में देखा था। उसके मन में विकल्प उठने लगे, शायद वह सन्त उन प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा, जो अभी तक अनुत्तरित रह गए हैं। बालक के हठ के समक्ष पंडित बलवन्त सिंह जी के सभी तर्क और युक्तियां पराजित हो गईं। बालक को साथ ले कर वे जगरांव को चले। दोनों जिस महान् संत का दर्शन करने जा रहे थे वे कोई और नहीं, बल्कि पंडित बलवन्त सिंह जी के संसारी रिश्ते के भाई पण्डित रत्न मुनि श्री छोटे लाल जी महाराज थे, जो आगे चलकर मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज के दीक्षा गुरु बने।

गाड़ी गन्तव्य स्थल की ओर जा रही थी। खिड़की के बाहर सारी दुनिया भागती

हुई दिखाई दे रही थी। बाहर का सारा दृश्य चलायमान हो रहा था। बालक सरदार का मन भी अनेक प्रकार के प्रश्नों में उलझा हुआ था। सहसा उसने प्रश्न किया अपने फूफा जी से—"क्या आपके भाई को घर में कोई कष्ट था ? किसी ने उन्हें मारा-पीटा था या किसी तरह का अभाव था, जिसके कारण वे घर छोड़कर साधु हो गए ?" छोटे से बालक के मुंह से ऐसे सारगर्भित प्रश्न को सुनकर पण्डित बलवन्त सिंह को जैसे अपने इस कुलरत्न पर बड़ा गर्व हुआ। वे समझाने के स्वर में बोले, "बेटा, उन्हें घर में किसी प्रकार का न तो कोई कष्ट था और न ही कोई अभाव। सुख की सभी सुविधाएं विद्यमान थीं किन्तु पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे साधु सन्तों की संगति में रहने लगे। जब भी कोई महापुरुष गांव में आता, वे उसका प्रवचन सुनने के लिए जाते। धीरे-धीरे ऐहिक वस्तुओं के प्रति उनके मन में विरक्ति उत्पन्न होने लगी। वे हर समय खोये-खोये-से रहने लगे। ऐसे ही समय हमारे गांव में एक बहुत तेजस्वी सन्त आए। अन्य लोगों के साथ-साथ मेरे भाई भी गए और उस दिन से प्रति दिन नियमित रूप से उनका प्रवचन सुनने के लिए जाने लगे। उनके प्रवचन से छोटे लाल जी इतने प्रभावित हुए कि घर त्याग कर साधु बनने की अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त की। वह नाम से तो छोटे थे किन्तु तपस्या, ज्ञान,दर्शन और चारित्र्य ने उन्हें बड़ा बना दिया। अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके महान् पण्डित बने और फिर अज्ञान को दूर करने के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना की। हज़ारों सांसारिक प्राणियों को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी।"

बालक सरदार पण्डित बलवन्त सिंह जी के उद्‌गारों को सुनकर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। गाड़ी जगरांव पहुँची। जगरांव जैन धर्म के अनुयायियों का एक बहुत बड़ा तीर्थ बन गया है। यही वह जगरांव की पुण्यस्थलो है, जहां जैन धर्म के सिद्ध सन्त प्रातः-स्मरणीय मुनिश्री रूपचन्द जी महाराज की समाधि है, जिस पर प्रति वर्ष लाखों व्यक्ति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने आते हैं और अपने मनोवांछित फल प्राप्त कर घर लौटते हैं। स्वर्गीय श्री रूपचन्द जी महाराज ने जगरांव में अपने दस चातुर्मास किये। गाड़ी से उतर कर पण्डित श्री बलवन्त सिंह जी और सरदार बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज के श्रीचरणों में उपस्थित हुए। वहां पहुँचते ही उनको शोक समाचार मिला कि मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज के गुरुदेव पूज्य श्री गोविन्दराम जी का स्वर्गवास हो गया है। श्री गोविन्दराम जी महाराज तेजस्वी, शास्त्रज्ञ और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जो भी एक बार उनके सम्पर्क में आ जाता था, उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं जाता था। ऐसे तेजस्वी सन्त के निधन से बालक सरदार के मन को भी आघात लगा। किन्तु उनके अवचेतन मन में यह धारणा व्याप्त थी कि मनुष्य का शरीर नश्वर है। इस संसार में जो जन्म लेता है उसे मृत्यु का भी वरण करना पड़ता है। आत्मा अमर है और शरीर नाशवान्। आत्मा शाश्वत है और शरीर अस्थायी। फिर मिथ्या वस्तु के लिए शोक क्यों किया जाए ? मुनिश्री गोविन्दराम जी महाराज को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एक शोक सभा हुई, जिसमें स्वर्गीय मुनिश्री के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए श्री छोटेलाल जी महाराज ने बताया कि गुरुदेव श्री गोविन्दराम जी महाराज तप और त्याग की साक्षात् प्रतिमा थे, उनका सारा जीवन चमत्कारपूर्ण था जिसका स्वयं मैंने अनुभव किया है और

उनके चमत्कारिक क्रिया-कलाप का मेरे व्यक्तिगत जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा ।

बालक सरदार नित्य प्रति नियमित रूप से मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज की अमृतमयी वाणी का श्रवण करने लगा । उसके बाल मन पर मुनिश्री जी की शिक्षाओं की गहरी छाप थी । वह बहुत-सा समय विचारमग्न और चिंतातुर रह कर बिताने लगा । अन्त में उसने निर्णय कर लिया कि संसार में कोई अपना नहीं । आत्मा अकेले ही इस संसार में आया है और अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोग कर अन्त में अकेले ही इस संसार से चला जाता है । न कोई इस संसार में हितू है न मित्र, क्यों न जो मानव-देह हमें मिली है उसका सदुपयोग कर वार-बार के जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने का प्रयास किया जाय । इस प्रकार की विचारधारा को अपने भीतर ही भीतर सात दिन तक सरदार पालता रहा और अन्त में निर्णय का क्षण भी आ पहुँचा । पण्डित बलवन्न सिंह जी वापस जाने के लिए जब तैयार हुए तो बालक सरदार ने उनके साथ चलने की अनिच्छा प्रकट की । उस ने कहा, "आप को जाना हो तो जाइए और माता जी से मेरा प्रणाम निवेदित करने के पश्चात् यह भी बता दीजिएगा कि आपका बेटा अब ऐसे स्थान पर पहुँच चुका है जहां से लौटकर आना अब स्वयं उसके वश की भी बात नहीं रही है । माता जी का और मेरा बस इतना ही सम्बन्ध था । अब तो मैं महाराज श्री के चरणों में रह कर अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयास करूंगा ।" इतना कहकर बालक सरदार ने मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज के पाँव पकड़ लिए । पण्डित जी को इस की आशा भी नहीं थी, छोटा-सा आठ वर्ष की आयु का बालक जिसके चेहरे से भोलापन रह-रह कर झलक रहा था, ऐसा निर्णय कर लेगा । पण्डित जी ने बहुत समझाया-बुझाया, अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए और साधु-जीवन की कठिनाइयों का भय भी दिखाया । पर बालक ने तो यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वह अपने संकल्प से टस से मस नहीं होगा ।

मुनि श्री छोटे लाल जी महाराज ने अपनी शरण में पड़े बालक के भावी जीवन पर अपने तपोबल के माध्यम से दृष्टिपात किया तो उन्हें स्फुरणा हुई कि यह कोई साधारण बालक नहीं अपितु होनहार बालक है जो आगे चलकर महान् पुरुष बनने वाला है । मुनि श्री ने पण्डित बलवन्त सिंह जी को इसके भविष्य के सम्बन्ध में बताया । अन्त में बालक सरदार के हठ के सामने पण्डित बलवन्त सिंह को हार माननी पड़ी और मुनिश्री की भविष्यवाणी को शिरोधार्य कर सरदार को मुनि श्री के चरणों में सौंप कर चल पड़े ।

तब सरदार की अवस्था केवल आठ वर्ष की थी । बालसुलभ चंचलता और खेलकूद में तन्मयता ने एक नया रूप लिया । गुरुदेव प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में सरदार को जगाते और बालक को जीव, अजीव, पाप, पुण्य आदि के सम्बन्ध में शिक्षा देते । बालक सरदार की प्रतिभा अद्भुत थी । गुरुदेव द्वारा सुनी हुई वाणी को वह शीघ्र ही हृदयंगम कर लेता । धीरे-धीरे उसने २५ बोल का थोकड़ा, ९ तत्व, २६ द्वार, प्रतिक्रमण, तत्वार्थ सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, भक्तारस्तोत्र, साधु गुणमाला आदि अनेक ग्रन्थ कंठस्थ कर लिए । गुरुदेव श्री के सान्निध्य में उसे व्यावहारिक शिक्षा भी मिलती रही । बालक सरदार बिना तर्क-वितर्क के गुरुदेव की एक भी बात को स्वीकार नहीं करता । गुरुदेव भी उसकी सभी शंकाओं का समाधान बहुत ही सरल और सूक्ष्म ढंग से करते थे । जैन साधु की समाचारी के अनुसार

बालक सरदार गुरुदेव के साथ पदयात्रा करते। गुरुदेव के साथ विचरण करते हुए पंजाब में रावी के तट पर स्थित एक नगर में पहुँचे, जहां एक अद्भुत घटना घटी। पत्तन नामक स्थान पर आप रात्रि में सोये हुए थे कि आप ने एक स्वप्न देखा, जिसमें एक चमत्कारी महापुरुष आप से कहता है, "बच्चा उठो और अब शीघ्र ही साधु का जीवन धारण कर लो।" इतना कहकर वह महापुरुष अन्तर्ध्यान हो जाता है। यह महापुरुष कोई और नहीं, अपितु महान् तपस्वी और सिद्ध मुनि मुनिश्री रूपचन्द जी महाराज थे। स्वप्न में ही बालक सरदार ने मुनिश्री रूपचन्द जी से आशीर्वाद मांगा। तभी से धर्म के प्रति उसके मन में श्रद्धा, विश्वास और समर्पण की जड़ें और अधिक गहराई में जमती गईं।

# दीक्षा

अन्त में सन् १९४२ का वह वर्ष भी आ पहुँचा जब भारत में स्वतंत्रता के लिए राजनैतिक उथल-पुथल मची हुई थी। जब सर स्टेफर्ड क्रिप्स का मिशन असफल हो कर वापस इंगलैंड पहुँच गया। यह वह समय था जब जापानी भारतवर्ष के प्रवेश द्वार पर खड़े थे। गांधी जी ने 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का नारा सारे देश को दिया। अंग्रेज सरकार ने निहत्थे भारतीयों पर नाना प्रकार के अत्याचार किए। जब एक महादेश एक अहिंसक सन्त के नेतृत्व में स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहा था, तभी जगरांव में घोषणा हुई कि २० अप्रैल १९४२ के शुभ दिन बालक सरदार का दीक्षा समारोह सम्पन्न होगा। चारों ओर खुशियों की लहर दौड़ गई। दूर-दूर स्थानों के अनेक साधु-साध्वी, नर-नारी, बालक और युवा जगरांव नगर में एकत्र होने लगे। सरदार की आर्हती दीक्षा की तैयारियां धूम-धाम से होने लगीं। फिर वह शुभ घड़ी भी आ पहुँची जिसके लिये सब के मन में उत्सुकता व्याप्त थी। दीक्षास्थल पर विशाल जन-समूह पुष्पों की वर्षा, अनेक प्रकार के नाच-गान और कलाओं का प्रदर्शन हो रहा था। समारोह का प्रमुख आकर्षण था वैरागी सरदार, जिसके मुख-मंडल की अलौकिकता को निहार कर उपस्थित जनसमूह प्रफुल्लित हो रहा था। तत्कालीन पंजाब श्रमण संघ के आचार्य पूज्य श्री आत्मा राम जी महाराज ने दीक्षा का पाठ पढ़ाया और महान् योगी स्थविरपदविभूषित श्री कुंदन लाल जी महाराज के शुभ आशीर्वाद से पूज्य श्री छोटे लाल जी महाराज के निःश्राय में भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा के पश्चात् वैरागी सरदार का नाम 'मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज' रखा गया। अपने दीक्षा के पावन प्रसंग पर बोलते हुए मुनि श्री ने कहा था, "आज मैं मन, वचन और काया से सावद्य कर्मों का परित्याग कर पंच महाव्रतधारी अनगार का पथ स्वीकार कर रहा हूँ। जिस पथ पर चलकर अनेकानेक आत्माओं ने परम पद को प्राप्त किया है। वह दिन मेरे लिए धन्य होगा जब मैं मन, वचन और काया से संपूर्ण मानव-जाति और ८४ लाख जीवों के कल्याण के लिए

अपने आप को समर्पित कर दूंगा । मैं सच्चे हृदय से स्वीकार करता हूँ कि मानव-जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि आत्म-दर्शन है । आत्मा के विशाल साम्राज्य और उसके विभ्राट् रूप के दर्शन के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के महाव्रत को स्वीकार कर उसका सतत् पालन ही मेरा ध्येय है । सर्वत्र मानव-समाज में अज्ञान, अत्याचार और अभाव का जो कारुणिक दृश्य उपस्थित हो रहा है उसका निराकरण कर पारस्परिक बंधुत्व, समभाव और मैत्री का विस्तार ही मेरा लक्ष्य है । मैं वीतराग प्रभु महावीर के पथ का अनुगामी हूँ । मैं आजीवन संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करूंगा ।" उपस्थित जनता ने किशोर परिव्राजक की वाणी में सत्यता का दर्शन किया । उसके हिमालय जैसे अटल संकल्प ने जनता को आशावान् बनाया । सब ने करतल ध्वनि से उसके उज्ज्वल भविष्य और संयम-जीवन की सफलता की मंगल कामना की ।

मुनिश्री सुशील कुमार जी ने उस जीवन का वरण किया, जिसके लिए कहा गया है :

**साधू जीवन कठिन है ऊँचा पेड़ खजूर।**
**चढ़े तो चाखे प्रेम रस गिरे तो चकना चूर ।।**

दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् मुनिश्री सुशील कुमार जी को कल्पना का एक अद्‌भुत संसार मिला । तरुणाई के अनेकानेक सपने उनके मानस में मचल गए थे । ऐसा प्रतीत होता था मानो विशाल मरु-भूमि में अमृत की भागीरथी बहा देने का अदम्य संकल्प लिए एक युवा संन्यासी चल पड़ा । अब मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज साधु-वर्ग में सम्मिलित हो गए । उनके आगमन से ऐसा लगा जैसे संत-समाज रूपी उपवन में अभिनव वसन्त का आगमन हो गया हो । तेजोमय आभा से दमकता हुआ मुख मण्डल, उन्नत ललाट, मुख पर श्वेत मुख-वस्त्रिका और कन्धे पर रजोहरण, शरीर पर धवल वस्त्र, यही था उनका साधु वेष ।

संस्कृत साहित्य की एक मार्मिक उक्ति है :

**यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते**
**निर्घषणच्छेदनतापताडनैः**
**तथा चतुर्भिः पुरुषं परीक्ष्यते**
**ज्ञानेन शीलेन गुणेन कर्मणा ।**

जिस प्रकार घर्षण, छेदन, ताप और ताड़न चार विधियों से स्वर्ण की परीक्षा होती है उसी प्रकार ज्ञान, शील, गुण और कर्म से मनुष्य की परीक्षा होती है । मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने पूज्य गुरुदेव मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज की शरण में आकर व्यक्ति, समाज और देश के लिए स्वर्ण के रूप में अपने आप को प्रस्तुत किया । अहिंसा का पालन करते हुए ज्ञान, दर्शन और चरित्र के क्षेत्र में गहरे उतरते गये और मानसरोवर में डुबकी लगाकर मोती ढूंढ लाने वाले हंस की तरह उन्होंने सेवा, तप, त्याग और श्रद्धापूर्ण भक्ति तथा लगन से अपने गुरुदेव पूज्यश्री छोटे लाल जी महाराज के ज्ञान रूपी सरोवर से न जाने कितने अनमोल मोती प्राप्त किए । अपनी जीवनदायिनी उपलब्धियों को मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने आप तक ही सीमित न रख कर विश्व तथा मानवमात्र के कल्याण के लिए उनका विसर्जन किया, जिसके उद्धरण उनके जीवनक्रम के पग-पग पर मिलेंगे ।

# तरुणाई के सपने

विद्याध्ययन को मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने संयम जीवन के प्रथम चरण के रूप में स्वीकारा। यह वह समय था जब जर्मनी, इटली और जापान जैसी महाशक्तियों ने मिलकर पूरे विश्व को रौंदने के विचार से विध्वंस मचा रखा था। निरीह जनता का अस्तित्व खतरे में था। असहाय और साधनहीन लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे। भारत अभावग्रस्तता के दौर से गुजर रहा था। ऐसी संक्रमण कालीन परिस्थिति में मुनिश्री सुशील कुमार जी पूरी निष्ठा और लगन से अपनी विद्या के अर्जन में लगे। हिटलर के अत्याचारों की कहानी ने मुनिश्री के मानस को बुरी तरह झकझोर दिया। वे विचलित हो उठे। तभी गुरुदेव की आज्ञा हुई कि सुशील अभी तुम शांत रहो और अपना अधिक से अधिक समय ज्ञानार्जन में लगाओ। जब पाप का घड़ा भर जाता है तो समय आने पर वह अपने आप फूटता है। गुरु-आज्ञा को स्वीकार कर पुनः मुनिश्री अपने अध्ययन में लीन हो गए।

धीरे-धीरे मुनिश्री सुशील कुमार जी में नेतृत्व की शक्ति विकसित होने लगी। वे यह अनुभव करने लगे थे कि युवा वर्ग ही महात्मा गांधी के स्वप्नों को साकार कर सकता है। युवा पीढ़ी ही आत्म-बलिदान के मार्ग पर अग्रसर हो कर समाज और राष्ट्र का नेतृत्व कर सकती है। सदियों से दासता की श्रृंखला में जकड़ी हुई भारत मां का उद्धार केवल युवा ही कर सकते हैं। तरुण संन्यासी का मानस युवावर्ग के सम्बन्ध में नाना प्रकार की कल्पनाओं से आंदोलित हो रहा था। महात्मा गांधी के नेतृत्व में सारा देश स्वतन्त्रता संग्राम में व्यस्त था। स्वतन्त्रता की कुछ आशायें भी बँध गई थीं। मुनिश्री सुशील कुमार जी इस ताक में थे कि किस कोने से स्वतन्त्रता संग्राम में प्रवेश किया जाये। एक ओर अहिंसा और प्रेम का उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन और दूसरी ओर क्रन्दन करती हुई भारत मां की करुण पुकार! जब कभी उनके विकल्प के चयन का प्रश्न आता, वे मन ही मन उदास हो जाते। जब कभी उन्हें सामान्य जनता के बीच अपने को व्यक्त करने का अवसर मिलता

वे अहिंसक राज्य-क्रांति में सक्रिय भाग लेने के लिए युवकों को प्रेरित करते। स्वदेशी का प्रचार, स्वावलम्बन, श्रमदान, अभय आदि का उन्होंने उपदेश किया। इनकी प्रेरणा से युवकों के कई संगठन बने जिन्होंने अनाम रह कर भारत के स्वातन्त्र्य यज्ञ में अपनी आहुति दी। आप की वाणी में इतना ओज था कि आपके सम्पर्क में आने वाला कोई भी युवा उससे प्रभावित हुए बिना न रह सका। आप ने जगह-जगह घूमकर स्वतन्त्रता की अलख जगाई और शिथिल तथा चेष्टाहीन शिराओं में जागरण एवं प्रयाण का मंत्र फूंका। साधु मर्यादा में रहते हुए जितना भी संभव हो सका आप ने अपना योगदान दिया।

युवकों के बीच एक बार अपना विचार व्यक्त करते हुए आपने कहा, "यह महान् देश भारतवर्ष एक बार फिर सारे संसार के लिये ज्ञान, कौशल, मेधा तथा अमृत का प्रकाश-स्तम्भ बनकर आज के भौतिकवाद में भटके विश्व को शांति और आध्यात्मिकता का सन्देश दे सकता है। आज जो निराशा और बेचैनी युवा पीढ़ी में दृष्टिगोचर हो रही है वह स्वतः ही समाप्त हो सकती है। पर इस कटु सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जहाँ एक ओर युवा-वर्ग अपने सही रास्ते से भटक गया है वहाँ दूसरी ओर अधिकांश शिक्षक वर्ग भी उस मापदण्ड पर उतना खरा नहीं उतरता जिसकी अपेक्षा प्रत्येक विद्यार्थी को अपने शिक्षक से होती है। यह देश का दुर्भाग्य है कि ऐसी विकट परिस्थितियाँ फिर उठ आई हैं। जिस प्रकार कमल का फूल कीचड़ में रहकर भी अपने सौष्ठव और सुरभि से सबको आनंदित करता है और परिवेश के सौंदर्य में चार चाँद लगाता है उसी प्रकार मुनिश्री सुशील कुमार जी विषमय वातावरण में रहते हुए विश्व-जन के लिये सौख्य एवं सद्प्रेरणा के स्रोत बने रहे।

स्वतन्त्रता संग्राम के क्षितिज पर एक नये ध्रुव का उदय हुआ। भारत माता के एक वीर सपूत श्री सुभाष चन्द्र बोस ने सिंगापुर में भारत की स्वतन्त्रता के लिये आजाद हिन्द फौज की स्थापना कर के वीरता के क्षेत्र में विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। तभी मुनि श्री सुशील कुमार जी ने उद्घोषणा की कि स्वतन्त्रता केवल शब्दों से नहीं बल्कि अदम्य साहस और शक्ति के बल पर ही प्राप्त की जा सकती है। विश्व में जिसने स्वतन्त्रता का मूल्य न चुकाया हो ऐसा कोई भी देश इतिहास के पृष्ठों में अंकित नहीं है। लगता है, अब वह समय दूर नहीं जब भारत माता की दासता की बेड़ियाँ छिन्न-भिन्न हो जायेंगी। इसी प्रकार अपनी ओजमयी वाणी से जनता को उद्बोधन देते हुए मुनिश्री ने पंजाब में नवां शहर और मोगा में वर्षावास किया।

वहाँ से अपना वर्षावास समाप्त कर जगरांव की धर्मप्रेमी जनता की भाव-भरी विनती को स्वीकार कर आप पूज्य गुरुदेव श्री छोटे लाल जी महाराज के साथ जगरांव पधारे। उसी समय वहाँ महाराज श्री कुंदन लाल जी पधारे हुए थे। पूज्य श्री कुन्दन लाल महाराज का आप पर अपार प्रेम था। मुनिश्री कुन्दन लाल महाराज के सान्निध्य में आपने नाना प्रकार की यौगिक साधनाओं का अभ्यास किया। आपके प्रेम, विनय, भक्ति और श्रद्धा से मुनिश्री कुन्दन जाल जी महाराज बहुत प्रभावित हुए।

एक बार फिर मानवता पर घोर वज्रपात हुआ। जापान के दो नगरों नागासाकी और हिरोशिमा पर एटम बम बरसाया गया, जिसके फलस्वरूप भीषण नर संहार हुआ। इस दानवी कुकृत्य की भर्त्सना करते हुए मुनिश्री सुशील कुमार जी ने कहा कि हम किसी पर

शक्ति के बल पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते। यदि सही अर्थों में हमें किसी पर विजय प्राप्त करनी है तो हमें उसके हृदय पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। ऐसी विजय युद्ध या संहारक अस्त्रों के सहारे नहीं अपितु प्रेम और पारस्परिक सहयोग की भावना का विस्तार करके ही प्राप्त की जा सकती है। यदि कोई व्यक्तिगत रूप से संसार पर अपनी एकछत्र प्रभुसत्ता स्थापित करना चाहता है तो यह असम्भव है। वह चाहे कितना ही बलवान् हो क्योंकि तलवार का यह दर्शन है कि उससे मजबूत तलवार एक दिन उसे काट देती है। जिस हिटलर ने विश्वविजय प्राप्त करने के संकल्प किए, विश्व-सम्राट् बनने के सपने देखे, उसका अस्तित्व इस प्रकार समाप्त हुआ जैसे आकाश से कोई तारा चुपचाप टूट कर गिर गया हो। काश, उसने शक्ति के मद में चूर होकर गलत दिशा में कदम न बढ़ाये होते तो क्या आज के विश्व का वह महान् युगपुरुष न बन गया होता ? जो जर्मनी आज तक दूसरों की सलाह मानने को विवश है क्या वह एक स्वतंत्र और महान् राष्ट्र न होता ? इतने साधन, इतना ज्ञान-विज्ञान और इतनी सूझ-बूझ के होते हुए भी जर्मनी की यह दशा विधि की सदा से ही क्रूर बिडंबना रही है कि अहं की भावना ने सदा ही निरपराध लोगों को यातनाएं पहुँचाई हैं और विश्व की संस्कृति के विनाश का कारण बनी हैं। भारत का इतिहास तो ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है। क्या रावण कम विद्वान् था ? चारों वेदों का जानने वाला महान् पण्डित और सोने की लंका पर शासन करने वाला सम्राट् भी अहम् की भावना से नष्ट-भ्रष्ट हो गया। कंस और दुर्योधन के उदाहरण भी ऐसे ही हैं। दूसरी ओर प्रेम और अहिंसा के अमर उदाहरण भी हैं जिसके सहारे राम, कृष्ण, गौतम भगवान महावीर, गांधी, गुरु नानक और ईसा मसीह मानव जाति के चिरकाल तक पूज्य बन गए।

जगरांव के पश्चात् आप ने अपना आगामी चातुर्मास पंजाब प्रांत में मण्डी अहमदगढ़ में स्वीकार किया। अपने इस चातुर्मास काल में आपने शिक्षा और समाज में कुछ नए प्रयोग किए। शिक्षकों और शिक्षार्थियों के लिए उन्होंने चिंतन और कर्तृव के नए आयाम उद्‌घाटित किए। उन्होंने स्त्री-शिक्षा पर अधिक बल दिया। उन्होंने कहा कि जब तक पुरुष के समानान्तर स्त्रियों को भी शिक्षा, समाज और संस्कृति के निर्माण में सहयोगी नहीं बनाया जाता तब तक स्वस्थ समाज की रचना नहीं की जा सकती। अनादि काल से नारी पुरुष की दासता का शिकार रही है और इस दासता के दौरान अनेक प्रकार की कुरीतियों और बुराइयों की जकड़ में आ गई। परिणाम यह हुआ कि चारों ओर का वातावरण कुंठापूर्ण और घुटनभरा सिद्ध हुआ। नारी को इस दुर्दैव के पंक से निकाल कर उसे पुनः प्रतिष्ठित करना है। आपकी विचारधारा का यहाँ की सामान्य जनता और अनुयायियों में बहुत स्वागत हुआ। परिणाम यह हुआ कि अनेक बालिकाओं, युवतियों और यहाँ तक कि प्रौढ़ाओं ने भी आप के निर्देशन में शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया। समय-समय पर महिलाओं की सभायें भी होने लगीं। इन में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श होने लगा।

मंडी अहमदगढ़ के चातुर्मास काल की सबसे बड़ी उपलब्धि आपको एक गुरु-भाई की प्राप्ति है। एक ऐसा गुरु भाई जो लक्ष्मण की तरह अपनी सारी आकांक्षाओं और मनोकामनाओं का बलिदान कर के आपके पीछे लक्ष्मण की तरह चल पड़ा और तब से

लेकर आज तक कोई २८ वर्ष बीत चुके हैं, प्रत्येक दुख-सुख में आपके साथ रहा। जिसने अपने सारे अस्तित्व को आपके ही अस्तित्व में विलीन कर दिया, जिसने पीड़ा को तो अपने लिये चुना और सुख आपके लिये मुहैया किया। ऐसे त्यागी, शांत, तपस्वी और गम्भीर संत श्री सुभाग मुनि जी महाराज को कौन नहीं जानता ? मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज का भी श्री सुभाग मुनि जी के प्रति अनन्य प्रेम है। भ्रातृ-प्रेम की परीक्षा का समय भी ठीक उसी प्रकार आया जिस प्रकार लक्ष्मण को शक्ति बाण लगने पर हुआ था। सन् १९७० की घटना है। श्री सुभाग मुनि जी महाराज को दिल का दौरा पड़ा, आप बेहोश पड़े थे। जब श्री सुशील मुनि जी महाराज को यह पता लगा तो भागे-भागे आये और दिन के दो बजे स्वयं उन्हें अस्पताल ले गए। मुनिश्री सुशील कुमार जी के लिए यह बहुत ही वेदना और चिंता के क्षण थे। आप के दृढ़ संकल्प की सराहना किन शब्दों में की जाए। ध्यान लगा कर बैठे गए और निरन्तर तब तक बैठे रहे जब तक आपको यह प्रतीति न हो गई कि श्री सुभाग मुनि जी महाराज का बाल भी बांका न होगा। ध्यान से उठे और सुभाग मुनि जी के सिर पर हाथ रख कर बोले, "चिन्ता की कोई बात नहीं। तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे।" फिर अनवरत रूप से जब तक मुनि जी अस्पताल में रहे, आपने प्राणपण से सेवा, शुश्रूषा की।

सन् १९४५ में जब आकाश से युद्ध के काले बादल छंटने लगे थे, विश्व के राष्ट्रों ने आपस में मिल-बैठ कर झगड़ों को सुलझाने के लिए लीग आफ नेशन्ज के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना कर ली थी और विश्व-शांति की किरणें फूटने लगी थीं, तभी मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज ने अहमदगढ़ मंडी का अपना चातुर्मास काल समाप्त कर लुधियाना के लिए प्रस्थान किया। विश्व की दुर्दशा देख कर आपके मन में भारी उथल-पुथल मची हुई थी कि क्या आज हमारा कर्तव्य नहीं है कि भूले-भटके लोगों को सही रास्ते पर लाने के लिए खुले मंच पर आकर जनता का आह्वान करें। यह उस समय की बात है जब जैन समाज और जैन साधु-संत पुरानी लकीर के फकीर बने हुए, पुरानी परिपाटियों को पकड़े हुए थे और विज्ञान की अद्भुत चमत्कारी शक्तियों का शांतिपूर्ण उपयोग करने में भी पाप समझते थे। यहाँ एक छोटी-सी घटना का उल्लेख आवश्यक होगा। आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज का पदवीदान महोत्सव मनाया जा रहा था। आचार्य श्री जी को चादर ओढ़ाये जाने के पावन समारोह में भाग लेने के लिए अनेक साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाएँ उपस्थित थे। ऐसे भव्य और विशाल समारोह में युवा हृदय मुनि श्री सुशील कुमार जी उठे और बोलने के लिए माइक्रोफोन की ओर बढ़े। फिर क्या था, चारों ओर के वातावरण में जैसे कोलाहाल का तूफान आ गया। क्या साधु, क्या जनता सब में खलबली मच गई। सब ने एक स्वर से मुनि जी के इस कार्य की आलोचना की और कहा कि साधु को यह शोभा नहीं देता कि वह विद्युत् यंत्रों का उपयोग करे। परन्तु आपका तो मार्ग ही और था। न तो आप किसी संकुचित दृष्टिकोण से समझौता करने वाले थे और न ही झूठ आडंबरों की आड़ में काम करने वाले थे। आप के विचार क्रांतिकारी थे। एक ओर जब आप बोलने को तत्पर हुए तो दूसरी ओर आप से माइक तक छीनने का असफल प्रयास किया गया। आपने सिंह गर्जना करते हुए कहा-'जैन

धर्म कोई संकुचित विचारधारा वाला धर्म नहीं है। इसका हृदय बहुत विशाल है। पर दुःख तो इस बात का है कि आज इसी धर्म को कुछ रूढ़िवादी और पुरातन पंथी ढोंग तथा अन्ध विश्वास पर चलने वाले लोगों ने एक चार-दीवारी में बंद कर सीमिति कर दिया है। जो धर्म मानव मात्र को एकता का संदेश देता है, जिसकी उत्पत्ति पाखंडों को मिटाने और भूली-भटकी जनता को सही मार्ग दिखाने के लिए हुई, क्या यही वह धर्म है जिसके ठेकेदार मात्र उसे कुछ लोगों की बपौती बनाकर रखना चाहते हैं? आपने उपस्थित जनता, विशेष कर युवकों और बुद्धिजीवी वर्ग का आह्वान किया और कहा कि आवश्यकता इस बात की है कि खुल कर हम बन्द कमरों से बाहर निकलें और खुले वातावरण में ढंडे दिमाग से विचार-विमर्श कर निर्णय लें और विश्व को बतायें कि जैन धर्म क्या है, इसके सिद्धान्त क्या हैं। तभी हम भगवान् महावीर द्वारा बताये हुए सही मार्ग पर चल सकेंगे। अन्यथा हमारे लिये कोई मार्ग नहीं है। प्यारे भाइयो, यह एक ऐसा धर्म है जिसे कोई भी स्वीकार कर सन्मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा लेकर अपने जीवन का कल्याण कर सकता है। सच कहा जाये तो यह वास्तविकता है कि संसार का कोई भी धर्म, किसी जाति विशेष का धर्म नहीं बनता। सब में अच्छाइयां हैं। धर्म में बुराइयां पैदा करने वाले वे लोग हैं जो अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये धर्म और धर्म के बीच दीवारें खड़ी कर देते हैं वरना आप ही बताइए, संसार का कौन-सा ऐसा धर्म है जिसने हिंसा का पाठ पढ़ाया हो, विद्वेष की भावना फैलाने की बात कही हो, असहायों की सेवा करने से रोका हो।" इस ओजस्वी भाषण को सुनकर सभी दंग रह गए। जगह-जगह चर्चाएं हुईं। गृहस्थ वर्ग में ही नहीं अपितु साधु-साध्वी वर्ग में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के मत प्रकट किए गए। जितने मुंह उतनी बातें। किसी ने कहा, भाषण बहुत क्रांतिकारी तथा सत्य पर आधारित है, तो किसी ने कहा कि ऐसी बातें साधु को मंच पर नहीं कहनी चाहिएं। सन्तों में बहुतों ने तो इसका खुला विरोध किया। धीरे-धीरे अधिकांश मत आपके पक्ष में होते गए। बहुत से गृहस्थों ने आपको आदर दिया तथा भविष्य की आशा के रूप में देखा। अन्त में वही हुआ जिसकी आशा थी। जिस लाउड स्पीकर के प्रयोग को लेकर आपका इतना विरोध किया गया उसी का प्रयोग आज प्रत्येक साधु-साध्वी कर रहा है। आप ही पहले साधु थे जिसने अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की परवाह किए बिना लाउड स्पीकर का प्रयोग किया था। इसके बाद तो क्रमशः आपने अनेक क्रांतिकारी कदम उठाये। अहिंसा का बिगुल एक बार फिर चारों दिशाओं में बज उठा और छोटे से लेकर बड़े-बड़े राजपुरुष तक आपकी सेवा में आने लगे तथा आपसे मार्गदर्शन पाने की अभिलाषा प्रकट की, जिसका वर्णन आगे आने वाले अध्यायों में किया जाएगा।

क्रांतिकारी की यह नियति होती है कि चाहे वह धर्म का मार्ग अपनाये अथवा राजनीति का, समाज को अपना कार्यक्षेत्र बनाये अथवा परम्पराओं में सुधार का बीड़ा उठाये, उसे प्रत्येक क़दम पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पग-पग पर मुसीबतें अपना मुंह बाये उसके सारे अस्तित्व को निगल जाने के लिये खड़ी रहती हैं। धार्मिक क्रांति का मार्ग क्रांति के प्रायः सभी मार्गों से दुर्लभ और कंटकाकीर्ण है। जब कभी मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज से उनके जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में चर्चा हुई तो उन्होंने सहज भाव से कहा कि मेरा एक ही मिशन है, खतरे लो और जिओ। सच कहा जाये तो उनके

जीवन-पथ का निर्माण तरह-तरह के खतरों से ही हुआ है। वे प्रायः यह कहते हुये सुने जाते हैं—जिस दिन मेरे मार्ग की कठिनाइयां समाप्त हो जायेंगी उस दिन शायद अगली सांस लेनी कठिन हो जायेगी। इस संदर्भ में श्री अरविन्द की 'निमंत्रण' कविता का यदि उदाहरण दिया जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी :—

**ऊंचे पर्वत शिखर और घनघोर गगन का गर्जन**
**मेरा मार्ग भरा है अगनित जलनिधि लोल लहर से**
**ऊंचे नीचे और कंटकों से निर्मित है काया जिसकी**
**वही आज गन्तव्य हमारा जहां खड़े आराध्य हमारे ॥**

अपने विचारों की सही अभिव्यक्ति के लिये मुनिश्री सुशील कुमार जी ने लेख और कविता को अपना माध्यम बनाया। अनेक विद्यार्थी, प्राध्यापक और विद्वान् आपके सम्पर्क में आए। आपने 'परीक्षा' नामक पत्रिका भी निकाली, जिसमें विद्यार्थी वर्ग को सही मार्गदर्शन और मानवीय तथा सामाजिक मूल्यों का यथार्थपरक विवरण होता था। अनेक प्रकार के विरोधी विचारों, आरोपों और विवादों को आप ने अपनी सूझ-बूझ से सुलझाया। आपकी प्रतिभा पर टिप्पणी करते हुए महान शिक्षाशास्त्री प्रोफेसर हंसराज जी ने कहा था कि मुनिजी जैसे होनहार और मेधावी विद्यार्थी मैंने अपने जीवन में बहुत कम देखे हैं। दिन भर नाना प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहते हुये भी आप परीक्षा में सम्मिलत होते तो अन्य विद्यार्थियों से सदा आगे रहते। प्रोफेसर हंसराज जी आश्चर्य में पड़ जाते कि न जाने मुनि जी में कौन-सी शक्ति है। एक दिन आप ने मुनि जी से पूछ ही लिया। उन्होंने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया कि प्रोफेसर साहब, यह सब गुरु-कृपा का फल है। अन्यथा मैं किसी योग्य नहीं हूँ। एक कहावत है कि जब विश्व सोता रहता है तब क्रांतिकारी परिश्रम करने में रत होते हैं। पर कभी अभिमान नहीं करते। मानव-मात्र की भलाई की चिन्ता में सदैव लगे रहते हैं। क्या यह उक्ति मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज के सम्बन्ध में पूर्णतया चरितार्थ नहीं होती? आप ने उसी समय 'प्रभाकर' तथा 'साहित्य रत्न' की परीक्षाएं सफलतापूर्वक उत्तीर्ण कीं। तत्पश्चात् आपने साधु जीवन की मर्यादाओं का सम्यक्रूपेण पालन करते हुए चातुर्मास समाप्त होने पर लुधियाना से विहार कर दिया।

उस समय भारतवर्ष पर कहर के बादल मंडरा रहे थे। देश का विभाजन एक प्रकार से निश्चित-सा हो गया था। ऐसे समय में आप मोगा शहर में पधारे। सन् १९४५ का चातुर्मास वहीं हुआ। यह वह भयंकर समय था जब हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे थे। जो कल के पड़ोसी थे वे आज आपस में शत्रु बन गये थे। लाखों लोगों का खून पानी की तरह बहाया गया। लाखों माताओं और बहनों के सुहाग मिटाये गये। एक आदमी ने दूसरे के खून से होली खेली। विश्वास नहीं होता कि मनुष्य इतना नीचे गिर जायेगा कि उसे अपनी मनुष्यता का ही भान न हो। वर्तमान पीढ़ी ने अपनी ही आंखों से इस दुखांत दृश्य को देखा है। फकीरों, औलियों, ऋषियों और सन्तों की भूमि भारतवर्ष में इस दानवीय लीला का साक्षात्कार किया। इस कारुणिक दृश्य को देखकर मुनिश्री सुशील कुमार जी का हृदय पीड़ित रहा। आप के कानों में आवाज गूंजने लगी। यह सब धर्म की देन है। उस धर्म की, जिसे भूखे भेड़ियों ने मानवता के दुश्मन स्वार्थी मनुष्य ने झूठ, छल और बेईमानी की चादर

ओढ़ा दी है। कोई हिंदुत्व के नाम पर लड़ रहा है तो कोई इस्लाम की आड़ लेकर मानवता का खून बहा रहा है। कोई कैथोलिक बनकर जुल्म ढाता है तो कोई प्रोटेस्टेंट बन कर विश्व पर छा जाना चाहता है। इस लिए अब उन दीवारों को तोड़ना होगा, जो धर्म के नाम पर मानव के बीच हिंसा और द्वेष पर खड़ी की गई हैं। धर्म का ध्येय सत्य, शिव और सुन्दर रहा है। इस में पारस्पिरिक द्वेष या लड़ाई-झगड़े के लिए कोई स्थान नहीं। केवल प्यार, केवल समपर्ण, अपने से प्यार, दूसरों से प्यार, सब से प्यार ही प्यार, वह भी सच्चा प्यार जो लेता कुछ नहीं सब कुछ देता ही देता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार बाटिका में खिला हुआ फूल जो बिना किसी भेदभाव के अपनी सुगंध सब पर लुटाता है और सब को आनंदित तथा प्रफुल्लित करता है किन्तु बदले में कुछ नहीं चाहता। ठीक उसी प्रकार धर्म भी एक खिला हुआ फूल है; जो चाहे जितना इस की सुगंध से विभोर हो जाये। इस कोमल फूल की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है, फिर जितना चाहें हम उससे सुगंधि प्राप्त कर के अपने जीवन का कल्याण करें।

आवाज़ अर्थपूर्ण थी। सचमुच जैसे कोई दैवी-शक्ति आपके भीतर प्रकट हो गई हो। मुनि जी ने निर्णय किया, चाहे कुछ भी हो जाए, अब तो इन बेड़ियों को काटना ही होगा।

उस समय मुनि जी जिस भवन में ठहरे हुए थे वह घनी बस्ती के कुछ ही दूरी पर स्थित था। अतः खतरे के कारण प्रेमी भक्त जनों ने आपसे प्रार्थना की कि समय बहुत खतरनाक है। चारों ओर साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण दुःखदायी घटनायें हो रही थीं। हो सकता है कि कोई विधर्मी आप पर भी आकर हमला कर दे। मुनि जी सुनकर हँसे और कहने लगे कि प्यारे भाइयो, हमारा लक्ष्य तो धर्म के मार्ग पर चलकर अपने कर्तव्य का पालन करना है। धर्म खतरों को बढ़ाता नहीं बल्कि कम करता है। यदि हम, जिन्हें धर्म का नायक कहा जाता है, भयभीत हो जायें तो उनका क्या होगा, जो धर्म को समझते तक नहीं ? दूसरी बात यह है कि भय को धर्म के विरुद्ध माना गया है। आपने भगवान् महावीर की वाणी का स्मरण करते हुए यह बताया कि जो कोई भी इस लोक या परलोक का भय करता है वह कभी सच्चे अर्थों में धर्म-मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता। आपने भी भगवान् की वाणी का अनुसरण करते हुए उसी भाव में रहने का निश्चय करके साधु-जीवन की मर्यादा का पूर्णतया पालन किया। 'जहाँ प्यार होता है वहाँ मार्ग स्वयं ही बन जाता है' की उक्ति के अनुसार वहाँ पर भी एक घटना घटित हुई, जिससे अवगत कराना अत्यावश्यक है। जब भारत साम्प्रदायिकता के विषैले वातावरण में से गुजर रहा था और भारत सरकार ने स्थिति पर काबू पाने के लिये स्थान-स्थान पर सेना तैनात कर रखी थी; उन्हीं दिनों मुनि सुशील कुमार जी अपने गुरु भाई श्री सुभाग मुनि जी के साथ जा रहे थे कि रास्ते में एक सैनिक मिला। उसने मुनि जी को रोककर पूछा कि आपके कंधे पर क्या रखा है ? मुनि जी ने विनोद में कहा, "यह हमारी तोप है।" सैनिक चौकन्ना हो गया और आश्चर्य-भरे स्वर में बोला कि आपके पास तोप कहाँ से आई ? यह तो केवल सरकारी सैनिकों के पास ही हो सकती है। आप कौन हैं ? क्या करते हैं ? कहाँ से आए हैं, कहाँ जा रहे हैं ? आदि कई प्रश्न एक साथ ही पूछ डाले। उसकी जिज्ञासा को शांत करते हुए मुनि जी ने उसे विस्तार से समझाया कि भाई जिस प्रकार तुम सैनिक हो उसी प्रकार हम भी सैनिक हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि तुम लोग

बाहर के शत्रुओं से रक्षा करते हो और हम लोग भीतर के शत्रुओं से। बोलो हम दोनों सैनिक हुए कि नहीं ? सैनिक जो अब तक कौतूहलवश भ्रम में पड़ा हुआ था, मुनि जी की बात सुनकर शांत हुआ और उनकी सादगी और मधुर व्यवहार से इतना प्रभावित हुआ कि उसने जैन संतों के जीवन उद्देश्य तथा दिनचर्या के विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त की। वह मुनि जी के व्यक्तित्व और स्पष्टवादिता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने वापस जाकर अपने शिविर में भी मुनिजी और उपरोक्त घटना के सम्बन्ध में चर्चा की। फिर क्या था। सारे शिविर में मुनि जी के बारे में उत्सुकता बढ़ गई। सबने मिलकर मुनिजी को शिविर में ही आमन्त्रित करने का निश्चय किया और तदनुसार प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर मुनि जी सहर्ष सैनिक शिविर में पधारे और वहाँ प्रवचन किया। उनके प्रवचन से सैनिक इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मुनि जी से प्रतिदिन शिविर में पधारने का निवेदन किया। इस प्रकार लगातार कई दिनों तक आपके प्रेरणादायी प्रवचन सैनिक शिविर में हुए।

इसी शिविर के सामने बलोच रेजीमेंट की एक टुकड़ी का भी शिविर था। जब उस टुकड़ी में यह समाचार पहुँचा तो उसके वरिष्ठ सैनिक अधिकारी मुनि जी से बातचीत करने आये। उसके हृदय पर मुनिजी की बातों का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसकी आँखों में आंसू आ गए। इसी स्थिति में वह बोला कि महाराज ! यदि आप जैसे ही विचार हमारे राष्ट्र के राष्ट्रनायकों के हृदय में होते तो कभी देश का विभाजन और विनाश की यह लीला दिखाई न देती। वह लौट गया। शिविर उठ गये। किन्तु मुनि जी के हृदय पर दुःख की पीड़ा की एक गहरी छाप छोड़ गये।

मोगा की ही एक घटना है कि एक सज्जन जो वकालत करते थे, बहुत ही नास्तिक विचारों के थे। एक बार वे बीमार पड़ गए। बहुत दवा कराई किन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। उनका भाई आकर मुनि जी से प्रार्थना करने लगा कि यदि वे चाहें तो उसके भाई का कल्याण कर सकते हैं। मुनिश्री जी ने कहा, "जाओ दवा करो, समयानुसार वह स्वयं ठीक हो जायेगा।' किन्तु मुनि जी की बातों से उसे सन्तोष नहीं हुआ। वह बहुत अनुनय-विनय करने लगा। और यह भी बताया कि वकील साहब लम्बी बीमारी के कारण चिड़-चिड़े स्वभाव के हो गये हैं। पहले नास्तिक तो थे ही, अब जो भी उनके पास जाता है और उनकी भलाई की कोई बात करता है तो वे उसे पत्थर मारते हैं। मुनि जी को यह वृत्तान्त सुनकर दया आ गई और आपने उसके पास जाना स्वीकार कर लिया। जब वह वहां पहुँचे तो देखा कि वकील साहब लेटे हुए हैं। साथ ही एक मेज रखी है, जिस पर पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े पड़े हैं। मुनि जी ने पहले तो वकील साहब के दुःख और कष्ट के बारे में पूछा। फिर बोले—"भाई साहब, यह पत्थर आपने क्यों रखे हैं ?" उसने उत्तर दिया, "जो मेरा कहना नहीं मानता मैं उसे पत्थर मारता हूँ। दण्ड देता हूँ। मैं धर्म-कर्म नहीं मानता, आप जाइए मैं ठीक नहीं हो सकता। लोग मुझे तंग करते हैं, गाली देते हैं। जब मुझे क्रोध आता है, पत्थर मार कर बदला लेता हूं।" मुनि जी ने बड़े प्रेम से उसे समझाया, "एक काम करोगे।" वह बोला, "क्या।" मुनि जी ने बताया कि यदि कोई तुम्हारी भलाई करे तो तुम उसको अपना हितैषी समझोगे, तो उसने कहा कि हां। मुनिजी ने कहा, "जिस प्रकार तुम्हें यदि कोई गाली देता है

तो तुम पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है और तुम गुस्से में आकर उससे बदला लेने को तत्पर हो जाते हो। ठीक उसी प्रकार यदि कोई तुम्हारे भले की बात करे तो तुम पर अच्छा असर होता है। देखो, हम तुम्हें एक मंत्र बताते हैं। इस मंत्र में बड़ी शक्ति है। यदि तुम इसका जप नित्य प्रति आस्था और विश्वासपूर्वक करोगे तो यह मंत्र भी तुम्हारी भलाई करेगा और तुम स्वस्थ हो जाओगे। उसने कहा कि मैं मंत्र आदि को तो मानता नहीं, पर यदि आप कहते हैं तो जप करूँगा।''

न जाने मुनि जी की बातों में शक्ति थी या नमोकार मंत्र का प्रभाव था कि वह वकील धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा और एक दिन जब मुनि जी बाजार से निकल रहे थे तो एक व्यक्ति आकर उनके चरणों में गिर गया। यह सज्जन कोई और नहीं, वही वकील साहब थे जो मुनि जी से कह रहे थे कि महाराज अब मैं स्वस्थ हो गया हूँ। यह आप की कृपा और आशीर्वाद तथा मंत्र की चमत्कारिक शक्ति का ही परिणाम है। अब वह नास्तिक नहीं एक आस्तिक व्यक्ति था। जिसके मन में धर्म और संतों के प्रति अगाध श्रद्धा तथा प्रेम उत्पन्न हो चुका था।

●

# महत्संकल्प

चातुर्मास पूर्ण होने पर आपने लुधियाना की ओर विहार किया। अभी रायकोट ही पहुँचे थे कि आप रोगग्रस्त हो गए। अभी आप रोगग्रस्त ही थे कि एक हृदय विदारक संवाद आपके कानों में पड़ा। युग पुरुष अहिंसा और सत्य के सच्चे आराधक महात्मा गांधी की गोली मार कर हत्या कर दी गई है। एक ज्योति सहसा बुझ गई थी। मानवता अनाथ हो गई थी। एक सन्त वह था, जो अहिंसा की वेदी पर बलिदान हो चुका था और दूसरा सन्त मुनि सुशील कुमार, जिसने सन् १६४२ का जोश देखा। निहत्थे लोगों को साम्राज्यवादी महाशक्तियों से लोहा लेते देखा और फिर विश्व-युद्ध की भयंकर आग में झोंकी जाती मानवता को देखा। राष्ट्र का विभाजन और निरीह लोगों को मौत का शिकार होते देखा। और कर्णभेदी चीखों के बीच खून की बहती नदियां देखीं। चारों ओर अराजकता, लूटमार। जिस प्रकार सम्राट् अशोक ने कलिंग के युद्ध में विजय प्राप्त की और युद्ध क्षेत्र में जाकर विजित क्षेत्र का जब अवलोकन किया तो उसकी आँखें खुली की खुली रह गई। उस वीभत्स दृश्य में यदि कुछ दिखाई देता था तो केवल धूएं के बादल, विनाश का तांडव नृत्य, लाखों शव, हजारों अधमरे लोगों का क्रन्दन, चीख और पुकार से सम्राट् का हृदय द्रवित हो उठा था। उसे अपने कृत्य पर ग्लानि होने लगी। तभी उसने निश्चय किया कि मुझे राजपाट नहीं चाहिए। यह मैं क्या कर बैठा हूं। संसार से उसे विरक्ति हो गई और तत्काल उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। वह जीवन भर के लिए सत्य पर चलने का दृढ़ संकल्प मन में कर के साधु हो गया। मुनि जी ने अशोक की तरह किसी क्रूरतापूर्ण कार्य में भाग नहीं लिया था किन्तु वह हृदयविदारक दृश्य अवश्य देखा। उसी समय मुनिश्री ने संकल्प लिया कि मजहब, भाषा, प्रान्त और राष्ट्र के नाम पर जब तक हिंसा होती रहेगी, मैं चैन से न बैठकर विश्व में शांति और अहिंसा की स्थापना के लिए भगीरथ प्रयत्न करूंगा। प्रेम और मैत्री का संदेश जन-जन तक पहुँचाऊँगा और प्रयास

करूंगा कि मानव-समाज अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त कर सके। तब से आज तक मुनि जी अपने इसी संकल्प की पूर्ति में लगे हुए हैं।

स्वस्थ होने पर आप लुधियाना पधारे। वहां पर आप के आगमन से एक बार फिर धूम मच गई। आपने भी अपने उद्देश्य की सफलता के लिए कोई कसर उठा न रखी। और एक पत्रिका "हिन्दी साहित्य" का संपादन-संचालन प्रारम्भ किया। और धार्मिक शिक्षा के द्वारा लोगों को अपने कर्तव्य का बोध कराने लगे। पहले की अपेक्षा आपके विचार अधिक गम्भीर, सक्रिय और प्रभावशाली थे। जनता में इस पत्रिका का बहुत स्वागत हुआ। युवा लेखन और कथन को भी प्रोत्साहन मिला। चातुर्मास समाप्त होने को ही था कि मंडी अहमदगढ़ से गुरुदेव पूज्य श्री कुन्दन लाल जी महाराज का संदेश मिला कि चातुर्मास समाप्त होते ही मंडी अहमदगढ़ आ जाओ।

लुधियाना का चातुर्मास समाप्त कर आप मंडी अहमदगढ़ पधारे। तत्र विराजित मुनिश्री कुंदन लाल जी महाराज ने कहा कि हम तुम्हारे हृदय की भावनाओं को समझते हैं और यह भी जानते हैं कि तुम्हारे दिल में विश्व कल्याण की उत्कट अभिलाषा विद्यमान है। पर इस के लिए तुम्हें अपने को पूरी तरह तैयार करना होगा। अपने ज्ञान की वृद्धि करनी होगी। याद रखो, तुम्हें अनेक बाधाओं और विरोधों का सामना करना होगा। धर्मयुद्ध लड़ने होंगे। जब तक तुम स्वयं मजबूत नहीं हो जाओगे, संभवतः तुम वह सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, जिसकी तुम कल्पना करते हो। सफल सेनापति वही होता है जो समय को पहचानता है। समय को देख कर वह जितने उत्साह से आगे बढ़ता है समय आने पर उतने ही उत्साह से पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष इतिहास का निर्माता होता है और इतिहास उसके नाम पर फूलों की वर्षा करता है।

मुनिश्री कुन्दन लाल जी महाराज की वाणी सारगर्भित थी, जिसका मुनि जी पर तत्काल प्रभाव पड़ा। उसी समय उन्होंने निश्चय कर लिया कि जब तक गुरुदेव स्वयं आज्ञा नहीं देते तब तक चाहे जितना समय लगे उनके सान्निध्य में ही रहेंगे। इस प्रकार लगातार तीन वर्ष तक चरणों में रह कर आपने विभिन्न धर्मग्रन्थों का गहन अध्ययन किया और संसार के अलग-अलग धर्मों के प्रति ज्ञान प्राप्त किया। इसके साथ ही आपने वहीं पर रहते हुए प्रभाकर, साहित्यरत्न और विद्यारत्न सफलतापूर्वक उत्तीर्ण किए।

पूज्य श्री कुन्दन लाल जी महाराज का स्वास्थ्य उन दिनों सहसा गिरने लगा। मुनि जी ने अपने गुरु भाई श्री सुभाग मुनि जी के साथ दिन-रात करके उनकी बड़ी सेवा की। एक-एक घन्टे बारी-बारी से जागकर सेवा में लगे रहे। पर होनहार को कौन टाल सकता है। एक दिन श्री संघ को बुलाकर मुनिश्री कुंदन लाल जी महाराज ने कहा कि भाइयो, अब मैं इस संसार से विदा लेने वाला हूँ। यदि किसी को मेरे कारण कोई कष्ट या पीड़ा हुई हो तो उसे भूल जाएं। बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य था। उन्होंने मुनिश्री छोटेलाल जी महाराज, मुनिश्री सुशील कुमार जी तथा श्री सुभाग मुनि जी के सिर पर हाथ रखा और शिक्षा दी कि अपने संयमी जीवन का पूर्ण ध्यान रखना और धार्मिक मर्यादाओं में रहते हुये अहिंसा और प्रेम का प्रचार करना तथा भगवान् महावीर की वाणी में श्रद्धा रखना और उसका प्रचार विश्व भर में करना। फिर आपने शांत भाव से सब की ओर देखा

और कहा कि मुझे नमोकार मंत्र सुनाओ। सब ने महामंत्र नमोकार का पाठ आरम्भ कर दिया। सब के नेत्रों में अश्रु भर आए। इतने में एकाएक आकाश में बादल उमड़ पड़े और देखते-देखते ही बड़ी-बड़ी बूंदें पड़ने लगीं। एक बूंद खिड़की में से आकर श्री कुंदन लाल जी महाराज के सिर के मध्य में इस प्रकार पड़ी मानो वह महायोगी के संसर्ग से धन्य हो जाना चाहती हो। सहसा महाराज जी का मुख खुल गया और उनके प्राण पंखेरू उड़ गये। आत्मा स्वर्ग लोक सिधार गई और मृत देह पड़ी रही। सारे नगर में बिजली की दौड़ की तरह यह दुखद समाचार फैल गया। मुनिश्री के पार्थिव शरीर का दर्शन करने के लिये और दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये अपार जन-समूह उमड़ पड़ा। श्री कुंदनलाल जी महाराज का पार्थिव शरीर ऐसा लग रहा था जैसे वह विश्राम कर रहे हों। दूसरे दिन उनकी शवयात्रा आरम्भ हुई। एक बार फिर आकाश में बादल छा गए और मूसलाधार वर्षा होने लगी। लगता था कि शवयात्रा में विघ्न पड़ेगा। तभी मुनिश्री सुशील कुमार जी के पूछने पर गुरुदेव श्री छोटे लाल जी महाराज ने फरमाया कि चिंता की कोई बात नहीं। यह केवल पांच मिनट का खेल है। देवलोक में खुशियां मनाई जा रही हैं। ठीक पांच मिनट बाद वर्षा रुक गई और ठंडी हवाओं के चलने से वातावरण शांत हो गया। शवयात्रा के समाप्त होते ही शव को चंदन की चिता पर रख कर अग्नि को समर्पित कर दिया गया।

अब गुरुदेव की आज्ञा हुई कि सब लोगों को वहां से विहार कर देना चाहिये क्योंकि एक ही स्थान पर बिना किसी विशेष प्रयोजन के अधिक दिनों तक ठहरना शास्त्रीय नियम के विरुद्ध है। जनता के बहुत आग्रह करने पर भी गुरुदेव सहित मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज और श्री सुभाग मुनि जी महाराज ने प्रस्थान किया और जगरांव पहुँचे। संभवत: कम लोगों को यह ज्ञात होगा कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अमर सेनानी लाला लाजपत राय के चाचा जी ने मुनि जी के दादा गुरु के पास आ कर जैन धर्म के अनुसार दीक्षा लेकर साधु जीवन अंगीकार किया था। आज भी उनका परिवार मुनि जी को बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता है।

उस समय वहां पर श्री विमल मुनि जी महाराज भी विराजमान थे। जगरांव के श्री संघ ने प्रार्थना की कि मुनि जी का प्रवचन होना चाहिये। किंतु आपने श्री कुंदन लाल जी महाराज के स्वर्गवास के कारण उनकी प्रार्थना स्वीकार न की। आग्रह बढ़ता ही गया। अन्तत: आप को जनता की भावनाओं का आदर करना ही पड़ा। और आप नित्यप्रति धर्म संदेश देने लगे। जनता आप के भाषणों को मंत्रमुग्ध हो कर सुनती थी। इसी बीच आप ने जीरा (पंजाब) की ओर विहार कर दिया। वहां पर भी आपके भाषणों की धूम मच गई। वहीं आपको तपस्वी श्री तारा चन्द जी महाराज के दर्शन करने का सुअवसर मिला। मुनिश्री ताराचन्द जी महाराज बड़े ही सरल और हंसमुख प्रकृति के संत थे। जो भी आपके सान्निध्य में आता था, आपसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। उनकी अमृतमयी वाणी के मानसरोवर में अवगाहन कर न जाने कितनों ने हंसगति को प्राप्त किया।

●

# सादड़ी सम्मेलन

इसी बीच आप को सादड़ी साधु सम्मेलन में सम्मिलित होने का निमंत्रण मिला। साधु वर्ग ने मिलकर निर्णय किया कि एक ऐसा सम्मेलन आयोजित किया जाये जिसमें सभी साधु और साध्वियां एकत्र होकर बदलते युग की धारा के साथ अपने सिद्धांतों और विधि-विधान में परिवर्तन करें। इसके लिये निश्चित किया गया कि सब साधु और साध्वियां राजस्थान के सादड़ी नामक स्थान पर एकत्र हों। सम्मेलन बहुत महत्वपूर्ण था। ऐसे संमेलन में सम्मिलित हो कर सक्रिय भाग लेना मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज जैसे प्रतिभाशाली सन्त के लिए अत्यावश्यक था। आप ने निर्णय किया कि वहाँ पर समाज के सुधार का प्रश्न हो, संरक्षण, संगठन और एकता पर विचार किया जाये। जनता और आयोजकों का भी अनुरोध था कि यदि आप सम्मेलन में सम्मिलित हों तो निश्चित रूप से समाज कल्याण में सहायता मिलेगी। अपनी योजनानुसार आप ने सादड़ी सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए प्रस्थान कर दिया और एक लम्बी यात्रा पर चल पड़े। सम्मेलन का संस्मरण मुनि जी के अपने शब्दों में इस प्रकार है :—

सचमुच आज से भारत के इतिहास में यह एक नया अध्याय जुड़ गया; जबकि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में बंटी हुई सारी स्थानकवासी साधु संस्था एक आचार्य के नियन्त्रण में संगठित हो गई और समस्त इकाइयों और बिखरी हुई आचार्य परम्पराओं ने अपनी समस्त पुरातन पदवियां व उपाधियां त्याग कर एक सर्वसम्मत नवीन विधान तैयार कर लिया। इस महान् कार्य के सम्पादन के लिए भारत भर की सम्प्रदायों से प्रतिनिधि मांगे गए थे। जिनमें से दो-चार को छोड़ कर २२ सम्प्रदायों के प्रतिनिधि ५२ की संख्या में एकत्रित भी हुए थे। श्वे० स्था० जैन कान्फरेन्स ने क्या-क्या प्रयत्न किये और दूसरे हिताकांक्षी वर्ग ने क्या-क्या कष्ट सहन कर इसे पूर्ण करने का भगीरथ प्रयास किया यह सब सम्मेलन की पृष्ठभूमि में छिपा हुआ है। मैं तो आप को केवल सम्मेलन के कुछ अंदरूनी संस्मरण ही बताऊँगा। वास्तव में यही कुछ तो उसका जीवन है।

साधु नियोजन समिति की विनती स्वीकार कर के साधुवर्ग का प्रतिनिधि बन कर सादड़ी सम्मेलन की ओर चल पड़ा। इन पंक्तियों के लेखक को भी ७०० मील का मार्ग तय करना पड़ा। प्रसन्नता की बात तो यह है कि हम उसी दिन ठीक ९ बजे सम्मेलन की प्रारम्भिक कार्यवाही के समय पहुँच गए थे।

जनता के कोलाहल में मांगलिक स्तवन और कीर्तन का उद्घोषण हुआ किन्तु सुना कुछ नहीं। अव्यवस्था के अभिशाप ने बदला ले ही लिया और १५ मिनट में कार्यवाही चला कर सब उठ गए। पहली सभा समाप्त हुई। दोपहर के समय समस्त साधुवर्ग की सभा हुई और सम्मेलन के मुहूर्त की गरमा-गरम चर्चा हुई। किसी ने कहा कि मुहूर्त ठीक नहीं। जोधपुर पे एक ज्योतिषी द्वारा प्रकाशित पैम्फेलेट दिखाया गया जिसमें लिखा था कि सम्मेलन यदि इस मुहूर्त (रविवार, अक्षय तृतीया) में किया गया तो अवश्य असफल होगा। किन्तु अन्त में मेरा यह समर्थन जोरदार स्वर में स्वीकार किया गया :

रविवार, अक्षय तृतीया (भगवान् ऋषभदेव ने एक वर्ष बाद पारणा किया, इक्षु तृतीया भी इसे कहते हैं) चन्द्रमा वृष का, सूर्य मेष का, अधिक ग्रह उदय हैं। अतः आज का मुहूर्त मानने में कोई आपत्ति नहीं, सिवाय इसके गुरु और शुक्र की युक्ति कहीं-कहीं संघर्ष का रूप दिखाए। किन्तु अन्त में सफलता अवश्य मिलेगी ऐसा ज्योतिष दृष्टि कहती है।

तीन बजे का समय है, मंगल पाठ हो चुका है, अध्यक्ष का चुनाव करना है; नाम चुन दिये गये। मेरी ओर से अधिकारों की व्याख्या मांगी जा रही है, अन्त में 'वीटो' पावर का अधिकार देकर केवल दर्शक साधुओं की उपस्थिति स्वीकार कर ली जाती है। दलील यह थी कि जिस साधु-वर्ग को इन विधानों का पालन करना है उन्हें क्यों न बैठने दिया जाये किन्तु वे बोल नहीं सकते, बोलने का अधिकार तो केवल प्रतिनिधियों को ही रहेगा।

आम जनता में सम्मेलन क्यों नहीं कर लिया जाता? इस प्रश्न के उत्तर में, क्योंकि अभी इतनी ऊँची भूमिका है नहीं, जिसकी छाप समस्त दर्शकों पर पड़ सके, नहीं तो आदर्शवादी संस्था को धक्का लगेगा।

रात का समय है, विषय निर्वाचन समिति बनाई जा रही है। १५ नाम चुने गए, मेरा नाम भी चुना गया है और न जाने किस-किस का नाम चुना गया; किन्तु प्रातः की सभा के लिए समस्त प्रतिनिधियों ने ही विषय का निर्धारण किया। इस संघ का नाम भी तो अभी चुनना है; लीजिए नामों की परम्परा :

जैन संघ, महावीर श्रमण संघ, वर्धमान श्रमण संघ, भारतीय श्रमण संघ (मेरी ओर से चुना गया नाम)

अन्त में 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' सर्वानुमति से स्वीकृत किया गया है।

'स्थानकवासी' शब्द और 'भारतीय श्रमण संघ' नाम रखने वालों ने प्रबल युक्तियों की झड़ियां लगाईं। स्थानकवासी शब्द के पीछे हमारा सारा इतिहास है, समूची परंपरा है और अखिल भारतीय फेडरेशन है; तथा सर्वाधिक प्रसिद्धि का भी बल इसी नाम के पीछे है।

भारतीय श्रमण संघ-क्योंकि श्रमण संस्कृति का जन्म भारत में हुआ अतः भारत शब्द जोड़ा जाय। 'श्रमण' शब्द क्योंकि यह शास्त्रों में बार-बार आया है और 'श्रमण' शब्द से

जैन साधुओं और बौद्ध साधुओं का ही बोध होता है। बौद्ध विदेशों में अधिक हैं, भारत में तो केवल जैन साधु ही श्रमण संस्था को कायम रखे हुए हैं। अतः भारतीय श्रमण संघ ही नाम उपयुक्त है। जिसके बल पर आप समूचे विश्व में पनप सकते हैं और श्रमण तथा गृहस्थ वर्ग के नाते दोनों ही मार्ग का संसार को उपदेश भी दे सकते हैं।

श्रमण संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृति है, और वह आर्यों के भारत आगमन से पर्व भी विद्यमान थी। साधकों की संस्था को ही श्रमण कहा गया किन्तु साधक की व्याख्या जैन शास्त्रों की उत्कृष्टतम देन है। अतः सर्वश्रेष्ठ श्रमण परम्परा यथार्थ और आदर्श के नाते जैनभिक्षु ही उसमें आते हैं। अतः इसका नाम 'श्रमण संघ' तथा भारत जोड़ कर 'भारतीय श्रमण संघ' ही ठीक रहेगा।

प्रातःकाल का समय है, सोमवार का दिन है। एक आचार्य की योजना पर बहस हो रही है। उग्रदल बड़ी तेजी से एक आचार्य का समर्थन कर रहा है और पुरातन तथा पुराणपंथी जरा संकोच कर रहा है। आचार्य तो पहले भी भिन्न-भिन्न थे, गणधरों के भी पृथक्-पृथक् गण थे तो आज ही क्यों एक आचार्य की आवाज बुलन्द की जा रही है ? उग्रदल बहुत तीव्रता से एक आचार्य को कायम कर देना चाहता है।

समाज को बचाना है, गौरव से जीना है, तो एक आचार्य की योजना के सिवाय और कोई चारा है ही नहीं। भिन्न-भिन्न आचार्यों ने समाज को अलग-अलग बांटा, संगठन को तोड़ा, अपनी-अपनी गुरुपरम्परा कायम की। इसके फलस्वरूप एक सम्प्रदाय का श्रावक व साधु दूसरी सम्प्रदाय के श्रावक और साधु को सम्यग्दृष्टि और वन्दनीय मनाने से भी इनकार करने लग गया। एक ही विचारों के लोगों में संघर्ष हुआ, लड़ाइयां छिड़ीं और द्वेष की आग भभकी। यह सब एक आचार्य के न होने के कारण ही हुआ। शिष्यों की अलग-अलग टोली ने कौटुम्बिक भावना को जन्म दिया। समाज के सामने वैयक्तिक विषमता शासन करने लगी। जिससे आज लाखों की संख्या में अस्तित्व रखने वाली समाज छिन्न हो कर छोटी टुकड़ियों में बंट गई। न संगठन रहा, न प्रेम रहा और न आपसी किसी प्रकार का भी समझौता कायम रह सका।

बौद्धों की अपेक्षा हम में क्यों इतना भयंकर मतभेद और संस्थाओं का जन्म हुआ ? इसका कारण दीक्षा के समय संघ की उपेक्षा, भगवान् की उपेक्षा और धर्म की उपेक्षा है। वैरागी को क्या बताया जाता है ? केवल गुरु। क्या पढ़ाया जाता है ? केवल 'करेमि भंते।' क्या सिखाया जाता है ? अपनी सम्प्रदाय। परिचय किससे कराया जाता है ? केवल अपने सम्प्रदाय के अनुयायियों से। फिर बताइए, सामूहिक भावना किस प्रकार पैदा हो ? स्नेहधारा किस प्रकार प्रवाहित हो ? एक दूसरे से मिल कर सुसंगठित बनाने की भावना किस प्रकार पनपे ?

बस केवल एक ही उपाय है, एक आचार्य और एक संघ के शासन में नियंत्रित होना।

एक बड़े प्रतिष्ठित आचार्य जी उठे और छः माह परीक्षण नहीं, अपितु आपसी समस्थिति के लिए व्यवधान मांग कर बैठ गए।

मैं :—ऐसा करने का कारण भी बताया जाय ?

उत्तर :—क्योंकि अभी मानसिक पृष्ठभूमि सन्तों की प्रबल नहीं देख रहा हूँ।

इतना सुनते ही मेरी आत्मा उग्रता से ध्वनित हुयी और मैंने कहना प्रारम्भ किया।

"जिनके हाथ में सत्ता थी, वे भी सत्ता त्याग कर एकत्रित हो कर कार्य करने लग पड़े। जो आप सन्तों की मानसिक स्थिति की निर्बलता की ओर संकेत कर रहे हो, इससे हृदय में हमें बहुत चोट लग रही है। मानसिक स्थिति को भांपने में बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक भी हार खा जाते है, आप कैसे जान पाये कि हमारी मनोभूमि निर्बल है ?

"संघ ऐक्य के लिए ७०० मील का पैदल सफर किया। चट्टानों, कंकड़ों, काटों और भयानक प्रचंडाग्नि की आंधी से मुकाबला किया केवल एकता के लिए।

"आत्मिक और मानसिक सम्पूर्ण बल को संजो कर आज एकता का हमने आह्वान किया और फिर आप कहते हैं मन अभी निर्बल है।

"युग कहता है कि एक हो जाओ, समाज बड़ी उग्रता से चुनौती दे रहा है कि एक हो जाओ। आत्मग्लानि और दम तोड़ती मुनि व्यवस्था, भागती हुई इज्जत और शान्ति की लालसा लिये ताकती हुई दुनिया हमसे एक ही वस्तु मांगती है, वह है एकता।

"हमारे अन्दर सड़ांध पैदा हो गई है। हमारा जीवन समाज के लिए भारभूत और अपने लिये अभिशाप रूप बन गया है !

"आप युवकों की ओर संकेत कर साम्प्रदायिक मोह को मत छिपाइये ! बड़प्पन के नाते कोई बात मान्य नहीं होगी, बुद्धिवाद को नीचे दबाकर कोरा महन्तवाद नहीं चल सकता, आप हमारे जीवन से फायदा उठाइए, हमारी ज़िन्दगी को समाज, युग और विश्व के लिये आदर्श बनाइये। उन उठती हुई जवानियों से खिलवाड़ मत कीजिए, इनसे कुछ काम लीजिये ! एक अनुशासन कायम करिये और एक आचार्य बनाइये, बस यही एक ढंग है। नहीं तो इस ग्लानि में हम जीने और सांस लेने लिये तैयार नहीं।"

वातावरण क्षुब्ध अवश्य हुआ किन्तु परीक्षण और व्यवधान दोनों ही शब्द हवा हो गए। कुछ क्षण के बाद सन्नाटे को चीरती हुई शान्तिरक्षक जी की ध्वनि उच्छ्वासित हुई कि एक आचार्य की योजना स्वीकार, बस कहते ही सर्वानुमति से पास हो गई।

सबके मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई, मीटिंग समाप्त हुई।

समाचारी का प्रश्न बहुत टेढ़ा है, आज की सभा में लम्बा विवाद चल पड़ा है। समाचारी का तेल लगाकर पुराने और घिसे तीर भी प्रहार करने चल पड़े हैं। कभी प्रान्तीयता का अभिमान आड़े आता है, तो कभी शास्त्रों की दुहाई दी जा रही है। युवा मुनि वर्ग तो प्रतिनिधि होने पर भी आज दर्शक का पार्ट अदा कर रहा है। अपने को भी यह विवाद बहुत शुष्क लग रहा है।

शय्यातर का प्रश्न छिड़ गया, और कुछ रुचि अंगड़ाई लेने लगी।

आज्ञा किस की लेनी चाहिये ? मकान मालिक की। दूसरी ओर से आवाज़ आई, नहीं। मालिक और अधिकारी दोनों ही से आज्ञा ली जा सकती है। देखने वाली बात तो यह थी कि कुछ सन्त स्थानक की आज्ञा जैन बिरादरी के किसी भाई की लेते हैं और कुछ स्थानक के नौकर की भी आज्ञा लेते हैं और दोनों अपने आप को शास्त्र-सम्मत मानते हैं, और हैं भी दोनों अनुकूल ही। परन्तु दोनों का दृष्टिकोण थोड़ा चक्करदार है। मालिक और

नौकर की परिभाषा अलग-अलग है, अपनी-अपनी परिभाषा ही उन्हें मान्य है।

भगवान् महावीर भी उद्यान में माली की आज्ञा लेकर ही ठहरते थे तो हमें क्या है, नौकर की आज्ञा लेकर ठहरने में ? उत्तर मिलता है कि माली बाग की तोड़-फोड़ में भी शामिल है, सामान्य नौकर नहीं। खैर, लम्बे वाद-विवाद के बाद स्वामी और अधिकारी की आज्ञा में ठहरने का प्रस्ताव पास हो गया।

विवाद का भाग अभी छूट गया है, प्रतिनिधि कैसे सहन कर सकते थे कि स्वामी कौन ? इसका अधूरा निर्णय कैसे छोड़ दिया जाये ?

उत्तर दिया गया कि जिसका उस मिल्कियत में हिस्सा हो।

स्थानक की आज्ञा किससे लेनी चाहिये कितने ही स्थानों में स्थानक की रजिस्ट्री ओसवाल बिरादरी के नाम की हुई है, तो क्या आज्ञा ओसवाल से ही लेनी चाहिये, क्या अन्य जैन से नहीं लेनी चाहिये ?

उत्तर दिया गया कि स्थानकवासी जैन से ले लेनी चाहिए।

प्रश्न उठा कि एक ग्राम में एक स्थानकवासी जैन है, और एक ही स्थानक है, शेष बस्ती-समूची ही यवनों की है, वहाँ क्या किया जाय ? ऐसे-ऐसे ग्रामों के नाम भी बताये गए।

एक आदर्शवादी ने यथार्थ को झुठलाकर त्याग की सलाह दी किन्तु वह मान्य नहीं हुई। अन्त में जैन धर्म से प्रेम रखने वाले की आज्ञा प्रामाणिक मानी गई तभी छुटकारा हुआ। यह प्रश्न भी एक युवक मुनि ने ही उठाया था।

समाचारी के प्रसंग में विद्युत् का प्रसंग भी बहुत रोचक रूप से उपस्थित हुआ। इस प्रश्न को भी बड़े नाटकीय ढंग से उपस्थित किया गया और समर्थन भी बहुत विचित्र तरीके से।

विद्युत् के प्रश्न के बारे में सारी समाज में मतभेद है। लाऊडस्पीकर के कारण यह प्रश्न इतना पेचीदा बना है, क्योंकि मुनि लोग आध्यात्मिक जगत् से उतर कर सामाजिक और प्रचार के रंगमंच पर अपना आसन जमा रहे हैं। स्थिति इसलिये गंभीर बन गई है कि एक ओर तो समाज हमें सामाजिक रूप में और प्रचारक के रूप में देखना चाहती है और दूसरी ओर आध्यात्मिक पूर्ण निवृत्ति प्रधान रखना चाहती है। कैसी विचित्र समस्या है। प्रचार चाहती है किन्तु प्रचार के साधन देने में शर्म मानती है। यह कैसे चल सकता है, बस क्या था, बहुत लम्बा विवाद चला, और एक प्रबल समर्थक प्रतिनिधि ने तो लाऊड-स्पीकर का निषेध करना अनधिकार चेष्टा करना है, यहां तक कह दिया। इससे खलबली मची किन्तु उसकी चातुरीपूर्ण उक्तियों ने उनके खम्बे हिला दिये।

"लाऊडस्पीकर श्रोताओं की जरूरत है, वक्ता की जरूरत नहीं। वक्ता की वक्तृत्व-कला में जहां भाषा, भाव और स्वर आवश्यकीय तत्त्व हैं वहां लाऊडस्पीकर का समावेश नहीं। ध्वनिवर्धक का सम्बन्ध श्रोताओं से है, इसीलिये वह वक्ता के कारण नहीं लगाया जाता अपितु अधिक श्रोताओं के कारण लगाया जाता है। इसलिये इसके निषेध में हमें नहीं जाना चाहिये।

किन्तु चुपके से दूध पर से मलाई कौन उतारने देता है, सचित्त और अचित्त का झगड़ा आ गिरा और लाऊडस्पीकर की समस्या कितनी ही सतह नीचे उतर कर दब गई।

एक कमेटी बन गई, 'सचित्ताचित्त-निर्णायक समिति' उसका नाम रखा गया।

बहुत सारी वनस्पति कुछ शस्त्र परिणत होने पर और केला आदि छिलका उतरने पर कई साधु ग्रहण करते हैं, और कई नहीं। यह एक विवाद का विषय था, झगड़े में सब चलते हैं और सन्देहास्पद का त्याग होना भी जरा मुश्किल है। आखिर क्या किया जाये। कुछ तो होना ही चाहिए। अन्त में कमेटी पर निर्णय का भार रखकर इस सिरदर्द से छुटकारा लिया गया।

सम्प्रदायवादी साम्प्रदायिक नामों के मोह को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, किन्तु यह उक्ति श्रावकों पर अधिक चरितार्थ होती है। फिर भी उनका किसी न किसी श्रमण ने प्रतिनिधित्व करते हुये कहा कि कितना अच्छा हो कि हम अपने श्रमणसंघ को बड़े-बड़े आचार्य जिन पर आज भी सम्प्रदाय चल रहे हैं उनके नाम पर सुसंगति करें जिससे उन पूज्यों का भी सुयश बढ़ा सकें।

बड़े महापुरुषों से किसी को भी झगड़ा नहीं, हां साम्प्रदायिक संगठनों से चिढ़ अवश्य है। क्योंकि ये ही तो एक मात्र हमारी फूट के कारण हैं।

"नहीं साहब, समस्त नाम हटा कर एक ही श्रमण संघ का नाम चलेगा और किसी का नहीं चल सकता।"

"एकदम मोह त्याग करना ज़रा कठिन होता है, योगाभ्यास करने के लिये भी छः मास रिहर्सल करनी पड़ती है। अतः छः मास की अवधि ज़रूर देनी चाहिये।"

"आज हमारे ये कैसे मुर्दा खयालात हैं। माता-पिता, स्नेही-सम्बन्धी को छोड़ते तो हम ने एक मिनट नहीं लगाई, अब साम्प्रदायों का मोह हमारे पीछे ठाठे मारेगा। क्या आज हम बीस-बीस वर्ष और पचास-पचास वर्ष की निरन्तर मोहत्याग साधना के बाद इतने माया-मोही बन गये हैं कि हम सम्प्रदायों के मोह को भी छोड़ने में असमर्थ हैं?

"मैं नहीं समझता कि अब आप छः माह में क्या जादू कर देंगे कि मोह बिलकुल ही भाग जायेगा। मेरे विचार में ये तथ्यहीन तर्क हैं।"

हाऊस में एक ऐसे प्रतिनिधि थे जो सबसे बड़ा आग्रह रखते थे। किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्हें कोई पहचान नहीं सका, क्योंकि उनका आग्रह शब्दों में छिपा नहीं होता था। अपितु अभिप्रायसूचक व्यंग्यपूर्ण ध्वनि के गाम्भीर्य में रूप सँवारे हुए था। जिस पर लगभग प्रतिनिधिगण कितनी ही बार मुग्ध हुए और हां में हां मिलाते रहे।

वे उठे, अवधि की मांग को मीठी गर्जना के साथ ठुकरा दिया। और सर्वानुमति से साम्प्रदायिक नाम हटाने का प्रस्ताव पास हो गया। प्रान्तों के बंटवारे के विषय में भी एक जबरदस्त झड़प हुई, कोई कहता कि प्रान्त पांच बनाने चाहियें। उत्तर में कहा गया कि ऐसा कैसे हो जायेगा। उत्तरप्रदेश में विचरने वाला आदमी अपने आप को पंजाबी किस प्रकार कहलाएगा? जैन स्थानक पर उत्तरप्रदेश के स्थान पर पंजाब कैसे लिखा जाएगा?

प्रान्तों के निर्माण में आधार भी तो होना चाहिये, या कि बिना आधार के ही प्रान्त बन जाएंगे। अगर सरकार के बनाए प्रान्त उसी रूप में स्वीकार कर लिये जाएं तो क्या हर्ज है?"

"सरकारी प्रान्त तो बहुत हैं।"

"तो क्या हर्ज है, प्रचार की भूमिका बढ़नी चाहिए, समस्त प्रान्तों में प्रचार करने के लिये हमें बढ़ना चाहिये।"

"क्या आप को पता है, सरकारी कितने प्रान्त हैं?"

'तो आप ही बताइए, हमें तो पता नहीं कौन-कौन से सरकारी प्रान्त हैं? उग्रदलीय प्रतिनिधि उठे, कहने लगे, "बड़े दुःख से कहना पड़ता है कि विश्व-भर का भूगोल बनाने वाले भगवान् के शासन के पट्टधर आचार्यों को आज भारत के प्रान्तों का भी पता नहीं मैं यह भी निवेदन कर दूं कि प्रान्तों का वर्गीकरण करने से पहले मुनि श्री की सुविधा का भी ध्यान रखना चाहिये।"

प्रस्ताव अधिक लम्बा होने के कारण अरुचिकर-सा बन गया और सरकारी प्रान्त लगभग १६ स्वीकार कर लिये गए।

प्रान्त का प्रश्न इतनी उलझन लेकर आया कि आते ही झमेला खड़ा कर दिया और जाते-जाते कितनी ही उलझन-भरी कड़ियां छोड़ गया। प्रश्न उठा कि प्रान्तों का धर्म-कार्य चलाने के लिये क्या प्रबन्ध करना होगा। क्या प्रान्ताचार्य बनाने हैं, या प्रवर्तक बनाने हैं या अन्य अधिकारी नियुक्त करने हैं जो प्रान्तीय मुनियों की सुव्यवस्था कर सकें।

इस एक प्रश्न के साथ लम्बी समस्याएं उलझी हुई हैं। प्रान्तीय भावना भी कहीं सिर न ऊंचा उठाए और साम्प्रदायिक दलबन्दियां भी कायम न रह सकें। कभी ऐसा भी न हो कि प्रवर्तक या प्रान्ताचार्य चुनते समय बड़ी सम्प्रदायें छोटी सम्प्रदायों को हड़पकर मजबूत पंजा जमा लें। गरमा-गरम बहस के बाद मन्त्रिमण्डल की योजना स्वीकार की गई और १६ मन्त्री बनाए गये तथा १६ का कार्य चुनने का भार मुझे सौंपा गया; मानने का अधिकार हाउस ने अपने पास रखा।

मेरे जो १६ विभाग थे वे विश्व-भर को आगे रख कर बनाये गए थे, क्योंकि मेरे विचार में विदेशों में भी धर्म-प्रचार और भारत का सांस्कृतिक परिचय देने के लिये मुनियों का विदेश-गमन भी समाविष्ट था। आज किसी नाम के प्रचार की जरूरत नहीं, अन्धश्रद्धा अभिशाप है, संकीर्णता, दलबन्दी और साम्प्रदायिकता मनुष्यमात्र के लिये कलंक है। आज की आवश्यकता केवल एक है, कोटि-कोटि अभिवन्दनीय श्रमण भगवान् महावीर के शब्दों में "माणुसत्तं परम दुल्लहं" अर्थात् मानवता ही परम दुर्लभ है। उसी की विश्व को आवश्यकता है, और उसी के प्रचार की जिम्मेदारी श्रमण संस्था पर है।

किन्तु अभी श्रमण-संघ पर रूढ़िग्रस्त तत्वों का गलबा है। अतः उभरने में कुछ वर्ष और लगेंगे। १६ विभाग स्वीकार नहीं किये, केवल आठ ही माने और एक विभाग पर एक से अधिक मन्त्री नियुक्त कर दिये गये।

अभी एक विवादग्रस्त प्रश्न तो रह ही गया था, उसने भी सिर उठाया, 'तिथि-सम्बन्धी वाद-विवाद निपटाया जाये' इस नाम से प्रगट हुआ।

पक्खी, चातुर्मासी और संवत्सरी के सम्बन्ध में बहुत गड़बड़ है। इस घोटाले को भी समाप्त कर देना चाहिये।

एक प्रतिनिधि ने अजमेर सम्मेलन का सहारा लिया और एक दूसरे ने गड़े मुर्दे उखाड़ने वाली लोकोक्ति ही चरितार्थ कर दी।

खूब गरमा-गरम बहस चली, पक्खी-संवत्सरी के नाम पर जोरदार रस्साकशी शुरू हो गई।

संवत्सरी कब करनी चाहिये ? जब चातुर्मास में लोंद का मास आ पड़ता है तब क्या करना चाहिये। शास्त्र में तो केवल ४९ वें दिन चातुर्मास के ७० दिन शेष रहते संवत्सरी मनानी चाहिये; ऐसा ही उल्लेख है। उसमें लोंद का क्या कोई जिक्र नहीं ?

दूसरी ओर से आवाज़ आई कि दो सावन हों तो पिछले सावन में और दो भादों हों तो पिछले भादों में संवत्सरी करने की हमारी मान्यता है।

तीसरी ध्वनि भी गूंजी, "नहीं हमारे आचार्य ने संवत्सरी के विषय में सम्मेलन करने तथा निर्णय मानने में अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखी है।"

उनकी मान्यता है कि दो सावन हों तो भी भादों में और दो भादों हों तो पिछले भादों में संवत्सरी मनाने की हमारी धारणा है।

एक और हुंकार उठी, "क्या शास्त्रों की दुहाई देने वालों के लिये यह एक चुनौती का प्रश्न नहीं है ?" बड़ा कोलाहल मचा, अकस्मात् एक प्रतिनिधि ने मध्यम मार्ग का सुझाव दिया। पास के दूसरे प्रतिनिधि ने "मध्मय मार्ग से समझौता करना कायरता से समझौता करना है" कह कर मध्यम मार्ग के सुझाव को रद्द कर दिया।

विवाद गहरा रंग धारण कर गया और रात की सभ. में निर्णय करने का निश्चय कर सभा विर्सजित हो गई।

इधर-उधर मुनियों को संवत्सरी के विषय में एक मत करने के लिए बड़ी भगदड़ मची। रात की मीटिंग में यह प्रस्ताव फिर आ धमका।

अन्त में समस्त प्रतिनिधिमण्डल ने एक मुनि के याचना करने पर अपनी सारी धारणाएँ अर्पण कर दीं। यदि दो सावन हों तो भी और दो भादों हो तो भी केवल पिछले ही भादों में संवत्सरी करने की मान्यता स्वीकृत कर ली। तब जाकर इस विवाद का अन्त हुआ।

तिथियों के निर्णय में फिर झगड़ा था। कोई उदय से तो कोई अस्त से तिथियों को मानता है। क्या निर्णय किया जाय ? इसीलिए किसी की चतुर्थी और किसी की उसी दिन पंचमी तिथि आ जाती है। इन आंतरिक कलहों और मतभेदों ने इस समाज को एक नहीं होने दिया है।

अजमेर का निर्णय भी बहुत लचर है। एक तिथि निर्णायक कमेटी बनाई गई थी। किन्तु उसका निर्णय आज तक भी प्रकाश में नहीं आया। हां, उसका एक निर्णय जिसमें उसने कान्फरेन्स को पक्खीपत्र प्रकाशित और प्रमाणित करने का अधिकार दिया था, उस पर आज भी आचरण किया जा रहा है। सब तो स्वीकार नहीं करते किन्तु फिर भी अधिकतर सम्प्रदायें कान्फरेंस की टीप को ही प्रमाणित मान कर चलती हैं।

किन्तु कान्फरेंस के पक्खीपत्रों में भी बहुत गड़बड़ी देखने में आती है, तब क्या करना चाहिए ? यही समस्या है और अनिर्णय की स्थिति भी उसी तरह मुंह बाये खड़ी है।

हाउस में कुछ देर तो सन्नाटा छाया रहा। आखिर एक कमेटी बनाकर उसके निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिए, इतना ही निर्णय हुआ। देखें अब कब निर्णय होता है।

दीक्षार्थी का प्रश्न भी महत्वपूर्ण था, जिस पर चर्चा उग्ररूप धारण कर गई। उग्ररूप का अर्थ क्रोध नहीं, अपितु एक ओर एक पक्ष का अनुमोदन और समर्थन था तथा दूसरी ओर दूसरे पक्ष का समर्थन और अनुमोदन था।

एक ओर से कहा जाता था कि योग्यता देखकर दीक्षा देनी चाहिए, दूसरी ओर से आयु का भी विशष अनुरोध किया जा रहा था कि अमुक आयु के उपरान्त ही बालिग दीक्षार्थी दीक्षा ले सकेगा।

युवक मुनिगण की ओर से बालदीक्षा का गहरा विरोध था जो कि इन पंक्तियों के लेखक के माध्यम से स्फोट हो रहा था। अन्त में दीक्षार्थी को दीक्षा देने का अधिकार मन्त्री व आचार्य को ही देकर इस प्रश्न से विराम ग्रहण किया गया।

मैं अधिक लम्बा जाना नहीं चाहता। सम्मेलन के संस्मरण बहुत बढ़ जाएँगे। मैं उन्हें विभाग और वर्गरूप में बांट कर जल्दी से जल्दी छुट्टी लूंगा।

सम्मेलन के संस्मरण पांच भागों में बांठे जा सकते हैं।

१. धार्मिक, २. बौद्धिक, ३. सामाजिक, ४. साम्प्रदायिक, ५ ऐक्यविषयक

१. धार्मिक संस्मरण नियम, उपनियम, समाचारी तथा विधान के रूप में उपस्थित किये गए जिनका सम्बन्ध अधिकतर साम्प्रदायिक धाराओं से है और मैं अधिकतर उनका उल्लेख भी कर आया हूँ।

२. बौद्धिक संस्मरण अधिक संख्या में तो नहीं हैं, फिर भी रूढ़िवाद पर बुद्धिवाद की विजय कहीं-कहीं अवश्य हुई है।

वास्तव में सम्मेलन की सफलता बुद्धिवाद की विजय भी कही जा सकती है क्योंकि वुद्धिवादियों ने स्वार्थ को आगे न रख कर संघहित को ही प्रधानता देने में कल्याण समझा है।

मंत्रिमण्डल और समूची शासन-व्यवस्था बुद्धिवाद के सिद्धान्तों से ही अनुस्यूत है, यद्यपि इसे रंग कुछ भी चढ़ाना पड़ा हो। यह भी तो बुद्धिवाद की अनुपम जीत है कि शास्त्रीय पद्धति को युग के अनुकूल बना दिया जाय।

रूढ़िग्रस्त तत्व इसे नहीं पहचान पाया और खुशी के साथ रूढ़ि का भावुकता तथा भौतिकता का रूप नहीं ले सकती।

३. सामाजिक संस्मरण के रूप में हम कितने ही महत्वपूर्ण विचार रख सकेंगे क्योंकि जो कुछ हुआ वह व्यक्ति की अपनी निजी इच्छा के कारण नहीं अपितु समष्टि की मांग की पूर्ति के रूप में, निजी महत्वाकांक्षाएँ बलि के रूप में चढ़ानी पड़ीं।

समाज ऐक्य के बिना बलवान् नहीं बन सकता। उसका आदर्श है केवल मुनिगण, यदि वह एक बने तो समाज भी एक बन सकता है। आखिर समाज भी तो मुनियों के नामों पर ही बिखरा हुआ है। मुनियों की अनेकता के मिटते ही समाज की अनेकता स्वयं लुप्त हो जायेगी।

यही कुछ समझ कर एक आचार्य योजना स्वीकार की गई।

महावीर भवन, साम्प्रदायिक उपाश्रय और वैयक्तिक नाम पर चलने वाली संस्थाएँ ही समाज की बिखरी हुई असंगठित शक्तियां हैं।

सम्मेलन ने इस विषय पर बड़ी सावधानी पूर्वक जोरदार काम किया है कि समस्त स्थानक (भले ही वे किसी भी नाम से पुकारे जाते हों) एकमात्र श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ की निश्राय में आ जाने चाहिएं, और उनका नाम जैनस्थानक ही होना चाहिए तभी जैन श्रमण संघीय मुनि उसमें ठहर सकेंगे, वरन् उसमें कोई नहीं ठहरेंगे। इसके लिए एक वर्ष की अवधि दी गई है। संवत्सरी आदि तिथि-निर्णय भी सामाजिक एकता के नाते किए गए हैं। साहित्य, शिक्षण, प्रचार, चातुर्मास ये सब समाज को उन्नत बनाने के लिए ही व्यवस्था बांधी गई है।

कोई भी साहित्य साहित्य मन्त्री की आज्ञा विना नहीं छपा सकेगा। नहीं तो ये पुस्तकें भी कभी-कभी हथियार के रूप में बरती जाती थीं।

शिक्षण के बिना मानस कभी पनप नहीं सकता। जितने ऊँचे दरजे का शिक्षण दिया जायगा उतना ही हमारा मानसिक धरातल स्वच्छ और ठोस तथा संस्कारयुक्त बन सकेगा।

प्रचार-सम्बन्धी समस्त नियम-उपनियम भी समाज को आगे रख कर बनाये गए और बनाए जायेंगे।

चातुर्मास का दृष्टिकोण भी यही है। तीन-तीन, चार-चार सौ घरों वाले ग्राम भी चातुर्मास के लिए तरसते हैं किन्तु मुनि नहीं पधारते हैं। उनकी भी सुनवाई की जायगी।

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से कुछ बातें अवश्य रह गई हैं। इस संघ का नाम समाचारी तथा अन्य कुछ और ऐसी बातें हैं जिनमें हमने अपनी संकीर्णता का परिचय दिया है और आजकल संकीर्णता का ही पर्यायार्थिक शब्द साम्प्रदायिक स्वीकार कर लिया है।

ऐक्य विषयक प्रस्ताव हमने भले ही पास नहीं किए हैं, वातावरण जरूर तैयार कर लिया है और हमारा कुछ उद्देश्य यह बन गया है कि जैनों के समस्त फिरकों को एक पथ पर लाया जाय। श्री पुण्यविजय जी का पुण्य मिलन, हाऊस में आना, स्वागत और स्नेह संवादों में प्रेम बढ़ाना, इसी तथ्य की ओर संकेत कर रहा है।

हमें अन्त में भारत और विश्व की एकता का संदेश देना है, मानवता का पाठ पढ़ाना है। हां, उससे पहले स्वयं को तो पढ़ना ही चाहिए क्योंकि कोरा आदर्शवादी उपदेश व्यवहार्य और ग्राह्य दोनों गुणों से शून्य रहता है। इसीलिए आज के संसार में उपदेश उतने महत्वपूर्ण नहीं रह गए हैं जितना कि इन्हें होना चाहिए था।

इस श्रमण संघ ने स्वयं एकता का पाठ पढ़ा है और उसने दुनिया के लिए आदर्श बन कर एकता का मूक पाठ तो पढ़ा ही दिया है। इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है।

मैं संसार के उस वर्ग से सम्बन्ध रख रहा हूं जिसकी आजीविका का भार समाज वहन करता है। इस आदान के अनन्तर प्रदान का दायित्व इस संस्था पर अधिक आ पड़ता है। इसने उसे पूर्ण किया या नहीं आज यह प्रश्न विचारणीय नहीं रहा, अपितु पिछली भूल भविष्य में न पनप सके, ऐसे सुधार का ही प्रश्न शेष रह जाता है।

इस प्रश्न के समाधानार्थ ही सम्मेलन में मैंने अधिक चाव से भाग लेने की आत्म-साधना की। शारीरिक कष्ट-परम्परा को ध्यान में न रख कर सम्मेलन में पहुँचा और उसमें उचित भाग अदा किया।

मेरा एक काम था कि मैं युग के सन्देश को सुनाऊँ और बार-बार चेतावनी देता रहूं कि भविष्य में अगर श्रमणवर्ग को जिन्दा रहना है तो वह आज से उत्तरदायित्वपूर्ण बने। अनुत्तरदायी व्यक्ति को राष्ट्र में कोई स्थान प्राप्त नहीं हुआ करता।

श्रमण वर्ग के पास पेट की समस्या का कोई समाधान नहीं। यदि आप कटु सत्य सुनने की क्षमता धारण कर सकें तो मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं युग के यथार्थ दिग्दर्शन का चार्ट पेश कर सकूं।

आज देश को कर्मवीर बनने की जितनी जरूरत थी उतनी ही अधिक श्रमण वर्ग ने देश को भीरु बनाने में सहयोग दिया। मैं इस तथ्य को भलीभांति जानता हूं कि श्रमण संघ का अभ्युदय पुरुषार्थ की पराकोटि पर आश्रित था। किन्तु आज का श्रमण भगवान् महावीर का श्रमण नहीं, वह तो शंकर के मायावाद के प्रभाव में आया हुआ अद्वैतवादी श्रमण है।

संसार की अनित्यता का, स्वर्ग-नर्क का, और आरम्भ-समारम्भ का डरा हुआ घिनौना रूप आज के श्रमण संघ की ही देन है।

आज की साधना स्वर्गीय सुखों की मीठी कल्पना के लिये की जा रही है। यह पलायनवाद का धार्मिक रूप राष्ट्र के लिये कितना घातक है, क्या आप इसकी कल्पना नहीं कर सकते ?

'कम्मे सूरा' और 'धम्मे सूरा' का सिद्धान्त कितने बुरे तरीके से श्रमण संघ ने बदनाम किया है। थोथे क्रिया-काण्ड पर बल दे-दे कर समाज और धर्म की अन्तरात्मा को कितना खोखला किया है।

अधिक से अधिक नियमों के शिकंजों में आजादी के लौहवीर श्रमण को बांधकर मोक्ष की खुली भावना को क्या नहीं कुचला है ?

आइए, जरा सोचिए और मुझे बताइए कि श्रमण का उद्देश्य क्या था ? पूर्ण निवृत्ति प्रधान बनाने का वास्तविक लक्ष्य क्या रखा गया था ?

इसका यथार्थ शब्दों में आप उत्तर देंगे कि 'मोक्ष' अर्थात् शुभाशुभ से छुटकारा। बताइए सच्चे दिल से भगवान् की साक्षी से आज के श्रमण का क्या वास्तव में यही उद्देश्य है ? अगर है तो छोड़िए समाज, कुटुम्ब, शिष्य-भावना तथा सम्प्रदायवाद, अलग हो जाइए इन समस्त प्रवृतियों से।

अगर आप समाज कल्याण के हितांकांक्षी हैं तब भी बहुत अच्छी बात है लेकिन यह तो बताइए कि समाज की कौन-सी निर्बलता को दूर करने की जिम्मेदारी आपने ली है ?

अगर आप आत्मकल्याण के साथ-साथ समाज कल्याण भी चाहते हैं तब भी मुझे तो कोई आपत्ति नहीं, मैं तो इस भावना का भी आदर करता हूं, किन्तु जरा आत्मा से पूछिए तो सही कि वे क्रोध, मान, माया लोभ, लोलुपता, प्रतिष्ठा की भूख और ऐन्द्रिय सुखाकांक्षा कितनी मिट गई है ?

किसी तरफ चलिए, किन्तु कपना एक उद्देश्य लेकर चलिए, निरुद्देश्य मत चक्कर काटिए। आत्म-साधना करना या समाज सेवा दोनों ही उपायेगी कार्य हैं किन्तु समाज पर भार बनकर समाज को खोखला बनाना तो उपयोगी नहीं कहा जा सकता।

आप बताइए कि आप समाज पर भार हैं या नहीं ? अगर हैं तो भार बनना छोड़ दीजिए; अगर नहीं हैं तो दायित्वपूर्ण बनिए और भार कहने वालों को मुंहतोड़ उत्तर दीजिए। किन्तु वह उत्तर शब्दों से न होकर रचनात्मक कार्य से होना चाहिए !

मेरे यही विचार थे जो कि मुझे पंजाब से उठा कर राजस्थान सम्मेलन में ले गये। मुझे इन विचारों को प्रगट करना था और मैंने इसके लिए दोहरा काम किया है। उधर साधु-समाज से उत्तर भी मांगता और इधर जन-समाज को भी अन्धश्रद्धा छोड़ने के लिए बाध्य कर रहा था। मैं इसमें सफल हुआ या नहीं ऐसा सोचना मेरे लिए आवश्यक नहीं। फिर भी आप अधिक आग्रह करेंगे तो मैं इतना उत्तर दूंगा कि एक हृदय में उठने वाली विचारधारा सैंकड़ों विचारधाराओं से मिलकर अत्यन्त शक्तिशाली अवश्य बन पाई है।

**सम्मेलन पर हुआ विशिष्ट व्यक्तियों से वार्तालाप—**

उत्क्रांति के सूत्रधार मुनिवरों के परिचय देने का तो मुझे लोभ संवरण करना ही होगा। इसमें कारण मैं नहीं बल्कि परिस्थिति है। हां, पहला वार्तालाप टीकाराम पालीवाल, मुख्यमन्त्री राजस्थान से हुआ —

यह संवाद भी मैं एक-एक संस्मरण के रूप में रखूं तो अधिक अच्छा रहेगा। सायं-काल के समय मैं गुरुकुल भवन के बरामदे में खड़ा एस० एस० जैन सभा पंजाब के आदरणीय अध्यक्ष श्री हरजस राय जी से बातचीत कर रहा था जो कि अपनी समाज के एक तपे-तपाए कर्मठ और सच्चे रूप में नेता हैं। यह एक स्तुति नहीं अपितु वास्तविकता का छोटा-सा रूप है। उनके रचनात्मक कार्यों की लम्बी परम्परा स्तुति की दीवारों को लांघ चुकी है। हां,अभी बातचीत चल रही थी कि इतने में मुख्यमन्त्री और उपमन्त्री तथा अन्य प्रान्तीय उच्चाधिकारी दलबल के साथ मेरे निकट आ गए। मुझे उनका परिचय दिया गया और कुछ समय में ही हमारे शान्तिरक्षक, सम्मेलन के सूत्रधार, एकता के संदेशवाहक स्वामी श्री मदनलाल जी महाराज आ निकले। बस, फिर क्या था। प्रसन्नता की लहरों में परिचय के आदान-प्रदान का कार्य मैंने ही अपने ऊपर उठाया, उन्हें बताया कि ये हमारे आध्यात्मिकता-प्रधान श्रमण संस्था के शान्तिरक्षक (अध्यक्ष) हैं। और आप राजस्थान के मुख्यमन्त्री।

विश्वशांति कैसे ? प्रधानमन्त्री के इस मूक प्रश्न का समाधान देते हुए मैंने कहा कि जब तक आत्मा और बुद्धि का समझौता नहीं हो जाता तब तक विश्व में शांति स्थापित नहीं हो सकती।

विश्व आज आत्मा को दबा कर बुद्धि से विश्वशान्ति का उपाय ढूंढ रहा है। किन्तु याद रखिये, तर्कप्रधान बुद्धि, भौतिक सम्पत्ति को तोल-तोल कर शान्ति का सांस नहीं ले सकती।

आत्मा भी बुद्धि, मन और शरीर के आधार के बिना अपना कार्य पूर्ण नहीं कर सकती। आज का युद्ध आत्मा और बुद्धि में हो रहा है। धर्म और विकृति में तनाव है।

याद रखिये, मनुष्य तीन प्रकार की भूख रखता है—पेट की, मन की और आत्मा की। मुख्यमन्त्री जी ! यदि आप एक ही भूख शान्त करने का उपाय करोगे तो दो भूख फिर भी शेष रह जायेंगी और जब तक भूख है तब तक अशान्ति है और अशान्ति का उग्र रूप ही युद्ध है। पेट की भूख का उपाय कम्युनिज्म से सीखिए। मन की भूख ऊँचे साहित्य तथा

विचारधाराओं से मिटाइए और आत्मा की भूख अध्यात्मप्रधान निवृत्ति से मिटाइए। इसके लिए आवश्यक है कि भौतिक सम्पत्ति के समाजीकरण के साथ-साथ यम, नियम, महाव्रतों का भी आत्मीकरण करिये तभी जाकर शान्ति आ सकती है। रूस में एक क्रान्ति आई और पेट की समस्या का समाधान कर गई। अब दूसरी क्रान्ति आएगी जिसमें कुचला हुआ मन और दबी हुई आत्मा के लिये भी अध्यात्म को खुला स्थान मिलेगा। तभी रूस में वास्तविक शान्ति आ सकेगी। यही तरीका समूचे विश्व के लिए है।

आपको चाहिये कि जहां आप उग्र रूप से भौतिकता की वृद्धि की दौड़ लगा रहे हों वहाँ जरा अध्यात्म का भी उपदेश दीजिए और उसके लिये भी प्रबन्ध करिए।

**हिन्दुस्तान टाइम्स, सर्चलाइट, लीडर तथा पी० टी० आई० के सम्वाददाताओं से हुआ वार्तालाप—**

सम्मेलन के विषय में कुछ औपचारिक प्रश्नोत्तर हुए फिर उन्होंने भी प्रश्नों का तांता साथ ही लगाया—

जैन धर्म का मुख्य सिद्धान्त क्या है ?

'अहिंसा' पर सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये चार अहिंसा के पूरक के रूप में महाव्रत के नाम से स्वीकार किए गए हैं। प्रेम, ईमानदारी, प्रामाणिकता तथा विश्वास इनके बिना अहिंसा पनप ही नहीं सकती। हिंसा से इनका नाश होता है और अहिंसा से पोषण। आप धर्म की क्या व्याख्या करते हैं ?

'वत्थुसभावो धम्मो' वस्तु की वास्तविक स्थिति का नाम धर्म है। विकृति अधर्म है और वास्तविक स्थिति ही धर्म है, स्वभाव धर्म है, समता धर्म है; किन्तु विषमता, किसी के विध्वंस और निर्माण की विषमता अधर्म है।

आप मतानुयायी हैं या धर्मानुयायी ?

"वास्तव में धर्मानुयायी।"

मत से आप क्या अभिप्राय लेते हैं ?

"परिस्थितिजन्य विवशता को दूर करने की मति से सूझा हुआ ढंग।"

इसके सबूत में देखिए दुनिया भर के मत जो कि परिस्थिति की विवशता को दूर करने के लिए जन्मे थे किन्तु आज वे परिस्थितियाँ तो खिसक गईं। किन्तु वे मत खड़े रहे। इसीलिये उनकी उपयोगिता नहीं रही। केवल दुनिया के लिए सिरदर्द के सिवा मत और कुछ नहीं कर रहे।

यवनों के दुर्धष काल में सिख मत हिन्दुओं की रक्षापंक्ति के रूप में खड़ा किया गया था। आज वह परिस्थिति तो नहीं रही किन्तु सिख संस्था है। फल यह निकला कि वह आज रक्षा के स्थान पर आक्रमणकारी पंक्ति में जा खड़ी हुई; स्वार्थियों ने उससे अपना स्वार्थ साधना शुरू कर दिया।

आर्य समाज भी सुधारों और संगठन के सन्देशवाहक स्वामी दयानन्द का मत था। किन्तु आज वह पृथक् ही इकाई के रूप में अपने स्वार्थों की रक्षा सोचने लगा।

मत परिस्थिति के साथ-ही-साथ विलीन हो जाने चाहिएँ, नहीं तो मत धर्म का चोला पहन कर जनता को अन्ध-श्रद्धा की खाई में गिरा देते हैं।

उपयोगितारहित मतपरम्पराओं को समाप्त करने के लिये आप क्या कर रहे हैं ?

"यही कि उनकी अनुपयोगिता दिखाना। अगर आप सच्ची मानवतापर विश्वास करते हैं तो हम भी आपको पूर्ण सहयोग देने के लिये तैयार हैं !"

"मैं अनुपयोगी मत पर ही प्रहार नहीं करता अपितु साहित्य पर भी करता हूँ। मैंने संसार-भर के साहित्य-मर्मज्ञों के काव्य-लक्षणों को भी चुनौती दी है। मैं तो यह कहता हूँ कि वस्तु और भावमय युग जब मस्तिष्क-प्रधान भाषा के माध्यम से स्फूर्त होता है तब उसे हम दर्शन का नाम देते हैं और जब वही युग हृदय की भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है तो उसका नाम काव्य या साहित्य होता है।"

संवाददाताओं ने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की, मेरा भी प्रतिक्रमण का समय था। बस, अखबारों को पूर्ण सहयोग का वचन देकर विदा ली।

'ललकार' के सम्पादक से सम्मेलन के विषय में बड़ी लम्बी बातचीत हुई। सम्मेलन का उद्देश्य और उसके आदर्श-सम्बन्धी बहुत रोचक प्रश्नोत्तर हुए। जिसमें मुख्य भविष्य सम्बन्धी ये प्रश्न थे—क्या सम्मेलन का कार्य स्थायी रह सकेगा ? "अवश्य, निश्चित।"

प्रमाण ?

क्योंकि युग और समाज इस कार्य को पूरा करने में कटिबद्ध हैं। "क्या साम्प्रदायिक घेरे अभी तोड़ नहीं देने चाहिए ?"

प्रतीक्षा कीजिए और आत्मा के अन्तर्नाद में अपना उत्तर टटोलिए। लोकाशाह के सम्पादक ने तो समूचा वार्तालाप अपने पत्र में ही छाप दिया था। एस० एस० जैन कान्फ्रेंस के समस्त मन्त्रियों से जो विचार-विमर्श हुआ, वह आपसी समझौते से अधिक सम्बन्ध रखता है।

चुन्नीलाल कामदार जी तो स्पष्टतः यथार्थ और भावना का समन्वय करके चलने वाले व्यक्ति हैं।

**अन्तिम निवेदन—**

स्थानकवासी श्रमणों का यह सम्मेलन भारत में ही नहीं अपितु विश्व-भर में बेजोड़ है। इसने समाज की मांग नहीं अपितु विश्व की युगों की समस्या को सुलझाने में सहयोग देकर साधु-संस्था में नई प्रेरणा और नवीन चेतना तथा नव्य भव्य भावना उत्स्फूर्त करने का महान् कार्य किया है।

साधु सम्मेलन संसार-भर के लिये आदर्श बनेगा और श्रमण संस्कृति में नए प्राण डालेगा। यह सम्मेलन व्यक्ति-व्यक्ति के लिए जहाँ हर्ष, आह्लाद और स्नेहधारा का विषय बनेगा वहाँ यह समाजद्रोही श्रमण-विद्वेषी के लिए ईर्ष्या का भी कारण होगा। इस सम्मेलन ने सकड़ों वर्षों से जलती ईर्ष्याग्निओं पर तुषारापात किया। बिखरी हुई इकाइयों को एक सूत्र में पिरोया। पनपती हुई साम्प्रदायिक भावनाओं के सिरों को कुचला और बुद्धिवाद तथा आत्मवाद का पथ प्रशस्त बनाया। युग-युग तक यह सम्मेलन बार-बार अमर रहे और जीवन-ज्योति जगाते रहे तथा समाज में देश में, और दुनिया में आत्मिक तत्त्वों को जागृत करने का सन्देश देते रहे, ऐसी मेरी अमर भावना है।

**संघ का मूर्त स्वरूप—**

श्रमण संघ का नाम—'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ'

श्रावक संघ का नाम—'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ'

संघपति 'आचार्य' कहलाएंगे और वे दो होंगे—

आचार्य—जैनाचार्य श्री आत्माराम जी महाराज।

उपाचार्य—श्री गणेशीलाल जी महाराज।

समस्त कार्य विभाग मन्त्रियों को संभालना पड़ेगा। उनमें एक प्रधानमंत्री होगा और कुल १६ मंत्री होंगे।

प्रधानमंत्री—श्री आनन्द ऋषि जी महाराज। शेष अन्य मंत्री होंगे।

अब तक श्रमण संघ के सदस्य १४० साधु तथा ५०० के लगभग साध्वी हैं जिनके फार्म आ चुके हैं या आने वाले हैं।

**आचार्य पद महोत्सव**—वैशाख शुक्ला त्रयोदशी ता० ७-५-५२ को एक बड़े समारोह के साथ इस संघ को मूर्तरूप दे दिया गया और दोनों आचार्यों को चादरें समर्पित की गईं। आचार्य जी महाराज वृद्धावस्था के कारण सम्मेलन में उपस्थित नहीं थे। अतः उनकी चादर उनके प्रतिनिधि भू० पू० युवाचार्य श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज को प्रदान कर दी गई जिससे जब भी वे पंजाब में पहुंचें, आचार्य जी महाराज को सौंप दें।

इससे पहले मुख्य-मुख्य आचार्यों, उपाध्यायों तथा मुनिवरों के भाषण भी हुए, जिनमें मुझे भी कुछ कहना पड़ा। मेरे कुछ शब्द—

"मेरे से पहले बड़े-बड़े मुनिराजों ने सम्मेलन की भूमिका के विषय में आप सबको बता ही दिया है कि इस सम्मेलन के लिए कितने महान् पुरुषों की भावना काम कर रही थी। किन्तु जिस समय मेरा जन्म हुआ और मैंने इस सामाजिक क्षेत्र में आखें खोलीं, उस समय इस सम्मेलन की भूमिका तैयार हो चुकी थी। इसलिए हमारा प्रश्न भूमिका तैयार करने का नहीं था, अपितु भवन-निर्माण और मूर्तरूप देने का ही प्रश्न शेष था।

हम एक ओर मूर्त स्वरूप की ओर व्यग्र मन से ताक रहे थे और दूसरी ओर सम्मेलन की विघ्न-बाधाओं को नष्ट करने के लिए सुरक्षा-पंक्ति खड़ी कर रहे थे।

रूढ़िग्रस्त उन तत्वों की ओर जो कि सम्मेलन को इज्जत के साथ असफल कर देने की भावना लिये हुए थे उनके प्रति भी क्रान्ति, संघर्ष की भावना को लेकर आगे बढ़ रहे थे।

किन्तु यह बड़ी प्रसन्नता का दिन है कि हम उस क्रान्ति की पहली सीढ़ी पर तो सफलतापूर्वक चढ़ गए। अब तो भविष्य का विचार करना है। क्या समाज की कोटि-कोटि भावना के बाद बने इस संघ के द्रोही को कोई स्थान देगा ? (नहीं, कभी नहीं, जनता की ओर से उत्तर) सम्पदायें, भिन्न-भिन्न नामावलियां, स्थानकों पर भिन्न-भिन्न नाम हटाकर एक संघ का नाम रखना होगा; क्या समाज इसके लिए तैयार है ? (बिलकुल तैयार) 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ जिन्दाबाद' के नारों के बीच में आचार्य श्री को श्रद्धांजलि देते हुए मैंने कहा—हमारे संघ की आत्मा कौन है ? आचार्य आत्माराम जी। और हमारे गण का ईश कौन है ? उपाचार्य गणेशी लाल जी के जयकारों के तुमुलघोष में मैंने अपनी ओर से उनका शासन अमर रहे की भावना व्यक्त करते हुए आशा और श्रद्धा-पूर्वक भावना और विनय के साथ नमस्कारांजलि अर्पित की और अपना आसन ग्रहण किया।

# समन्वय की ओर

सादड़ी सम्मेलन ने मुनि जी के मस्तिष्क को समाज-निर्माण के भावी स्वपनों से भर दिया था। इन्दौर संघ का आग्रह था, चातुर्मास इन्दौर का स्वीकार कर लिया गया।

सादड़ी से राणकपुर मन्दिर देखने का अवसर प्राप्त हुआ। मन्दिर संसार में वास्तुकला का अनोखा उदाहरण दीखता है। भारतीय वास्तुशिल्पियों ने दुर्गम पर्वत-घाटियों में कैसे-कैसे धर्मस्थान मन्दिर एवं मूर्तियों का निर्माण किया है; का अनुपम, मनोहरी एवं विस्मयकारी स्वरूप देखना हो तो राणकपुर व आबू के जैन मन्दिर हैं।

सराग मुद्राओं का आकलन करना सरल है किन्तु वीतराग मुद्रा को जड़ पदार्थों में उतार देना और प्रत्यक्ष की तरह साकार कर देना यह कलाकार की चमत्कारी साधना का प्रतिफल है।

राणकपुर में जैनागम एवं जैन वाङ्मय के प्रकाण्ड पण्डित तथा पुरातत्व के गंभीर निष्णात मुनि श्री पुण्यविजय जी म० से मुनिजी का लम्बा वार्तालाप हुआ। राणकपुर से पहाड़ी रास्ते उदयपुर, चितौड़, मालवा के गाँव जावरा, रतलाम होते हुए चातुर्मास के निकट इन्दौर में मुनिजी अपने गुरुदेव तथा सौभाग्य मुनि जी के साथ पहुँच गये।

सादड़ी सम्मेलन ने मुनि जी के तेजस्वी व्यक्तित्व ओजस्वी वक्तव्य तथा क्रान्तिकारी विचारों ने चारों ओर ऐसी धूम मचा दी थी कि चारों ओर मुनि जी का नाम सुनते ही स्वागतार्थ जनता बिना किसी भेदभाव के समुद्र की उत्ताल तरंगों की तरह उमड़ पड़ती थी। यही हालत इन्दौर की थी।

मालवा की जनता ने मुनि जी के विचारों का बड़ा गहरा समर्थन किया और समूचे चातुर्मास में हजारों की संख्या में श्रोताओं तथा दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रही। नई पीढ़ी में और सार्वजनिक जीवन में मुनि जी के विचारों एवं भाषणों ने एक नई आध्यात्मिक लहर पैदा कर दी।

यही कारण था कि इन्दौर चातुर्मास के बाद मुनि जी सोजत सम्मेलन के लिए पुनः वापस जब गये हैं तो मालवा, मेवाड़ एवं मारवाड़ की जनना ने उनके स्वागत में अपने पलक-पावड़े बिछा दिये।

सोजत सम्मेलन में बम्बई संघ के आग्रह को मुनि जी ने स्वीकार कर लिया। पाली, शिवपुर, सिरोही, आबू, पालणपुर, अहमदाबाद, अंकलेश्वर, बड़ौदा, सूरत से होते हुए मुनि जी बम्बई पहुँच गये।

सादड़ी साधु सम्मेलन ने सामाजिक नव निर्माण के अनेक विचार मुनि जी के मस्तिष्क में भर दिये थे। क्रान्तिकारी प्रवचनों ने जैनसमाज में एक उथल-पुथल पैदा कर दी, अनेकों संघ मुनि जी के चातुर्मास के लिए आग्रह कर रहे थे।

इन्दौर का चातुर्मास मुनि जी के जीवन में नया मोड़ देने वाला था। हजारों श्वेताम्वर, दिगम्बर एवं स्थानकवासी नवयुवकों को नई चेतना मिली। साम्प्रदायिक आग्रह से मुक्ति प्राप्त हुई। इन्दौर के सार्वजनिक जीवन में कोई वर्ग, सम्प्रदाय ऐसा नहीं बचा जो मुनि जी के विचारों का समर्थक न बना हो। इन्दौर में मुनि जी को आध्यात्मिक नेता की तरह मालववासी मानने लगे थे। यही कारण था कि इन्दौर में आध्यात्मिक विकास मण्डल की स्थापना मुनि जी के उपदेशों से हुई और सभी वर्गों के मालववासी सम्मिलित हुए।

चातुर्मास की सम्पन्नता के बाद मुनि जी को सोजत साधु सम्मेलन में आना पड़ा। सोजत आने के लिये पुनः उसी मार्ग पर लौटना था। अंतर इतना था कि इन्दौर चातुर्मास ने समूचे मालव को मुनि जी के लिये आकर्षण पैदा कर दिया था। मुनि जी जहाँ भी गये जनता स्वागत में कतार बाँधें खड़ी थी। आध्यात्मिक प्रेम की कोई थाह नहीं थी।

सोजत मारवाड़ का नगर है। मालव और मारवाड़ के लोकजीवन, लोकसंस्कृति और लोकव्यवहार में काफी अंतर है।

सादड़ी साधु सम्मेलन के बाद यह दूसरा सम्मेलन था। खूब साधु-संत उपस्थित हुए, विचार विनिमय हुआ।

सोजत से मुनि जी शिवगंज सिरोही होते हुए विश्व के आठवें आश्चर्य कला की वेजोड़ मूर्ति,आबू जैनमंदिर जा पहुँचे।

भीलवाड़ा का जैन मन्दिर और अचलगढ़ मन्दिर में प्रतिष्ठित १४४४ माग सोने मूर्तियाँ (जैसा बताया जाता है) अपने आप में विचित्र है। दसवीं शताब्दी में महामान्य वस्तुपाल और तेजपाल ने १७ करोड़ एवं १८ करोड़ सुवर्ण मुद्रायें खर्च कर इन मन्दिरों का निर्माण कराया था।

आबू में ३ दिन रहने के बाद बम्बई की ओर मुनि जी चल पड़े। गुरुदेव छोटेलाल जी म० भी साथ चल रहे थे। यह सब उनके आशीर्वाद का फल था।

बम्बई प्रवास के अवसर पर मुनि जी के आध्यात्मिक चमत्कारों एवं अनुभूतिपरक प्रभावशाली विचारों ने रास्ते में दर्शनार्थ आने वाली बम्बई की जनता को मन्त्रमुग्ध कर दिया था। यही कारण था कि बम्बई पहुँचने से पहले बम्बई की जैन समाज में मुनि जी के नाम की चर्चा हर आदमी की जबान पर होने लगी थी।

गुजरात, महाराष्ट्र एवं पंजाब से गये जैन समाज के लोगों के लिये यह एक असा-

धारण घटना थी कि जैन मुनि जी और उनमें इतने क्रान्तिकारी सार्वभौम विचार।

मुनि जी प्रारम्भ से ही राष्ट्रवादी रहे हैं। राष्ट्रीय अहिंसा का आदर्श मुनि जी के विचारों में इतना ही है कि किसी भी राष्ट्र का इतना शक्तिशाली हो जाना कि उस पर कोई भी आक्रमण करने की जुर्रत ही न कर सके; यही राष्ट्र की सच्ची अहिंसा हो सकती है। क्योंकि हिंसा करना पाप है, हिंसा पनपने देना महापाप है, यही कसौटी झूठ, चोरी व्यभिचार और संग्रह पर भी लागू हो जाती है। जैसे कि झूठ बोलना पाप है किन्तु झूठ को पनपने देना या उसको फैलने के लिए वातावरण बनने देना महापाप है। चोरी और व्यभिचार की भी यही बात है।

आशय केवल इतना है कि व्यक्ति से भूल हो जाना, स्खलना होना एक वैयक्तिक बात है किन्तु बुराई को समाज का संरक्षण मिल जाना बहुत खतरनाक है।

बम्बई में मुनि जी ने प्राणिरक्षा और मांसाहार निषेध के लिए नये कदम उठाये। उन्होने ३० जनवरी को गान्धी निर्वाण दिवस पर कसाईखाने बंद करवाने का प्रस्ताव बम्बई नगर निगम से करवाया, फिर तो रामनवमी कृष्णाष्टमी, महावीर जयन्ती आदि ९ दिनों के लिए केवल बम्बई में ही नही अपितु ९० म्यूनिसिपल कमेटियों में कसाईखाने बंद कराने के प्रस्ताव पारित कर मांसाहार को सार्वजनिक रूप से वर्षभर में कुछ दिनों के लिए ही सही किन्तु सार्वजनिक रूप से निन्दित तो करा दिया। यह बात १९५३ की है। शाकाहार के लिए काम करने वालों को यह नया दिशा-दर्शन मिला।

गोरक्षा के लिए बम्बई गोरक्षा समिति का निर्माण किया। गोहत्याबन्दी तथा गो-सम्वर्धन दोनों कार्य एक साथ बम्बई से शुरू किये।

सर्वभाषा भाषी सम्मेलन के द्वारा मुनि जी भाषायी एकता लाना चाहते थे किन्तु भाषाविदों को राजनैतिक दल में फँसा देख बम्बई में सर्वधर्म सम्मेलन की स्थापना की। मुनि जी के विचारों में भाषा और धर्म को निहित स्वार्थी लोग झगड़े की जड़ बनाया करते हैं। उन्हीं झगड़ों से साम्प्रदायिकता, संकीर्णता एवं नफरत की भावना बढ़ती है। आपसी टकराव होते हैं। सैंकड़ों हजारों वर्षों से साथ रहने वाले लोग एक दूसरे के खून के प्यासे बन जाते हैं।

धर्म सम्मेलन मानवीय एकता का आन्दोलन है, साम्प्रदायिक मनोवृति की महामारी को समूल नाश करने की अचूक औषधि है। यही कारण था कि बम्बई धर्म सम्मेलन के अवसर पर जो धर्माचार्य एवं धर्मनेतागण आपस में कभी एकत्रित नहीं हुये थे वे सब एक मंच पर बैठ गये और धर्म के माध्यम से विश्व बन्धुत्व के आदर्श को जमीन पर उतारने के लिए मूल संकल्प हो गये।

पालणपुर, अहमदाबाद, अंकलेश्वर, सूरत होते हुए मुनि जी जब बम्बई के निकट पहुँचे तो बम्बई से दर्शनार्थ आने वालों का ताँता लग गया। बम्बई का जैनसंघ भारत में सबसे बड़ा संघ है, वैसे भी गुजराती, काठियावाड़ी कच्छी, मराठी एवं मारवाड़ी व पंजाबी जैनों का बहुत बड़ा समुदाय बम्बई में निवास करता है। जैन समुदाय में तो साधु सम्मेलन के कारण मुनि जी की चर्चा तो बहुत होने लगी थी। इसीलिए बहुत आग्रह पर बम्बई वाले मुनि जी को बम्बई ला रहे थे।

मार्ग में समुद्र के ज्वारभाटे के अनेक दृश्य, मछियारों की बस्तियों में धर्मप्रचार एव समुद्र की खाड़ियों को पार करते हुए मुनि जी वम्बई पहुँच गये। बम्बई स्थित पंजाव जैन सभा के सदस्यों को मार्ग में मुनि जी की सेवा सान्निध्य का काफी अवसर मिला था और वे मुनि जी को आध्यात्मिक योगी और क्रान्तिकारी नेता के रूप में मान चुके थे।

बम्बई में दो चातुर्मास मुनि जी के हुए। मुनि जी से वम्वई के पत्रकार, राजनेता एवं धर्मनेता बहुत प्रभावित हुए थे।

इस कार्य में सवसे बड़ा सहयोग मणिभाई दोषी का था। मुनि जी के विचारों को त्रियान्वित करने में श्री दोषी और श्री जगन्नाथ जैनी के अप्रतिम सहयोग को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

प्रचार के क्षेत्र में भी हरीश जैन के अविस्मरणीय योगदान को जैसे कभी तिरोहित नहीं किया जा सकता इसी प्रकार बम्बई के हजारों जैन भाइयों व बहनों का सहयोग भी नहीं भुलाया जा सकेगा।

धर्मसम्मेलन की नींव भी वम्बई में रखी गई और बम्बई से चलकर लोनावला में वलि विरोध का आन्दोलन भी चालू किया गया।

लोनावला से ६ मील दूर कारला पहाड़ियों में बहुत बड़ी-बड़ी विशाल गुफायें चौथी शती की बनी हुई हैं। वहां पर कोकणी लोग वर्ष भर में एक बार एकत्रित होकर हजारों पशुओं की वलि करते हैं।

पशु-वलि-विरोधी भावना का जन्म भी मुनि जी के हृदय में एक स्वप्न से हुआ। दिवंगत परममान्य मुनि जी चौथमल जी म० रात्रि के अंतिम पहरों में स्वप्न में दिखाई दिये और उद्बोधन देने लगे, "सुशील! चलो, और कारला गुफा पर होने वाली पशु बलि को बन्द कराओ। मैं तुम्हारे साथ हूँ।" ये शब्द स्वप्न में मुनि जी को मिले। किन्तु मुनि जी कहते हैं कि आज भी वह दिव्य ध्वनि मेरे रोम-रोम में प्रतिध्वनित हो रही है। मुनि जी प्रातःकाल होते ही गुरुदेव का आशीर्वाद लेकर गुफा की ओर चल पड़े और दो दिन के प्रयास से कुछ सफल हुये और अंत में गाडगे जी महाराज ने वह पशु बलि सदा के लिए बंद करा दी।

मुनि जी मानते हैं कि मनुष्य में अनंत शक्ति है, कास्मिक पावर है और जड़-चेतन पर उसका गहरा असर डाला जा सकता है। लोनावला में एक विचित्र घटना घटी कि दिनकर भाई (सैसन जज मुख्य न्यायाधीश) किसी पक्षी पर निशाना साध रहे थे। उधर से मुनि जी आ रहे थे, मुनि जी से नहीं रहा गया उन्होंने जज साहब की बन्दूक पर हाथ रख दिया और कहा कि पक्षी पर बन्दूक नहीं चलेगी, हिंसा पाप है, हिंसा से वचना मनुष्य का धर्म है। पक्षी ने आपका कुछ विगाड़ा नहीं अपितु आपके वातावरण को गुञ्जित करता रहा है।"

जज महोदय ने टाल दिया और 'हाँ-हाँ' कहकर मुनि जी को वहां से भेज तो दिया किन्तु उनके चले आने के बाद जब वन्दूक का निशाना साधना चाहा तो बन्दूक ने चलने से इन्कार कर दिया। बहुत प्रयास करने पर भी बन्दूक नहीं चली तव जज महोदय को पक्का विश्वास हो गया कि बन्दूक मुनि जी ने बाँध दी है।

जज महोदय मुनि जी के पास पहुँचे, कोठी लेकर गये 'वन्दूक दिखाई' आग्रह करके

हस्त स्पर्श करवाया और फिर क्या था बन्दूक चल पड़ी, काम करने लगी।

मुनि जी स्वयं असमंजस में पड़ गये कि यह क्या हुआ, किन्तु प्रकृति का विचित्र खेल है। जज महोदय चरणों में पड़ गये, शाकाहारी बने, निरपराधी पशुओं का शिकार सदा के लिए छोड़ दिया।

लोनावला में सर्पों की दुनिया का विचित्र परिचय हुआ। लोनावला में सर्प बहुत हैं। प्रतिदिन किसी न किसी सर्पराज की मुलाकात मुनिजी से हो जाती। मुनि जी ने सर्पों के सम्बन्ध में नई जानकारी प्राप्त की। सर्प का साक्षात्कार होते ही मनुष्य स्वयं सर्प से काग हो जाता है अन्यथा सर्प भी प्रेमभरी अद्‌भुत दृष्टि से निहारते ही वशवर्ती हो जाता है।

मुनि जी ने तो भयानक सर्पराज को तीन बार छेड़ा भी, तीन बार ही सर्प फुंकारता हुआ आक्रामक बना, किन्तु मुनि जी के नेत्रों में नेत्र डालकर देखता और शान्त हो जाता।

मुनि जी का निश्चय है कि सर्प नेत्रों में से पढ़ता है और उससे अनुमान करता है कि व्यक्ति क्या चाहता है। मुनि जी लोनावला से उज्जैन की ओर चल पड़े।

# नई उद्भावनायें

धर्म एवं सम्प्रदायों को लेकर चलने वाली कुरीतियों और अन्ध परम्पराओं के विरुद्ध मोर्चा लेने की आदत ने मुनिजी को सरदार शहर में चातुर्मास करने पर विवश किया। पारस्परिक जैन सम्प्रदायों में भी कहीं-कहीं गहरा मन-मुटाव और अविश्वास का वातावरण रहता है—उसके दर्शन यहाँ हुये।

जनता की अपार भीड़। छोटी-छोटी बातों पर जैन सम्प्रदायों में आपसी छींटाकशी बहुतायत से परिलक्षित हुई। कर्मकाण्ड अथवा कोरे क्रियाकाण्ड के कारण हर सम्प्रदाय में थोथा अभिमान, कपटाचार और असत्य भाषण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

सरदार शहर में कितने लोग मुनिजी के पक्ष-विपक्ष में साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के कारण बोले, किन्तु उनकी सत्यता, निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता का लोहा सभी तरफ अचूक एवं अखंड रूप में स्वीकार किया जाता है।

कतिपय संकीर्णतावादी लोगों ने एक बात कही कि मुनि जी नाई से नख कटवाते हैं तो साधु कैसे ?

स्वसम्प्रदाय के लोगों ने आग्रह किया कि मुनिजी कह दें कि उन्होंने नख नहीं कटवाये क्योंकि अगर मुनि जी इनकार कर दें तो विपक्षियों को विरोध का अवसर ही नहीं मिलेगा-किन्तु मुनि जी ने तो भरे व्याख्यान में उद्घोषणा कर दी कि नख कटवाये हैं।

नख कटवाने के पीछे शास्त्र की भावना शृंगार प्रतिषेध है कि मनोवृत्ति की संकीर्णता से खींच-खांच की जाती है ?

गृहस्थी की सेवा नहीं लेना—अतः नाई से भी नख नहीं कटवाना। बात सही है, परावलम्बी जीवन अब न बने ? किन्तु यह कैसे संभव है कि साधु गृहस्थी से सर्वथा सेवा न ले—आप्रेशन, चिकित्सा-हड्डी मोच आदि सब इलाज गृहस्थी डाक्टर से ही कराना होगा और सब संत कराते भी हैं किन्तु जनता में साफ बात नहीं की जाती, जिस के कारण अंध-

विश्वास बढ़ता है। पारस्परिक द्वेष बुद्धि भी बढ़ती है।

सरदार शहर से चातुर्मास के बाद तारानगर, हिसार, हांसी, रोहतक होते हुये—१९५७ में दिल्ली पहुँचे।

× × ×

मुनिजी का डा० राजेन्द्र प्रसाद जी से बड़ा गहरा सम्बन्ध था। वह भी राजमहल में संत की तरह निवास करते थे। कपड़ा फटा है, बटन लगे हैं या नहीं, उन्हें मालूम नहीं पड़ता था, किन्तु राष्ट्र के प्रति इतने जागरूक थे कि एक दिन आंखों में आंसू भर कर कहने लगे कि तिब्वत की पराधीनता का शाप तो हमारे सिर पर अवश्य चढ़ा होगा। तिब्वत में लोगों को कतल किया गया। चीन ने उन्हें पराधीन बनाया, उन का खून बहा और हम चुपचाप देखते रहे। मेरा देश, मेरे देश का सबसे बड़ा नेता और मैं राष्ट्राध्यक्ष होने के नाते साक्षी द्रष्टा की तरह यह सब पाप देखता रहा, यह पाप हमारे देश को खा लेगा और हमें इसका एक-न-एक दिन पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

उनकी आँखें सजल हो गई थीं और वे अन्दर से अपनी मूक पीड़ा को व्यक्त करते हुए ग्लानि से भर गये थे।

× × ×

विश्व धर्म सम्मेलन में पं० जवाहरलाल नेहरू आने को तैयार नहीं थे और साथ में खुला विरोध भी कर रहे थे। एक दिन डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने मुनि जी से कहा कि आप पण्डित जी से अवश्य मिल लें। उनका रुख धर्म-सम्मेलन-विरोधी है—अगर आप उन्हें अनुकूल नहीं बना सके तो हम में से कोई भी नहीं जा सकेगा।

मुनिजी ने कहा कि पण्डित जी मुझे बुलावें तो मैं जाऊँगा, किन्तु मिलने के लिये मैं स्वयं कैसे कहूँ। तीसरे दिन पण्डित नेहरू जी की ओर से पत्र आया कि आप ९ बजे प्रातः आकर मिल लें। वास्तव में यह मुलाकात स्वयं राजेन्द्र प्रसाद जी ने ही करवाई थी।

वार्तालाप अत्यन्त उग्र था, किन्तु परिणाम सुखद रहा। पण्डित जी चट्टान की तरह अड़ गए कि मैं धर्म सम्मेलन में नहीं जाऊँगा। मुनि जी अड़ गये कि आप को चलना अवश्य है!

दैवी भावना का एक क्षणिक प्रभाव इतना चमत्कारी निकला कि पण्डित जी मान गये कि अच्छा मैं अवश्य आऊँगा। पं० जी ने १७ नवम्बर १९५७ में लाखों लोगों के सामने एक बात बड़ी विचित्र कही कि मैं सम्मेलन में नहीं आना चाहता था लेकिन ऐसी कौन सी हस्ती है जो मुझे यहाँ खींच कर ले आई!

दैविक शक्ति का अपूर्व रूप है।

× × ×

सन् १९६२ की बात है। पं० जी ने एक बार भेंट-वार्ता के प्रसंग में रोष में आकर कहा कि धर्म सम्मेलन से क्या लाभ है? अगर धर्म-सम्मेलन कुछ कर सकता है तो मास्टर तारा सिंह को क्यों नहीं समझाते, वे एक ही रट लगाते हैं कि पंजाबी सूबा बनायेंगे, अब वह उपवास करके बैठे हैं। मुनिजी आप कुछ कर सकते हैं?

मुनि जी ने देखा कि पं० नेहरू करुणा एवं मानवीयता के पुंज थे। उनसे मास्टर

तारा सिंह की न बात मानी जाती थी और न ही उनके उपवास का दुख देखा जा रहा था। उन्होंने कहा कि पं० जी जहाँ राजनीति असफल हो जाती है वहां धर्म-नीति अवश्य सफल हो जाती है। मुनि जी की आकस्मिक पंजाब यात्रा का कार्यक्रम बन गया। वे अमृतसर पहुँचे।

मास्टर तारा सिंह भी मिलने आये। वे भी अपने जीवन में कभी जैन साधु के पास या जैन स्थानक में नहीं आये थे। लम्बी बात हुई। मास्टर जी इतने प्रभावित हुए कि वे मान गये कि जब तक चीन और पाकिस्तान के युद्ध का खतरा है, पंजाबी सूबे की मांग नहीं करेंगे और उन्होंने पी०टी०आई० तथा अन्य सभी समाचार एजेंसियों और पत्र-संवाददाताओं को बुला कर उद्घोषणा कर दी कि मेरी मुनि जी से बात हो गई है और मैं पंजाबी सूबे की मांग तब तक नहीं करूँगा जब तक चीन और पाकिस्तान से युद्ध का खतरा है।

मुनि जी ने पं० जी को फौरन पत्र लिखा कि धर्म-नीति सदा विजयी होती है। दस मिनट में यह सारी समस्या सुलझ गई जिसके लिये आप भी और सारा राष्ट्र परेशान हो रहा था।

× × ×

पं० जी चाहते थे कि धर्म सम्मेलन इस देश की सामान्य जनता को आपस में जोड़ने का काम करे, हिन्दू-मुस्लिम सभी वर्गों को मन से मिलावे।

एक बार पं० जी ने १९५७ में धर्म सम्मेलन से पूर्व मुनिजी को बुलाकर कहा कि धर्म सम्मेलन किसी हाल (कमरे) में या लाल किले में कर लो। खुले मैदान में मत करो, क्योंकि आजकल धर्म के नाम पर लोग नहीं आते। रामलीला मैदान में तो लाखों लोग चाहिये।

क्षण भर आत्मगत चिंतन कर मुनि जी ने कहा था कि आप देखेंगे कि रामलीला मैदान में बैठने की जगह मिलनी कठिन हो जायेगी, खचाखच भर जायेगा।

पं० जी बुद्ध-जयंती सम्मेलन में जनता के केवल कुछ हजार लोगों की उपस्थित से क्षुब्ध थे।

पण्डित जी बोले, "मुनि जी आप मान जाइये, जनता नहीं आती है, सेठ अचल सिंह, सेठ गोविन्द दास, सभी सम्मेलन प्रबन्धकों से पण्डित जी ने कहा कि मुनि जी धुन के पक्के हैं। वे मानते नहीं, आप उन्हें समझा दें कि सम्मेलन खुला न करें।"

मुनिजी ने कहा कि पण्डित जी एक साधु का चमत्कार तो देखें कि आत्मबल और दृढ़ इच्छा-शक्ति में कितना अपूर्व रहस्य छिपा है।

सम्मेलन में जब पण्डित जी आये, उस समय रामलीला मैदान अपार जनता से खचाखच भरा पड़ा था। पण्डित जी ने मुनि जी से कहा कि मैंने मान लिया कि आप सही थे। इतनी जनता ऐसे जलसों में, कोई विलक्षण बात अवश्य है।

मुनि जी जब बोलने के लिये खड़े हुए तो पण्डित जी उनके भाषण का सारांश डा० राधाकृष्णन् को इंगलिश में समझाते रहे और जनता के साथ लगातार १०-१२ बार ताली बजाते रहे। जब वे भाषण देकर बैठे तो उन्होंने सफल सम्मेलन की बधाई दी।

× × ×

और जो भी कोई पण्डित जी से मुनि जी के बारे में पूछता तो वह उनके तीन गुण बताते थे, बहुत बढ़िया वक्ता, बहुत बढ़िया संयोजक, बहुत बढ़िया नेतृत्व ।

× × ×

डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने मुनिजी से पूछा, सम्मेलन पर कितना खर्च आया होगा । मुनिजी ने पूछा आपका अनुमान कितना है ? बोले—दो से पाँच लाख तक । मुनिजी ने कहा—केवल २२ हजार । क्योंकि सारा बोझ समाज पर बंट गया ।

सेवा करने वाले मेहमानों को अपने घर पर उतारने वाले भारतीय धर्म प्रतिनिधियों को ठहराने वालों ने सम्मेलन से कुछ नहीं लिया और देश-विदेश के प्रतिनिधि अपूर्व प्रशंसा के प्रमाण-पत्र देकर गये ।

धार्मिक कृत्य तो समाज के सहयोग से ही होने चाहियें ।

●

# विश्व धर्म सम्मेलन

आज के मानव को जिस अपार कष्ट और घोर संकट में से गुजरना पड़ रहा है उसका सामना कदाचित् ही कभी उसको करना पड़ा होगा। दो महायुद्धों की संहारलीला उसकी आँखों के सामने हो चुकी है। दूसरी संहारलीला पहली से भी कहीं अधिक भीषण और व्यापक थी, जिनको उन्हें झेलना पड़ा, उनका हृदय उनके स्मरण-मात्र से कांप उठता है। हीरोशिमा और नागासाकी पर किया गया अणुबम का प्रयोग मनव-इतिहास की सबसे अधिक कठोर दुर्घटना है जिसको संसार का इतिहास कभी नहीं भूल सकता। तीसरे शीत महा-युद्ध की काली घटायें भी निरन्तर उसके सिर पर मंडरा रही हैं। उसके नाम पर महाविनाश की जो घातक सामग्री जुटाई जा रही है उसके कारण सारा ही विश्व बारूदघर-सा बनता जा रहा है। उसमें साधारणा से विस्फोट से भी जो महाविनाश होना सम्भव है उसकी कल्पना कर सकना कुछ कठिन नहीं है। परन्तु धन्य है मानव और धन्य है उसकी आशा, विश्वास, धैर्य तथा साहस, जिनके बल पर वह इस महाविनाश की अग्नि-वर्षा में भी अपना जीवन निबाह रहा है और भविष्य में भी निभाने की आकांक्षा रखता है। वह निरन्तर अपने मार्ग की खोज और उसका निर्मिण करने में लगा हुआ है। उसने इस संसार में जब से आंखें खोलीं तभी से वह इस जीवन-संघर्ष में संलग्न है।

पहले महायुद्ध की संहारकारी तांडवलीला के गर्भ में से ही उस राष्ट्रपरिषद् का जन्म हुआ था जिसने महायुद्ध से पीड़ित और त्रस्त मानव को नए जीवन की आशा प्रदान की थी। दूसरे महायुद्ध की कहीं अधिक घातक और व्यापक विनाश-लीला के गर्भ में से ही संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म हुआ। आज तीसरे (शीत) महायुद्ध की कैसी भी घोर काली घटायें क्यों न मंडरा रही हों, परन्तु यह भी स्वीकार करना होगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ का नया संगठन पहले की अपेक्षा शांति और सुरक्षा के लिए कहीं अधिक बड़ा और प्रभाव-शाली संरक्षण है। उसमें युद्ध की चिंगारी को बुझाने की सामर्थ्य भी पहले की अपेक्षा

कहीं अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली है। यदि एक ओर विनाश की सामग्री का हिमालय का-सा ऊँचा अम्बार लगता जा रहा है, तो दूसरी ओर महान् आकाश की तरह मानव में वह शक्ति भी व्याप्त हो रही है जो उसकी चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार है।

पहले महायुद्ध के बाद इथोपिया जैसे छोटे राज्य पर परिषद् की आँखों के सामने वैसा हीवलात्कार होना सम्भव था जैसा कि कौरवों की सभा में पाण्डवों के सम्मुख द्रौपदी का चीर हरण किया गया था, परन्तु आज उसकी पुनरावृत्ति यदि सम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। उसके विरुद्ध आज जवरदस्त आवाज उठाई जा सकती है और विश्व का लोकमत उसके लिए हाथ वढ़ाने वाले को रोकने का साहस कर सकता है। कोरिया, हिन्द चीन तथा मिस्र और हंगरी की घटनायें आज के मानव की बढ़ती हुई शांतिप्रियता की स्पष्ट साक्षी हैं, भले ही उसमें अभी वह सामर्थ्य उत्पन्न नहीं हुई है, जो स्थायी शांति की सुदृढ़ नींव रख सके। फिर भी आज किसी छोटे-से-छोटे राष्ट्र की भी स्वतन्त्रता का सहसा अपहरण नहीं हो सकता। आज बड़ी-से-बड़ी और गम्भीर-से-गम्भीर समस्या के हल के लिए युद्ध के पर्याय के रूप में आपसी बातचीत पर कहीं अधिक जोर दिया जाता है और राजनीतिक क्षेत्र में भी पंचशील तथा शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के धार्मिक तत्त्वों का प्रातपादन विशेष आग्रह से किया जाने लगा है।

सयुक्त राष्ट्रसंघ की महापरिषद् द्वारा बिना विरोध शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के भारत के प्रस्ताव का स्वीकार किया जाना आशा की सुनहरी किरण कहा जा सकता है।

इस दृष्टि से युनेस्को के प्रादुर्भाव की कहानी कहीं अधिक आशाप्रद और उत्साहप्रद है। युनेस्को इस समय संयुक्तराष्ट्र संघ की शाखासंस्था के रूप में काम कर रही है, विधिवत् उसकी स्थापना ४ नवम्बर १९२९ को २० देशों ने मिलकर इंगलैंड में की थी। परन्तु उसके लिये परस्पर विचार और चर्चा १९४२ में तब प्रारम्भ कर दी गई थी, जबकि महायुद्ध चरम सीमा पर था। इंगलैंड का जीवन भी खतरे से खाली नहीं था और सारा यूरोप वन की तरह युद्ध के दावानल में भस्म हो रहा था तब ९ मित्र देशों के शिक्षामन्त्री लन्दन में मिले और उन्होंने इस तरह के संगठन की आवश्यकता और संभावना पर विचार किया। काफी विचार-विनिमय के बाद १९४५ के नवम्बर महीने में लन्दन में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया उसमें इसका नामकरण किया गया और विधान बनाया गया। उसके कार्य का माध्यम शिक्षा, विज्ञान और संकृति रखा गया।

समस्त मानव समाज को इन तीन आधारों पर एक ओर संयुक्त करने का सराहनीय प्रयत्न इस संगठन की ओर किया जा रहा है। प्रकारान्तर से इस संगठन का निर्माण करके यह स्वीकार किया गया है कि अर्थनीति और राजनीति मानव को एक ओर संयुक्त करने में सफल नहीं हो सकी। अर्थनीति के कारण जिन पूंजीवादी स्वार्थी और निहित औद्योगिक हितों का जन्म हुआ उन्होंने मानव-मानव के बीच एक बहुत बड़ी और चौड़ी खाई पैदा कर दी। राजनीति के उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की आसुरी लालसा तथा राक्षसी महत्त्वाकांक्षा को पैदा करके जिस शोषण और उत्पीड़न को जन्म दिया गया उससे परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, घात-प्रतिघात और हिंसा-प्रतिहिंसा की दुर्भावना चारों ओर समा गई। अर्थ-

नीति और राजनीति का दिवाला पिट गया इसलिए उनको तिलांजलि देकर शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति का सहारा लिया गया। शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति पर भी पक्षपातपूर्ण स्वार्थों की एक भोंडी तह जम गई।

शिक्षा का उद्देश्य मानव की स्वाभाविक शक्तियों का विकास न कर, एक-दूसरे राष्ट्र के प्रति विद्वेष एवं अंध-पक्षपात पैदा करना बना लिया गया। विज्ञान मानव की सेवा का साधन न रह सका। वह राजनीतिज्ञों के हाथ का निमित्त बन गया। इसी प्रकार संस्कृति भी एकता-सम्पादन करने का साधन न रह सकी और उसको विभिन्न जातियों तथा समाजों में विद्यमान भिन्नता अथवा भेदभाव का प्रतीक मान लिया गया। फिर भी उसका वास्तविक रूप उसकी आँखों से ओझल नहीं हुआ; वह निराश होकर उनके उस स्वरूप को को स्पष्ट करने में लग गया। उदाहरण के लिए शिक्षा में इतिहास का मुख्य स्थान है और इतिहास की वर्तमान शिक्षा इतनी दूषित है कि वह केवल उन युद्धों अथवा महायुद्धों के विवरण का, संग्रह मात्र रह गया है। जिन्होंने मनुष्य को मनुष्य का, समाज को समाज का और देश को देश का अथवा राष्ट्र को राष्ट्र का विरोधी अथवा शत्रु बनाया है। इन शत्रुतापूर्ण कांडों का वर्तमान इतिहास पुराने घावों को हरा-भरा बनाये रहने का ही काम करता है। इसलिए यूनेस्को की ओर से इतिहास के परिष्कार का कार्य बहुत बड़े पैमाने पर शुरू किया गया है।

इतिहास के परिष्कार की आवश्यकता भी तब अनुभव की गई जबकि यह देख लिया गया कि इस प्रकार की पाठ्य पुस्तकों और ऐसी ही अन्य पाठ्य सामग्री द्वारा बच्चों को परस्पर एक-दूसरी जाति में मेल-मिलाप और भाईचारा पैदा करने में सहायक न होकर परस्पर विद्वेष एवं विरोध ही पैदा करती है। १९४८ में इस सम्बन्ध में एक पुस्तक प्रकाशित हुई। १९५० में इतिहास और पाठ्य पुस्तकों के संशोधन के सम्बन्ध में एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस कार्य के लिए विभिन्न समितियाँ नियुक्त की गईं और उन्होंने अपने सुपुर्द किए गए कार्य को बड़ी तत्परता के साथ किया। इनमें से दो या दो से अधिक देशों की वे समितियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हुईं जिन्होंने एक-दूसरे के इतिहास सम्बन्धी साहित्य की छानबीन इस दृष्टि से की कि उनमें से परस्पर विरोधी, भ्रमपूर्ण और एक दूसरे पर आक्षेप करने वाले विवरण न दिए जायं।

फ्रांस, जर्मनी, इटली तथा बेल्जियम और नारवे के इतिहास के अध्यापकों ने अपने-अपने यहाँ के इतिहास की पुस्तकों का परिशीलन इसी दृष्टि से किया। उन पर विचार करके के सही दृष्टिकोण देने का प्रयास किया गया। १९४७ में अमेरिका की शिक्षा परिषद् ने इस बात की छानबीन की कि वहां की पुस्तकों में एशियाई संस्कृति, सभ्यता और जीवनस्तर के सम्बन्ध में पश्चिम के उद्योग-प्रधान दृष्टिकोण से विचार किया गया था जो वहाँ के लोगों में पूर्व के लोगों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ पैदा करने और उनको गुमराह करने वाला था, इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि पश्चिम के लोगों में पूर्व के लोगों के प्रति अहंभाव पैदा हो गया और उनमें अपने को बड़ा और दूसरों को हीन मानने की प्रवृत्ति घर कर गई। इसी नवीन दृष्टिकोण से मानव जाति का विस्तृत इतिहास भी यूनेस्को की ओर से लिखा जा रहा है। तात्पर्य यह है कि यदि वास्तव में शिक्षा, विज्ञान और

संस्कृति के आधार पर मानव के संयुक्त परिवार की सुदृढ़ नींव डालनी अभीष्ट है तो उसके लिए इनके वास्तविक रूप को स्पष्ट करके अनुकूल भूमि तैयार करनी होगी और उसका तैयार किया जा सकना तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि इतिहास और पाठ्यपुस्तकों का पूरी तरह संशोधन न किया जाये।

आज के विज्ञान का चाहे कैसा भी दुरुपयोग क्यों न किया जा रहा हो परन्तु यूनेस्को की ओर से इस तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है कि विज्ञान किसी देश-विशेष अथवा राष्ट्र-विशेष की बपौती नहीं है। वह सम्पूर्ण मानवजाति की सम्पत्ति है, जिसका लाभ सबको समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। इसी भावना से प्रेरित होकर अणु-शक्ति से लाभ उठाने का अवसर सब देशों के लिए सुलभ करना आवश्यक समझा गया है जिनका यथेच्छ विकास तथा प्रगति नहीं हुई है और जो आधुनिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इसी प्रकार विज्ञान को मानव के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है और वह संहार का निमित्तमात्र बना नहीं रह सकता।

यह अत्यंत शुभ लक्षण है कि इन दिनों राजनीति की अपेक्षा संस्कृति को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा है और यह स्वीकार किया जाने लगा है कि संस्कृति के नाते समस्त मानव एक ही जाति के सदस्य हैं। देश, समाज तथा भूगोल की ऐसी ही अन्य सीमाएं पारस्परिक सांस्कृतिक सम्बन्धों के लिए बाधक नहीं बन सकतीं। राजनीतिक सम्बन्धों की तुलना में सांस्कृतिक सम्बन्धों पर अधिक भरोसा किया जाने लगा और सांस्कृतिक संधियों का एक नया सिलसिला प्रारम्भ हो गया है। आपसी भाई-चारे के लिए सदियों के पुराने सांस्कृतिक सम्बन्धों की खोज तथा छानबीन की जाने लगी है। उनके लिए इतिहास के पत्रों और पुरातत्त्व की सामग्री का विशेष अध्ययन एवं विश्लेषण किया जा रहा है।

यूनेस्को के प्रादुर्भाव और उसके प्रयत्नों के इस विवेचन से यह प्रकट है कि मनुष्य ने आज भी हार मानना अथवा निराश होना नहीं सीखा है। वह थककर भी आगे बढ़ता रहता है और गिर-गिरकर भी उठता रहता है। नए मार्ग के निर्माण में वह हमेशा लगा रहता है। निराश होना वह जानता नहीं। प्रश्न यह है कि शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति के क्षेत्र में वह जो नया उद्योग या प्रयोग कर रहा है वह धर्म के क्षेत्र में क्यों नहीं किया जा सकता? धर्म के सम्बन्ध में इतना निराश क्यों हो गया है? क्यों उसने उसके सम्बन्ध में पराजयवादी मनोवृत्ति से काम लेते हुए उसको सदा के लिए तिलांजलि दे दी है? आज के राजनीतिज्ञों ने यह क्यों मान लिया है कि राजकाज में धर्म को अर्धचन्द्र देना ही श्रेयस्कर है? प्रायः सभी प्रगतिशील और विकासोन्मुखी राष्ट्रों ने एक स्वर से धर्मनिरपेक्ष आदर्श को सर्वोत्तम मान लिया है, धर्म को प्रगति और विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा समझ लिया गया है। हमारे देश में इसी आदर्श को प्रजातंत्री संविधान में अपनाया गया है।

ऐसा अकारण ही नहीं किया गया है। जिन घटनाओं की यह अवश्यंभावी प्रतिक्रिया है उन पर कुछ गम्भीर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है और यह गम्भीर विचार ही विश्व धर्म सम्मेलन की भूलभूत प्रेरक भावना को जन्म देने वाला है।

आज राजनीति और अर्थनीति को जिन कारणों से दिवालिया मान लिया गया है वे सब कारण धर्म पर भी लागू होते हैं। यदि अर्थनीति और राजनीति के कारण मानव में

स्वार्थपूर्ण साम्राज्यवादी आसुरी लालसा पैदा होकर शोषण एवं उत्पीड़न की दुर्भावनाओं का जन्म हुआ है तो धर्म के नाम पर भी ऐसी दुर्भावनाएं कुछ कम पैदा नहीं हुईं। कभी सभी देशों में धर्म का बोलबाला था और उसके नाम पर सभी देशों में भीषण लड़ाइयाँ लड़ी गईं। मानव, मानव के खून का प्यासा बन गया। धर्म युद्ध अथवा क्रुसेड के नाम से यरुशलम में ईसा की कब्र के लिए कैसा भयानक नरसंहार किया गया! १२० वर्षों तक वह नर-संहार जारी रहा और धार्मिक भावना से प्रेरित होकर उस महापुरुष की कब्र पर कब्जा करने के लिए लाखों की कब्रें बना दी गईं, जिसने एक गाल पर चपत लगने पर दूसरा गाल आगे कर देने का उपदेश दिया था और जो शांति एवं अहिंसा का देवदूत था। धर्म का यह कैसा घोर पतन था!

इसी प्रकार रोमन—कैथोलिकों और प्रोटेस्टेण्टों ने एक-दूसरे पर कौन से भीषण अत्याचार धर्म के नाम पर नहीं किए? जापान में बौद्धों और ईसाइयों में कभी कैसी हिंसा प्रतिहिंसा मची हुई थी? अरब के इस्लाम के अनुयायियों ने धर्मोन्माद में क्या नहीं किया? हमारे अपने ही देश में एक ही धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों ने एक दूसरे के गले पर तलवार चलाने में कभी कोई संकोच नहीं किया। शैव, वैष्णव, जैन और बौद्ध आदि सब एक-दूसरे के शत्रु बने रहे। एक के धर्म-स्थानों को नष्ट करके उनके स्थान पर अपना धर्म स्थान बनाने में सारा पुरुषार्थ लगा दिया गया। राजा जिस धर्म का अनुयायी होता था प्रजा पर जबरन उस धर्म को थोपा जाता था। फिर प्रत्येक धर्म का अनुयायी अपने धर्म को ही सब कुछ मान कर दूसरे को मिथ्या मान बैठता था और इस भ्रान्त धारणा के कारण चारों ओर संघर्ष, अशांति, कलह, ईर्ष्या, द्वेष तथा वैमनस्य पैदा होकर समाज के जीवन में कष्ट, क्लेश और अशांति का संचार होता रहता था। जिस धर्म को सुख का साधना माना गया था वही दुःख का कारण बन गया।

व्यक्तिगत जीवन में भी धर्म के कारण कुछ ऐसी भ्रममूलक भावनायें तथा धारणाएं घर कर गईं कि व्यक्ति का जीवन भी दुःख, कष्ट और क्लेश का केन्द्र बन गया। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि धर्म की वास्तविक भावना सर्वथा लुप्त हो गई। वैदिक धर्म सनातन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम आदि अजायब-घर की भाँति नाना पंथों, मतों तथा सम्प्रदायों के संग्रहालय बन गए। न विश्वास एक रहा, न धर्म-स्थान एक रहा, न धर्म न आराध्य देवी या देवता एक रहे और न धर्मग्रन्थ ही एक रह सके। धर्म के चिह्न भी ऐसे और इतने बन गए कि उन पर लाठियाँ चलनी शुरू हो गईं। कंठी, माला जनेऊ, चोटी, तिलक तथा ऐसे ही अन्य चिह्न सब भेदभाव के समर्थक बन गए। राम और कृष्ण के नाम पर भी विरोध की भावना प्रबल बन गई। धर्म के नाम पर कोई भी ऐसी चीज नहीं रही जो मानव-मानव में सहानुभूति, सहृदयता और बंधुभाव पैदा कर सकती। परिणाम यह हुआ कि मानव के हृदय में से धर्म का महत्त्व मिट गया। उसने उसको सर्वथा निरर्थक मान लिया। व्यक्ति के जीवन में से इस प्रकार धर्म के महत्त्व का अंत होने पर समाज और राजकाज में उसके महत्त्व के लिए कोई स्थान रहना सम्भव न रहा, भिन्न-भिन्न धर्म के अनुयायियों को अपना राग और अपनी-अपनी डफली बजाते देख राजनीतिज्ञों ने उनसे अपना पिंड छुटाने में ही अपनी खैर मान ली।

देश के दुर्भाग्य-पूर्ण विभाजन के समय धर्म के नाम पर जो वीभत्स कांड हुए उनके कारण धर्म का रहा-सहा महत्त्व भी सर्वथा नष्ट हो गया। धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बहाई गई। घर, गांव व शहर जलाये गये। दुकानें और घर लूटे गए। कितनी ही माताओं की गोद खाली कर दी गई। पत्नियां पतिविहीन तथा पति पत्नीविहीन कर दिए गए और लाखों को अपने बाप-दादाओं के घरों से अलग करके अनाथ और बेघर बना दिया गया। इन सारे कांडों को अपनी आंखों से देखने वाले मानव के हृदय में धर्म के लिए कोई श्रद्धा, आदर अथवा निष्ठा कैसे रह सकती थी? इसका जो परिणाम होना सम्भव था वही हुआ और हमारे देश में भी राजकाज के क्षेत्र में धर्म को अर्धचन्द्र दे दिया गया।

परन्तु धर्म के सम्बन्ध में इसको अन्तिम निर्णय नहीं माना जा सकता। जीवन के अन्य क्षेत्रों में पराजयवादी मनोवृत्ति से काम लेना हमको शोभा नहीं दे सकता। धर्म में पैदा हुई अथवा धर्म कें नाम से पैदा की गई बुराइयों को दूर न कर के धर्म को ही दूर कर देना मनुष्य की मनुष्यता के लिये शोभास्पद नहीं है। यदि वह परस्पर मैत्रीभाव पैदा करने के लिये पाठ्यसामग्री और इतिहास का संशोधन करते हुए नया इतिहास लिखने की भी सामर्थ्य, हिम्मत और विश्वास अपने में रखता है तो धर्म के सम्बन्ध में उसको ऐसा क्यों नहीं करना चाहिए और क्यों उसके सम्बन्ध में सर्वथा निराश हो जाना चाहिए?

धर्म का बहिष्कार न करके परिष्कार करने का काम सदा से ही होता आया है। मानव कमजोरियों का पुतला है। कमियाँ उसमें स्वभावतः पाई जाती हैं। कभी भी किसी ने उसकी उन कमियों अथवा कमजोरियों के कारण मानव जाति को मिटा देने का विचार नहीं किया, अपितु मानव के संशोधन अथवा परिष्कार अथवा सुधार भी उसी कार्यक्रम से निरन्तर चला आ रहा है, धर्म का संशोधन उसका एक मुख्य अंग है। उसमें भी उसको उसी विश्वास के साथ लगा रहना चाहिए। निराशा का कोई कारण इसलिए भी नहीं होना चाहिए कि मानव के जन्म का यह सिलसिला बन्द नहीं हो सकता और उसके जन्म के साथ उसकी कमियाँ और कमजोरियाँ भी जुड़ी हुई हैं। जब तक सृष्टि का यह सिलसिला जारी रहेगा तब तक कमियों और कमजोरियों को दूर करने का सिलसिला भी जारी रखना चाहिए और अपनी कमियों तथा कमजोरियों के कारण जब कि मनुष्य धर्म को विकृत करने में भी पीछे नहीं रहता तो धर्म के परिष्कार का सिलसिला बन्द क्यों होना चाहिए?

इतिहास साक्षी है इस बात का कि यह सिलसिला कभी भी बन्द नहीं हुआ। अनेक वेद, अनेक उपनिषद्, अनेक दर्शन और अनेक स्मृतियाँ तथा अन्य अनेक धर्मग्रन्थ इसी बात के सूचक हैं कि धर्म के शोध का यह शुभ कार्य सदा ही निरन्तर होता रहा है। श्रीकृष्ण, गौतम, महावीर, शंकर तथा मध्यकालीन संतों और उनके बाद जन्म लेने वाले अनेक महात्माओं ने भी इस सिलसिले को निरन्तर जारी रखा। मानव की देह के समान मानव का मन और आत्मा भी विभिन्न प्रकार के रोगों के शिकार हो सकते हैं। शारीरिक रोगो को दूर करने के लिए अनेक प्रकार की दवाइयों अथवा औषधियों के प्रयोग की तरह आत्मिक व मानसिक रोगों को दूर करने के लिए अनेक प्रकार की औषधियों का प्रयोग निरन्तर होता रहना चाहिए और दोनों की शोध एवं परिशोध का कार्य भी निरन्तर होता रहना आवश्यक है।

आयुर्वेद के प्रयोग शारीरिक रोगों को दूर करने के लिए जैसे आवश्यक हैं वैसे ही मानसिक तथा आत्मिक रोगों के निवारण के लिए धार्मिक प्रयोगों की अनिवार्य आवश्यकता है। उनके शोध एवं परिशोध भी वैसा ही आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है, अन्यथा पानी के रुक जाने से जैसे उसमें दुर्गन्ध पैदा हो जाती है वैसे ही जीवन के वे सब धार्मिक और सामाजिक क्रम भी दूषित हो जाते हैं जिनमें गतिहीनता पैदा हो जाती है। व्यापक रूप से धर्म पर भी यह तथ्य लागू होता है। इसी कारण उसके परिष्कार अथवा सुधार का काम निरन्तर होता रहा और वर्तमान तथा भविष्य में भी होता रहना चाहिए। आश्चर्य यह देख कर होता है कि जीवन के साधारण-से-साधारण क्षेत्र में भी इस वृत्ति से काम लेने वाला मानव धर्म के क्षेत्र में उससे काम लेना नहीं चाहता और वह उसमें जड़ता तथा मूढ़ता का दुराग्रह करने लग जाता है। एक किसान या माली अपने खेत और बगीचे में निरन्तर निरायी करता रहता है और फलतः घास व जड़ी-बूटियों को उखाड़ कर नष्ट करने में लगा रहता है।

साधारण-से-साधारण मनुष्य भी पुराने कपड़ों को बदल कर नए कपड़े पहनता रहता है और पुरानों को धोना आवश्यक समझता है। परन्तु धर्म के सम्बन्ध में इस मनोवृत्ति से काम नहीं लिया जाता।

यह धर्म की सबसे बड़ी विजय है कि जो महापुरुष इस काम के लिए प्रगट हुए उन सभी को धार्मिक महापुरुष मानकर उनकी पूजा की गई। वास्तव में ऐसा होना नहीं चाहिए था, क्योंकि प्रत्येक महापुरुष ने अपने से पहले प्रचलित धार्मिक विश्वासों, रूढ़ियों तथा परम्पराओं को परिष्कृत करने का जो महान् कार्य किया उसके कारण उस समय के धर्मपरायण लोगों ने उसको नास्तिक कहने में संकोच नहीं किया। परन्तु शीघ्र ही उसकी आस्तिकता की छाप लोगों पर ऐसी जम गई कि उसको धर्मावतार तथा धर्म संस्थापक मानकर पूजा जाने लगा। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' का उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण हिन्दू समाज में सबसे अधिक पूजे गए और धर्मावतार माने गए। इतना ही नहीं गीता के दूसरे अध्याय में वेद और वैदिक कर्मकांड का खंडन करने के लिए भी उनको बाह्य कहना पड़ा। कारण उसका यह था कि वैदिक धर्म की वास्तविकता को भुलाकर वेदों को एक वाद बना लिया गया और उस वाद के आग्रही लोगों ने 'संसार में और कुछ नहीं है, 'अर्थात् अन्य सब मिथ्या है' का अभियान करना शुरू कर दिया। उन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड को एकमात्र भोगैश्वर्य की प्राप्ति का साधन बना लिया। ऐसे वाद कर्मकाण्ड का प्रतिवाद करना ही श्रीकृष्ण के लिये अनिवार्य हो गया। यही स्थिति अन्य धार्मिक नेताओं की भी है।

भगवान् महावीर स्वामी के समय में वैदिक धर्म ३६३ शाखा-उपशाखाओं में बँट गया था। उनको उन दिनों में अन्यतीर्थी अथवा प्रावुदुक कहा जाता था। महावीर ने उन सबका समन्वय करके फिर से धर्म की प्रतिष्टा की, परन्तु उनके बाद जैन धर्म भी मुख्यतः दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरह पंथ के चार भेदों और उनके अंतर्गत अनेक उपदेशों में बँट गया, इसी प्रकार बौद्ध धर्म में भी अनेक शाखाएं व उपशाखाएं फूट निकलीं, न मालूम कितने धर्म उस समय देश में फैल गये होंगे। धर्म के नाम से किए गए विकार और उसके दुरुपयोग को उसका परिष्कार किए बिना दूर नहीं किया जा सकता। मध्यकालान

संतों ने भी धर्मान्धता के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया, और तत्कालीन जातपात आदि को उन्होंने जड़मूल से मिटाने में अपने को लगा दिया।

मानव को मानव से अलग करने वाली किसी भी धार्मिक भेदमूलक भावना को उन्होंने प्रश्रय नहीं दिया। लेकिन मानव के साथ उसकी अंध धारणाएं और अंध भावनाएं कुछ ऐसी जुड़ी हुई हैं कि वह धर्म के प्रकाश पर उनका आवरण डालकर उसको धुंधला बनाने में लगा ही रहता है और संत महापुरुषों को अपना जीवन उस मिथ्या आवरण में लगा देना पड़ता है। मानव की कमजोरी और महापुरुषों के इस मिशन का क्रम इतिहास में निरन्तर मिलता है। वर्तमान में इस मिशन की कहीं अधिक आवश्यकता है। धर्म को जितना इस समय विकृत किया गया है उतना पहले कदाचित् ही कभी किया गया होगा। उसके नाम पर छल-कपट करने में भी पराकाष्ठा कर दी गई है। वैसे अपने विशुद्ध रूप में भी उसके कितने नाम, कितने रूप और कितने भेद पैदा कर दिए गए हैं।

२२०० से कहीं अधिक धर्म के नाम व रूप बताए जाते हैं। ७०० से कहीं अधिक उसके लक्षण अथवा व्याख्याएं उपस्थित की जाती हैं। उसके रूप और व्याख्या को स्पष्ट करने वाले दर्शनों की भी संख्या १२०० से कम नहीं। ऐसी स्थिति में उसके सम्बन्ध में विचार कर साधारण बुद्धि मानव के सम्मुख कुछ निश्चित मार्ग, रूप अथवा नाम उपस्थित करना आवश्यक है। विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन इसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य से किया गया है।

एशिया विभिन्न धर्मों और धार्मिक संस्कृतियों की क्रीड़-भूमि है। भारत एशिया का केन्द्र विन्दु अथवा आत्मा है। सम्भवतः इसी कारण उसको धर्मभूमि कहा गया है। धर्म के प्रादुर्भाव तथा परिष्कार का जो काम निरन्तर धर्मभूमि भारत में हुआ है वह कहीं और नहीं हो सका। यहाँ के ऋषि, मुनि, संत-साधु, तीर्थंकर, अवतारी, महापुरुष तथा अन्य धर्मात्मा, महात्मा जीवन भर इसी कार्य में लगे रहे हैं। उन्होंने धर्म के परिष्कार के लिए अपने महान् जीवन को वैसे ही एक प्रयोगशाला बना दिया, जैसे वर्तमान युग के महान् संत, महात्मा गांधी अपने जीवन को सत्य एवं अहिंसा की प्रयोगशाला कहा करते थे।

धर्म के ये दोनों तत्त्व उनसे पहले भी विद्यमान थे। परन्तु मानव उनका सही प्रयोग करना भूल गया था। उस प्रयोग का उन्होंने एक उज्ज्वल उदाहरण अपने जीवन में उपस्थित किया। राजनीतिक क्षेत्र में सत्य (सत्याग्रह) तथा अहिंसा (अहिंसात्मक असहयोग) के प्रयोग को सफल बनाकर और उनके द्वारा अपने देश की स्वतन्त्रता का सम्पादन करके उन्होंने हिंसा के प्रतिहिंसा तथा घात, प्रतिघात में आँखें मूंद कर लगे हुए वर्तमान संसार के सम्मुख एक उच्चतम अनुकरणीय धार्मिक आदर्श उपस्थित किया। हमारे महान् देश का इतिहास ऐसे धार्मिक महापुरुषों की अटूट श्रृंखला से ओत-प्रोत है। कभी इस कार्य पर— 'वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः'—की उक्ति चरितार्थ होती थी और धर्म-सम्बन्धी तत्त्व की खोज के लिए बड़े-बड़े धार्मिक वादों अथवा विचारों का आयोजन किया जाता था। 'उस्त-र्केण अनुसंधते स धर्म वेद नेतरः'—की उक्ति इसी बात की द्योतक है कि धर्म को सदा ही तर्क की कसौटी पर कसा जाया करता था। इस प्रकार उसका शोध अथवा परिशोध निरंतर होता रहता था। परन्तु यह वाद वितंडावाद और यह तर्क कुतर्क का रूप धारण नहीं करता

था। प्रायः समस्त भारतीय साहित्य में इस प्रकार के तर्क और वाद होने का उल्लेख पाया जाता है।

महाभारत में न केवल गीता का आख्यान ही श्रीकृष्ण के मुख से इस उद्देश्य से करवाया गया है किन्तु भीष्म पर्व और शांति पर्व में भी धर्म का आख्यान भीष्म पितामह के मुख से करवाया गया है।

बौद्ध-काल में अशोक, कनिष्क और हर्षवर्धन के समय में अनेक धर्म सम्मेलन होने का उल्लेख मिलता है। शंकर और मंडन-मिश्र के वाद का भी यह उद्देश्य था। प्राचीन समय के शास्त्रार्थ तत्त्व-बोध इसी दृष्टि से होते थे। सम्राट् अकबर ने दीने-इलाही का सूत्र-पात करने के लिये धर्म सम्मेलन का आयोजन किया था। जो धार्मिक उत्सव, सम्मेलन अथवा तीर्थ यात्राएं केवल एक रूढ़ि या परम्परा रह गई हैं उनका वास्तविक उद्देश्य धर्म की शोध अथवा परिष्कार करना ही था। कुम्भ और अर्धकुंभ सरीखे समारोह पुरातन काल के उन धर्म महासम्मेलनों की केवल छायामात्र रह गए जिनमें सभी सम्प्रदायों के आचार्य अथवा नेता मिलकर धर्म की मीमांसा और उसकी छानबीन करके देश-काल के अनुसार नवीन व्यवस्थाएं दिया करते थे। धर्माचार्यों और धर्मगुरुओं का वास्तविक कार्य नई व्यवस्थाएं देकर धर्म को काल तथा देश के अनुसार सदा नया रूप देते रहना था।

आज की तरह वे केवल पुरानी रूढ़ियों, परम्पराओं और अंध-विश्वासों के प्रहरी न बने रह कर उनको समाज में बद्धमूल करने और उसको जड़ व मूढ़ बनाने का कार्य नहीं किया करते थे। वे उसकी प्रगतिशीलता एवं विकास के धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में अग्रदूत होते थे। परन्तु मानव का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि उन अग्रदूतों के सदियों के प्रयत्न उसकी कमजोरी पर विजय न पा सके और उसकी कमजोरी सदा ही उन पर विजय प्राप्त करती रही।

अपनी संकीर्ण अंधभावना से वह उनके नाम पर हमेशा ही नए धर्मों, नए सम्प्रदायों, नए मतों तथा नए पंथों को जन्म देता चला गया। आज इसी कारण चारों ओर नाना प्रकार के धर्मों, सम्प्रदायों, मतों व पंथों का माया-जाल बिछा दीख पड़ता है। उसको देखकर साधारण जन का माथा धर्म से ही फिर जाता है और वह सबसे विमुख होकर नास्तिकता की शरण ले लेता है। यह धर्म की सबसे बड़ी पराजय है।

शास्त्रार्थों का जो नया सिलसिला शुरू किया गया उसका उद्देश्य तत्त्व की खोज करके धर्म का परिशोध करना नहीं रहा। उनमें वितण्डावाद अथवा कुतर्क का सहरा ले कर एव-दूसरे को नीचा दिखाने और अपने अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताया जाने लगा। वे मानव को और भी अधिक पथभ्रष्ट करने का निमित्त बन गये।

आज युग कुछ बदल रहा है। वह विभिन्नना में एकता के दर्शन करना चाहता है। सह-अस्तित्व एकता के दर्शन करना चाहता है। सह-अस्तित्व के जिस सिद्धान्त को राजनीतिक क्षेत्र में अंगीकार किया जाना आवश्यक हो गया है। यह माना जाने कगा है कि भिन्न-भिन्न मत, विचार, विश्वास, आराध्य और धर्म-ग्रन्थ रखते हुए भी एक लक्ष्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न किया जा सकता है। सब धर्मों के प्रति समभाव रखने का यही अभिप्राय है। इसी का दूसरा नाम है समन्वय। इसीलिए आज समन्वय और समभाव की दृष्टि से विश्वधर्म-

सम्मेलन किये जाते हैं। पिछले तीन-चार वर्षों से इन का जो सिलसिला प्रारम्भ हुआ उसी का परिणाम दिल्ली का आयोजन था।

जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज को इस नवीन क्रम के सूत्रपात करने का श्रेय एवं यश प्राप्त है। इस सम्बन्ध में आपकी दृष्टि बिलकुल स्पष्ट है। बम्बई में पहले आपने सर्व-धर्म-सम्मेलन का इसी दृष्टि से आयोजन किया था। उन दिनों में राज्यों के पुर्ननिर्माण की समस्या के कारण विभिन्न भाषाओं के प्रश्न ने बड़ा विकट रूप धारण कर लिया था।

श्री मगन-भाई दोष और श्री जगन्नाथ जी जैन ने बम्बई के आयोजन को सफल बनाने में रात-दिन एक कर दिया। बम्बई के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोरारजी देसाई की भी सम्मेलन के साथ पूरी सहानुभूति रही और उन्होंने ही सम्मेलन का उद्घाटन सम्पन्न किया था। मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज ने उस सम्मेलन में संदेश के रूप में जो भाषण दिया था वह आज भी वैसा ही महत्त्वपूर्ण है। उसमें मुनि जी ने धर्म के सम्बन्ध में अपनी उदात्त भावना को प्रगट करते हुए सम्मेलन के उद्देश्य और विश्व के प्रति एशिया तथा भारत के दायित्व पर भी विशेष प्रकाश डाला था। उस महत्वपूर्ण भाषण को यहां उद्धृत करना अत्यन्त आवश्यक है। उस प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण भाषण में मुनि जी ने कहा था कि "मेरा विश्वास है कि आत्मशान्ति के लिए यदि हम धर्म को आवश्यक समझते हैं तो विश्व शांति के लिए उसका समन्वय भी अनिवार्य है।"

मनुष्य के जीवन की तीन आवश्यकताएँ हैं, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय और सामाजिक नेता नाना प्रकार के प्रयत्न करते हैं। मानसिक और बौद्धिक तृप्ति के लिए साहित्य—निर्माताओं की साधना है, उसी प्रकार आत्मिक शान्ति के लिए धर्मात्माओं की नैतिक प्रेरणा निरन्तर अपेक्षित है।

पात्रता के अनुरूप धार्मिक क्रियायें भिन्न-भिन्न रहेंगी,पर हमारे लक्ष्य की कसौटी भावों की विशुद्धि ही रहेगी। एक तरफ परम्परा के मोहवश विज्ञान का विरोध दिखाई देता है तो दूसरी तरफ भौतिक आविष्कारों की चकाचौंध में धर्म के प्रति अरुचि बढ़ती जा रही है।

मुझे दोनों ही अभीष्ट नहीं हैं। विज्ञान के विरोध से हम यथार्थ और स्वार्थ से अनभिज्ञ रह जाते हैं और धर्म के विरोध से परार्थ और परमार्थ के आनन्द से वंचित रह जाते हैं। इसलिए संघर्ष का मूल तो ऐकान्तिक दृष्टि है, उसे छोड़कर निश्चय और व्यवहार, द्रव्य और भाव, बुद्धि और श्रद्धा का समन्वय करने वाली अनेकान्त दृष्टि ही जीवन को पूर्ण बना सकती है।

त्यागी बने, पर लोक-सेवा को पाप न समझे। अहिंसक बने, पर रक्षण को पाप न समझे। अपरिग्रही बने, पर दान को पाप न समझे। आत्म-गौरव रखे, पर विनय को पाप न समझे। इस प्रकार द्वन्दों का रहस्य समझ कर सर्वत्र समभाव की दृष्टि रखना ही धर्म का लक्ष्य है।

निर्ग्रन्थों के प्रवचन का एक मात्र धर्म के सम्बन्ध में अमर उद्घोष—

**"वत्थुसहावो धम्मो।"**

अर्थात् "स्वभाव ही धर्म है।" धर्मके लिए बड़े-बड़े ग्रंथ अनिवार्य नहीं हैं, अन्तरात्मा की ध्वनि ही हृदय में धर्म का स्वरूप प्रकट करती है। अग्नि को किस ग्रंथ ने ज्ञान दिया है कि "तुम ज्योतिष्मान् बनी रहो। जल को किस पुराण ने पढ़ाया है कि तुम प्यास बुझाओ। श्वान ने किस श्रुति का संदेश पाया है कि तुम जिसके अन्न का भक्षण करते हो उसके घर का रक्षण करो। बिल्ली को किस बायबिल ने बताया है कि चोरी से दूध पीते समय डरो। सिंहनी ने किस शास्त्र का स्वाध्याय किया है कि जिससे वह अपने पुत्र के प्रति अहिंसक बनी रहती है। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि धर्म की जानकारी अपनी आत्मा की आवाज़ सुनने से ही हो सकती है।

जब मनुष्य ग्रन्थों का मोह छोड़ कर निर्ग्रन्थ आत्मा की आवाज़ सुनेगा, तब उसे राग-द्वेष न होगा, जैसा कि जैन आचार्य ने कहा है कि—

**"पक्षपातो न मे वीरे न च द्वेषः कपिलादिषु**
**युक्तिमद्वचनं यस्य कार्यः तस्य परिग्रहः ॥"**

अर्थात् महावीर में मेरा पक्षपात नहीं है, कपिलादि आचार्यों से मेरा द्वेष नहीं है, युक्ति-युक्त और सत्यता जिसकी वाणी में है वही मुझे स्वीकार्य है।

इसलिए मतभेद रहे, पर उस कारण से आनन्द की वृद्धि में रुकावट नहीं होनी चाहिये।

जैनाचार्यों ने विचार-स्वातन्त्र्य का विरोध नहीं किया। इतना ही नहीं, भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से परस्पर विरोधी दृष्टियों को भी प्रामाणिक स्वीकार किया है। दुराग्रह को ही मिथ्यात्व माना जाता है और निराग्रही वृत्ति ही सम्यक्त्व का मूल है। दार्शनिक समन्वय के इस अनेकान्त सिद्धांत को हम राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में भी प्रयुक्त कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि हमारे आचार-विचार, प्रेम और सेवा से भरी हुई अहिंसा तथा विवेक और विज्ञान का प्रकाश करने वाले सत्य के आधार से निर्धारित किए जाने चाहिए।

श्रुतियों और उपनिषदों में तथा सूत्रों और पिटकों में दूसरों का विरोध न करते हुए आत्म-संयम को ही धर्म साधना माना है। महावीर स्वामी ने आज्ञा दी है कि—"अप्पाणमेव जुज्झाहि।" उपनिषदों में कहा है कि—"तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।" ऋग्वेद का वाक्य है कि—"त्यागेन एकं एव अमृतं तत्वमानुपः।" सबका स्वर एक ही है कि "त्याग ही शांति और अमरता प्रदान करता है।"

बुद्ध, ईसा, जरथुस्त और मुहम्मद के अन्तस्तल में प्रवेश करेंगे तो हमें आनन्द की वद्धि के लिए सब का लक्ष्य समर्पण ही मिलेगा। अगर हम सर्वत्र शान्ति और सुखों का साम्राज्य चाहते हैं तो हमें अपने विविध स्वार्थों का बलिदान करने के लिए कटिबद्ध रहना होगा।

सर्वधर्म परिषद् सरीखे आयोजनों से हमें साम्प्रदायिक सहिष्णुता तथा पारस्परिक सद्भावना बढ़ाने का सहज अवसर मिलता है जिससे अखण्ड मानवता की स्थापना के योग्य भूमिका बन सके।

हमारे एशिया महाद्वीप पर ही सबसे अधिक उत्तरदायित्व है कि वह युद्ध-शान्ति के

लिए सांस्कृतिक सम्मेलन का वातावरण तैयार करे। एशिया ही अनेक धर्मों का क्रीड़ांगण रहा है इसलिए धर्मपरिषदों के द्वारा उसे ही युद्ध का बीज मिटाने में अग्रगण्य बनना चाहिए। भारत-चीन मैत्री इस पवित्र उद्देश्य को सफल करने में सहायक सिद्ध होगी। एशिया के सब धर्मों का समन्वय अन्त:राष्ट्रीय ऐक्य का आधारभूत स्तम्भ बनेगा जो यूरोप, अमेरिका आदि देशों की महत्वाकांक्षा को मर्यादित करके सर्वत्र प्रेम का वातावरण बढ़ायेगा।

अगर हम गम्भीरता से विचार कर तो सभी देश शान्ति चाहते हैं, युद्ध किसी को प्रिय नहीं है, परन्तु परिस्थितिवश विश्व-जीवन में ऐसी विसंगतियां आ गई हैं कि बिना इच्छा के भी उन्हें युद्ध के लिए सन्नद्ध होना पड़ता है।

यह परिषद् अशांत विश्व को शान्ति का संदेश देकर एक समन्वयात्मक व्यापक धर्म की दृष्टि दे सका तो व्यवस्थापकों का प्रयत्न सफल समझा जायेगा।

भाषाई आधार पर राज्यों के निर्माण के सिद्धान्त के स्वीकार किए जाने से प्रत्येक प्रान्त अपनी-अपनी भाषा का राग अलापने और डफली बजाने में लगा हुआ था। बम्बई इस बात का प्रधान केन्द्र था। महागुजरात और महाराष्ट्र की माँग के कारण भी भाषा की समस्या दिन-पर-दिन टेढ़ी हो रही थी। इन विकट राष्ट्रीय परिस्थितियों में मुनि जी ने सर्व-भाषा सम्मेलन करके इस राष्ट्रीय समस्या का कोई हल ढूंढ़ निकालने का विचार किया। परन्तु शीघ्र ही आपने यह अनुभव किया कि भाषा की समस्या की तह में भी धर्म की वह समस्या मौजूद है जिसके कारण देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन हुआ और भविष्य में भी और अधिक विभाजन होने का संकट विद्यमान है। इसलिये आपको सर्वभाषा सम्मेलन के स्थान पर सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन करना अधिक उचित और उपयोगी प्रतीत हुआ। आपके संरक्षण में बम्बई में पहला सर्वधर्म सम्मेलन हुआ।

उससे अगले वर्ष १९५५ में आपने उज्जैन में चातुर्मास किया और भारत का केन्द्र और अति प्राचीन सांस्कृतिक स्थल होने से आपको वहाँ सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन करना अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुआ। उस समय मुनि जी ने धर्म के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हुए कहा था कि यदि विश्व, शान्ति चाहता है तो उसे मानवता, सहिष्णुता तथा अधिकार-मर्यादा और संयम का भाव रखना होगा, यह दिव्य संदेश मानव को धर्म ने दिया है। विश्व-शान्ति के लिए सार्वभौम राज्य नहीं, अपितु सार्वभौम धर्म की आवश्यकता है। आत्मा का शाश्वत संगीत धर्म ही संसार को शान्ति दे सकता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। धर्म के क्षेत्र में लिंग-भेद अथवा देश-भेदों को कोई स्थान नहीं। मानव जाति एक है, उसका स्वभाव एक है, इसलिए संसार के तमाम धर्मों ने मानव जाति को एक ही कुटुम्ब माना है और सभी मानव गोरे, काले उसके एकमात्र सदस्य हैं। प्रेम, शान्ति, सद्भावना, सहिष्णुता, मित्र-भाव ही सभी धर्मों को मुख्य विशेषतायें रही हैं।

मनुष्य पर शासन उसके विचार करते हैं, धर्म ने मानव के विचारों को मोड़ दिया है, दैवी गुणों के प्रति आकर्षण दिया है।

सम्भव है, विचार-विभिन्नता संघर्ष का कारण बनी हो किन्तु श्रमण महावीर का अनेकान्तवाद उन्हीं आंशिक सत्यों को अखंड सत्य की ओर ले चलने में समर्थ है। बुद्ध का विभज्यवाद, शंकराचार्य का समन्वयवाद, ईसा का अनुग्रहवाद, तथा मुहम्मद का प्रत्येक कौम

के महापुरुषों को परमात्मीय संदेशवाहक मानने का श्रद्धावाद इसी धार्मिक, वैचारिक तथा सैद्धान्तिक महासमन्वय के गान का आरोह कर रहा है।

महात्मा गांधी की महाचाबी सत्य, अहिंसा, कबीर की गुण-पूजा, संत नानक की बन्धु-भावना, तथा रामकृष्ण परमहंस का मैत्री-भाव उसी धर्म की उद्घोषणा कर रहा है जो अनेक रूपों में रहकर भी एक है, ध्रुव और शाश्वत है।

धर्म का प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर बहा है। धर्म ने विश्व को अपनी गोद में आबद्ध किया है। एशिया, धर्मों की जन्मभूमि है। एशिया के तमाम धर्मों के प्रवर्तकों का सार मैं यह समझता हूँ कि मानव-प्रेम, अहिंसा को अपने जीवन का विज्ञान शास्त्र समझे और बाह्य जगत् से लेकर अन्तरंग जगत् तक के समस्त अशिव, अभद्र पाप धो देने में प्रयत्न-शील रहे।

क्या यह संदेश मानव को शान्ति दिलाने में अपर्याप्त रहेगा ? मैं इस निष्कर्ष तक पहुँचा हूँ कि मानव के विराट् विश्व की शान्ति धर्म के अन्तरंग में ही अवसिवत है।

भारत की सार्वभौम संस्कृति उस परम शान्तिमय धर्म से अनुप्राणित है। भारत की सदा से यही शान्ति-परम्परा रही है। भारत ने समस्त विश्व में अपने धर्म-दूत तो भेजे किन्तु किसी देश पर सैनिक नहीं भेजे और न ही कभी कोई आक्रमण की योजना बनाई। आज समस्त धर्म के माननेवाले धार्मिकों में सहिष्णुता, परस्पर भ्रातृभाव तथा आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने का काम भी भारत को ही करना चाहिए।

जैसे महाभारत-युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र के स्थान को चुना गया था, उसी प्रकार स्थान की खोज में उज्जैन को इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त माना गया है। क्योंकि—

उज्जैन में कृष्ण का सांदीपनी आश्रम, भगवान् महावीर का दिव्य घोष, बुद्ध का प्रेम वर्णन तथा सिद्धसेन दिवाकर की न्याययुक्तियाँ तो प्रस्फुटित हुई ही हैं, कालिदास की कला का सौन्दर्य-प्रसाधन भी यहाँ ही किया गया है। जैन, वैदिक तथा बुद्ध की विचार-धाराओं का यह संगम-स्थल ही संसार के तमाम धर्मों के मिलन का पवित्र स्थान रहेगा; यह मेरा विश्वास है।

यह सम्मेलन धार्मिकों में उदारता, सहिष्णुता, सहृदयता के भावों को पनपायेगा, भौगोलिक, सामाजिक तथा वर्णगत सीमाओं में पिछड़े मानव-हृदय को मानव सार्वभौम संस्कृति का अमृत तो पिलायेगा ही, किन्तु साथ ही आध्यात्मिक दर्शन के सूक्ष्म सत्य को भी वैज्ञानिक जगत् के भौतिक आविष्कार के सामने रखने में समर्थ हो सकेगा।

मुझे पूर्ण आशा है कि अखिल भारतीय सर्व-धर्म-सम्मेलन ऐसा आदर्श सामने रखेगा, जिससे अखिल भारत में क्या सारे विश्व में विभिन्न धर्मों के अनुयायी देश व जाति के भेद-भाव को छोड़कर भौतिक, बौद्धिक, तथा आध्यात्मिक उन्नति की उच्च श्रेणी को प्राप्त करके राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पारिवारिक जीवन का मत्त्हव समझ सकेंगे और प्रेम, मैत्री तथा सहनशीलता से सब धर्मों के प्रति उदार बन कर भारत एवं विश्व में शान्ति बनाये रखने में भाई की तरह सहयोगी बन सकेंगे।

बम्बई में १९५४ में जब पहले सर्व-धर्म-सम्मेलन का आयोजन किया गया था, उसमें विभिन्न १८ धर्म-गुरुओं ने मिलकर वे पांच सिद्धान्त स्थित किये थे जो विश्व-धर्म

सम्मेलन की आधार भूमि बन सकते थे। वे यह थे :—

१. आध्यात्मिक वृत्ति, २. सहअस्तित्व, ३. सत्य, ४. अहिंसा, ५. प्रेम

इन्हीं के आधार पर कुछ धर्मों का एक संगठन बन सका और उसी को दिल्ली के विराट् आयोजन की वह पृष्ठभूमि कहना चाहिए, जिसको २६, २७, २८ नवम्बर १९५५ को उज्जैन के सुप्रसिद्ध महाकाल मन्दिर के मैदान में और अधिक सुदृढ़ किया गया; उसके लिए विशेष रूप से अशोक मण्डप का निर्माण किया गया था। मध्य प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्री मंगलदास पकवासा के हाथों उसका उद्घाटन किया गया था और राजस्थान के अर्थ-मंत्री तथा अजमेर राज्य के तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय उसके अध्यक्ष थे। दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः संसद् सदस्य सेठ अचल सिंह जी और स्वामी प्रेमानन्द जी सभापति हुए।

सम्मेलन में भाग लेने के लिए पोलेंड से चार धर्म गुरुओं का एक प्रतिनिधि मण्डल प्रो० निमित्स विक्टर के नेतृत्व में उज्जैन आया था। जापानी बौद्ध भिक्षु श्री टेनजो बटनवे, भोपाल राज्य-विधान सभा के अध्यक्ष श्री सुलतान मोहम्मद, मध्य भारत के राजस्व एवं स्वायत्त शासन मन्त्री श्री सौभाग्यमल जी जैन, स्वामी प्रेमानन्द जी, विनोबा भावे के-कनिष्ठ भ्राता श्री शिवा जी भावे, वृन्दावन के श्री वनमहाराज, हरिद्वार के श्री अखंडा-नन्द जी और श्री शुकदेवानन्द जी, संसद् सदस्य श्री बालकृष्ण जी शर्मा 'नवीन', थियोसो, फिकल सोसाइटी के श्री सत्य नारायण चौधरी, रामजस कालेज दिल्ली के प्राध्यापक श्री इन्द्र चन्द्र शास्त्री, जमियत उल उलमाये हिन्द के मध्य-भारतीय अध्यक्ष मौलाना सिद्दकी, अमृतसर के ज्ञानी अमरसिंह जी चाकर आदि सहस्रों प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में ही दिल्ली में विश्व धर्म सम्मेलन करने का भी निश्चय किया गया और निम्नलिखित प्रस्ताव पास किए गए—

१. समस्त विश्व की एक धार्मिक संस्था बनाई जाय, जिससे संसारकी समस्त धार्मिक संस्थाएं सम्बन्धित हो सकें।
२. धर्म के नाम पर पैदा हुआ साम्प्रदायिक द्वेष मिटा कर समभाव और सहिष्णु-भाव उत्पन्न किया जाए।
३. समस्त धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए सुविधायें जुटाई जायें।
४. इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन किया जाये।

इन प्रस्तावों से स्पष्ट है कि नई दिल्ली में विश्व-धर्म परिषद् और अहिंसा शोधपीठ की स्थापना करने का जो निश्चय किया गया है उसकी भावना और कल्पना उज्जैन में भी मुनिजी महाराज के सम्मुख बिल्कुल स्पष्ट थी। वहाँ उन्होंने सम्मेलन से पूर्व एक प्रेस-कान्फरेन्स में विश्व धर्म सम्मेलन और विश्वधर्म विद्यालय की स्थापना का विचार संवाद-दाताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया था। उनके उस विचार के अनुसार ही नयी दिल्ली के सम्मेलन में उपयुक्त निर्णय किए गए। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उज्जैन सम्मेलन के लिए २९ सदस्यों की जो समिति बनाई गई थी उसमें सभी धर्मों के प्रतिनिधि लिए गये थे और उससे मुनि जी के समन्वयात्मक दृष्टिकोण का स्पष्ट आभास मिलता था। सम्मेलन के विशाल पंडाल का नाम सम्राट् अशोक के नाम पर रखा गया था और उसमें देशभक्त सेठ

सोहन लाल जी दूगड़ के हाथों से महात्मा गांधी की मूर्ति स्थापित करवाई गई थी। ये दोनों घटनाएं इस बात की सूचक थीं कि सम्मेलन का केन्द्र-बिन्दु अहिंसा था जिसको कि सब धर्मों का निचोड़ कहा जा सकता है। सम्राट् अशोक को युवराज अवस्था में उनके पिता महाराज बिन्दुसार ने उज्जैन में राज्यपाल नियुक्त करके भेजा था और वहाँ ही रहते हुए उनको अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला था। उज्जयिनी की यह ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि सम्मेलन के कार्य के सर्वथा अनुकूल थी।

इसी क्रम के अन्तर्गत फरवरी १९५६ में भीलवाड़ा में मध्यभारत राजस्थान प्रान्तीय सर्व धर्म सम्मेलन का आयोजन बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ, इस सम्मेलन के प्रभाव से वहाँ उपस्थित चालीस हजार नर-नारियों ने सर्व धर्म समभाव रखने की प्रतिज्ञा ली।

इस प्रकार बम्बई, उज्जैन और भीलवाड़ा में दिल्ली के महासम्मेलन के लिए सुदृढ़ पृष्ठ-भूमि तैयार की गई और सम्मेलन के मूल-प्रेरक मुनि सुशील कुमार जी महाराज ने दिल्ली पधार कर उसके लिए कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

दिल्ली में सम्मेलन के सम्बन्ध में की गई तैयारियों की चर्चा करने से पहले सम्मेलन के उद्देश्यों पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है और उसके लिए मुनि जी महा-राज के उज्जैन के सम्मेलन में दिए गए भाषण का उल्लेख करना आवश्यक है। इस भाषण में मुनि जी ने धर्म के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए थे वे भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। सर्व-धर्म सम्मेलन का उद्देश्य आपने सार्वभौम धर्म की खोज करना बताया था। क्योंकि उसके बिना मानव का जीवन अमृतमय नहीं बन सकता।

धर्म चिन्तन से ही पूर्व-पश्चिम को एकता की भूमिका के तैयार होने की सम्भावना को प्रगट करते हुए आपने कहा था कि आज जब कि समूचा विश्व एक स्वर से विश्व-शांति के लिए विश्व-राज्य का निर्माण करने जा रहा है, उस समय तो विश्व-धर्म की चर्चा करना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। विश्व-धर्म के बिना विश्व-राज्य कोरा स्वप्न रह जायेगा। आर्थिक और राजनीतिक सुविधाओं को लेकर अथवा युद्ध-विभीत बनकर विश्व-राज्य का पाया सुदृढ़ नहीं हो सकता। विश्व-राज्य का भवन विश्व-धर्म के सहारे ही खड़ा हो सकता है। धर्म-सम्मेलन का आशय कोई उत्सव करना अथवा प्रदर्शन करना मात्र नहीं है, अपितु सार्वभौम राज्य के लिये उपयुक्त वातावरण तैयार करना है जिससे मानव-जाति में एकीकरण की भावना का उदय हो सके।

धर्म के स्वरूप के सम्बन्ध में तब आपने ठीक ही कहा था कि तत्त्व-रूप से समूचे विश्व का धर्म एक ही है, अनेक नहीं। किन्तु भाषा, भाव आदि अन्यान्य विभिन्नताओं के कारण उसकी अभिव्यक्तियाँ विविध हैं, दृष्टियाँ पृथक्-पृथक् हैं। सभी दृष्टियों के समीकरण से एक ही विराट् धर्म के इस भूतल पर दर्शन होते हैं। मानव एक है किन्तु विचार, व्यवहार और आवश्यकताओं के नाते अनेक हैं। मंगोलियन, काकेशियन, आर्यन, अफ्रीकन तथा योरू-पीयन ये सब रूपान्तर मानव में प्रादेशिक सांस्कृतिक भिन्नता के ही कारण हैं। तत्त्व-भेद किंचित् भी नहीं है, क्योंकि समूची मानव-जाति में लक्ष-लक्ष अन्तर होने पर भी ऐसा अखंड-तत्त्व अवश्य है जो एकता, समता तथा बंधुता की वंशी बजा रहा है जिसके स्वर में प्रतिध्वनित हो रहा है कि समूची मानव-जाति एक है। वसुधा एक अविभक्त कुटुम्ब है, सब एक ही

परिवार के अभिन्न सदस्य हैं, एक ही पूर्वज की सन्तान हैं, हमारी धमनियों में एक ही रक्त गति कर रहा है, वह तत्त्व धर्म है, जो हृदय-ग्रन्थियों का भेदन कर संशय, अविश्वास तथा भेद-दृष्टि के जगत् से पार ले जाकर आध्यात्मिक अभिन्नता के दर्शन कराता है। धर्म-साधन अभेद-मूलक है। भौतिक विकास भेद-मूलक विश्लेषण पर तथा धर्म-संश्लेषण पर बल देता है, यही धर्म की उपयोगिता है।

मानव की धर्म के सम्बन्ध में एक शाश्वत कमजोरी का भी विवेचन मुनि जी ने बहुत सुन्दर शब्दों में किया था। अपनी कमजोरी को धर्म पर लादकर उसको गूढ़ रहस्य बना देना मनुष्य का कुछ स्वभाव-सा बन गया है। उसकी चर्चा करते हुए आपने कहा था कि मानव ने आग्रहवश धर्म पर अर्थों के अम्बार और परिभाषाओं के ढेर लगा दिए हैं। अब भी धर्म की ७०० परिभाषाएँ अपना-अपना अस्तित्व रखती हैं। प्रत्येक धर्म परस्पर में एक-दूसरे को अपूर्ण और स्वयं को पूर्ण मानने का हठ पकड़े हुए है। यही कारण है, स्वकल्पित अर्थ के आग्रह के कारण प्रत्येक धर्म ने जगत् के सभी धर्मों से अवांछनीय व्यवहार किया है और कहीं-कहीं पर वह भावना इतनी उद्दाम हो गई है कि जगत् के सभी धर्मों का नाश करके सर्वधर्म की सत्यता प्रमाणित करने के लिए विध्वंस लीला के अकांड तांडव घटित हो गए हैं। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि जगत् में अनेक धर्म हैं, उनका अपना-अपना सापेक्ष दृष्टि से महत्त्व है। उपयोगिता और आवश्यकता में अनेक धर्म हैं। सभी धर्म दृष्टि-बिन्दु हैं। अहिंसा के साधनों से सत्य की शोध के सभी हिमायती हैं, किन्तु उनकी योग्यता, सामर्थ्य, दृष्टिकोण पृथक् हैं, सभी धर्मों का नाश करके मानव-जाति को एक बाड़े में बन्द करना कभी भी हितकारक नहीं हो सकता है, सम्भव है कि अपकर्ष का ही कारण हो। न ही किसी व्यक्ति को किसी तत्त्व का नाश करने का अधिकार है। पिछली शताब्दियों में राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, जरथुस्त, कन्फ्यूशियस, लाओत्से, ईसा, मुहम्मद जैसे अवतार, तीर्थंकर, तथा-गत तथा पैगम्बरों का मानव दर्शन कर चुका है। ये महामानव थे और ये मानवता के ज्वलंत प्रहरी और आत्मा के दिव्य संदेश-वाहक थे। इन सबको धर्म-प्रवर्तक कहा जाता है। प्रवृत्तियों को सबके प्रतिकूल और अभिलाषित शाश्वत आत्म-अनुकूलताओं को समस्त के लिए हितावह माना था। "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" यही इनका सार था। अतः धर्म जैसे व्यापक तत्त्व को हम किसी सीमा अथवा श्रेय-प्रेय के पचड़े में नहीं उलझा सकते। धर्म का अर्थ मूल में स्वभाव है, समाज में सदाचार है, संस्कृति में आदर्श है और सभ्यता में सद्व्यवहार है। कला और साहित्य के क्षेत्र में श्रेय और अभ्युदय है। सन्तों में सर्वोदय तथा मानस-शास्त्रियों में स्वस्थता है। धर्म के मूल अनेक हैं, अर्थ अगणित हैं, तात्पर्य एक ही है कि चैतन्य का धर्म चैतन्य है जिसे हम आत्म-स्वभाव कह सकते हैं। आत्मा ही धर्म का स्रोत है और आत्म-स्वभाव के विकास को ही हम परिपूर्ण धर्म मान सकते हैं।

एक धर्म अनेक में कैसे परिवर्तित हो गया इसका विवेचन करते हुए मुनि जी ने कहा था कि —

"भारत की सांस्कृतिक चेतना ने जैन-धर्म, वैदिक-धर्म, और बौद्ध-धर्म को स्वरूप दिया है। ईरान और पैलस्टाइन ने पारसी, यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्मों को जन्म देने का गौरव प्राप्त किया है, तथा चीन और जापान ने शितो, ताओ तथा कन्फूशियस मत को

आविर्भूत किया है। इन्हीं धर्मों का सम्प्रदायों के रूप में वर्गीकरण हो गया। आज भारत में अनेक सम्प्रदाय हैं जैसे कि :—

वैदिक-धर्म— वैष्णव, शैव, भागवत्, सौरमत, संतपंथ, आर्यसमाज आदि

जैन-धर्म—दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी।

बौद्ध-धर्म—हीनयान, महायान, सौतान्त्रिक, वैभाषिक, माध्यमिक, योगाचार। इतर सम्प्रदाय अनेक हैं।

पारसी, यहूदी, ईसाई, रोमन-कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट, इस्लामी, बोहरा, कादियानी, बहावी, सूफी, कन्फ्यूशियस, ताओ, शिन्तो आदि धर्मों का भी यहां अविशेष है। यही क्या महावीर की वाणी सुनते हैं तो वे ३६३ मतों का उल्लेख करते हैं, आरम्भवादी, परिणामवादी, नियतिवादी आदि अनेक आजीवक गोशालिक प्रबुद्ध कात्यायन, पूर्ण कश्यप आदि धर्म-स्थानों का विवेचन प्राप्त होता है। फाहियान ने स्वयं अपने वर्णन में बौद्ध-धर्म के सिवाय ९३ अन्य सम्प्रदायों का वर्णन किया है। इन सबका उद्देश्य-भाव विमुक्ति ही रहा है, फिर चाहे उनका दृष्टिकोण कितना ही आंशिक क्यों न हो।

संसार के समस्त धर्मों का जन्म एशिया में हुआ है, पूर्वी एशियायी धर्मों का प्रतिनिधि भारत है और पश्चिमी सभी धर्मों के प्रतिनिधि ईरान और पैलस्टाइन हैं। यद्यपि सभी धर्मों का आदर्श आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्राप्ति ही रहा है तो भी प्रादेशिक भिन्नता के कारण पूर्वी और पश्चिमी धर्मों के कार्य पर गहरा और विभिन्न रूप में प्रभाव पड़ा है। पश्चिम में धर्म को एक सामाजिक संस्कार, जातीय एकता का प्रशस्त पंथ, राष्ट्रीय सुदृढ़ता की दीवार तथा लोक-सुख-परायणता का माध्यम माना जाता है। पूर्व के तमाम देशों में धर्म को आन्तरिक अनुभूति, अत्यन्त दुख विनाश का हेतु, संयम, तप, समाधि, निदिध्यासन सर्वभूतानुकंपा का प्रदाता और आध्यात्मिक स्वस्थता का कारण माना गया है। पूर्व में सत्त्व भूत के प्रति मित्रता, गुणियों के प्रति प्रमोद, दुखियों की मदद तथा विपरीत वृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थ भाव रखना ही धर्म का सच्चा लक्षण बताया गया है।

आज एक ओर तो धर्म, वहम, अन्ध-श्रद्धा, कट्टरता, आग्रह, कल्पना, थोथी धारणा प्रपंच तथा आडंबरों का अजायबघर बन गया है और दूसरी ओर गगनगामी, उर्ध्वमुखी, विराट् चिन्तकों के आध्यात्मिक अनुभवों का भण्डार बना हुआ है जिन्हें दैवी गुण कहा जाता है, जिन पर मानवता सांस ले रही है, मनुष्य भूमा बन रहा है, संस्कृति विश्व-व्यापक हो रही है। धर्म की अवस्था ऐसी हो गई है कि सामान्य प्रजा तो धर्म को नितान्त सत्य, वैज्ञानिक नितान्त असत्य तथा अधिकारी लोक-मानस को दास बनाये रखने में उपयोगी धर्म को मानते हैं।

धर्म पर अधर्म की शैवाल जम गई है। सत्य पर सत्याभास की प्रतिष्ठा हो चुकी है क्योंकि मनुष्य में संशोधक-वृत्ति का अभाव होता जा रहा है। धार्मिकों का विश्वास है कि धर्म में विकास अथवा परिष्कार का अवकाश नहीं है। ऐसे लोग भूल जाते हैं कि प्रत्येक धर्म अपनी आस-पास की सांस्कृतिक भूमिकाओं से अविश्लेष्य रूप से घिरा रहता है। इसलिए जो धर्म ग्रहण और त्याग की वृत्ति को भूल कर अकड़ते रहते हैं, वे असमय में ही नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार सैकड़ों धर्म, सहस्र सम्प्रदाय, अनेक महाजातियां तथा

अगणित सभ्यताएँ महागर्त में विलीन हो चुकी हैं, जिन्होंने परिष्कार को स्थान ही दिया था। प्रत्येक क्षण अतीत की बुराइयों को निकालते रहो, नीति तथा तत्त्वानुभव की नई पद्धतियों का निर्माण करते रहो, तभी धर्म मानव के लिए अमरता का मार्ग बना रह सकता है।

धर्म वह है जो व्यक्ति की अकुण्ठित शक्ति जगा दे, संकल्प के बल को प्रोत्साहन दे, व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो, समष्टि का आत्म-बल आत्मसात् करने की प्रेरणा दे, व्यष्टि को विश्व में विलय करने की सामर्थ्य दे, अप्रमाद, विवेक तथा अहिंसा की भावना को जागृति दे, वह धर्म हो सकता है। उसे ही हम जीवित धर्म कह सकते हैं। दयाहीन मदद की बात को बाह्य, लौकिक कहने वाले धर्म को हम धर्म कभी भी नहीं कह सकते। धर्म वह नहीं है, जो संकीर्णताओं से संकुल रूढ़ियों से निर्जीव, अन्ध-विश्वासों से निश्चेतन, और बाह्य आडम्बरों से भारभूत हो गया हो। वह धर्म नहीं कहा जा सकता, वह तो धर्म पर अभिशाप है।

विश्व के सभी धर्म उसी महापट के एकमात्र तन्तु हैं जिनसे समन्वित होकर विश्व-धर्म बना है। सभी धर्म उसी वृक्ष की शाखायें हैं जिनसे विश्व-धर्म-रूपी विश्ववृक्ष का जन्म हुआ है। सभी के मूल में वह प्रेम रस, अखण्ड आनन्द, तथा अलभ्य अमृत बह रहा है जो निरन्तर हमारे ज्ञान, श्रद्धा, चरित्र की अपूर्णता को भर रहा है। जैन धर्म के नन्दी सूत्र में भगवान् महावीर ने एक स्थान पर कहा है कि यदि मनुष्य की दृष्टि शुद्ध और सम्यक् बन जाय तो सभी धर्मों और शास्त्रों की उपयोगिता प्रत्यक्ष हो सकती है। माना कि महासमन्व-वादी शब्दानुलक्षी नहीं अपितु तत्त्वानुलक्षी होता है। वह वैविध्य में से संवाद, अनेकत्व में से एकत्व तथा भेद में अभेद की प्रतीति करता है। धर्म की सच्ची निष्ठा अभय और अहिंसा है। बुद्धि और हृदय के समन्वय में संतुलन और विवेक की सुसंगति में ही निहित है। निष्ठा और कृति में तदाकारता ला देना धर्मों की अपूर्व सफलता है। ज्ञान और प्रेम, स्वतन्त्रता और समभाव, धर्म के वरदान हैं। धर्म ने ही मानव को भौतिक आसक्ति से सावधान किया है। विज्ञान शास्त्री मनुष्य को विज्ञान के पिंजरे में पशु की तरह बांधना चाहते हैं, यन्त्रवत् बना देना चाहते हैं। यह जीवन का अपमान है। धर्म मानव को स्वयं में ही अपना शस्त्र बनाकर चलाना चाहता है। अतः धर्म की मूल आत्मा एक है। वैदिकों का ऋषभदेव, जैनों का आदिनाथ और ईसा, मुहम्मद का बाबा कादिम एक ही है। हम उसी की संतान हैं। इसमें कोई भेद नहीं, भेद मनुष्य में नहीं, दृष्टि में होता है। धर्म श्रद्धालुओं, धर्म को नास्तिकता, जड़वाद और भौतिकता से पराभूत न होने दो, धर्म की रक्षा करो, धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा ! उठो आगे बढ़ो, दुर्बलों की रक्षा करो, निर्बलों पर अत्याचार मत होने दो, अज्ञान हृदयों में ज्ञान की ज्योति जला दो, समूचे विश्व को एक कर दो, समूची आत्मा में एकता का अनुभव करो, अपनी अनन्त शक्ति से विश्व-कल्याण में जुट जाओ; यही धर्म के अंतर्नाद की ध्वनि ही महासमन्वय और विश्व एकता का एकमात्र माध्यम है !

**"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग्भवेत्।"**

यह है परम पवित्र ऊंची भावना, कल्पना और आकांक्षा, जो सर्वधर्म सम्मेलन अथवा विश्व धर्म सम्मेलन के आयोजन की मूलभूत आधारशिला है। राजनीतिक नेता भी

सह-अस्तित्व अथवा पंचशील के आदर्शों से अनुप्राणित होकर इसी लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु अध्यात्मवादी नेतृत्व को उनके प्रयत्नों में एक अपूर्णता अनुभव होती है और वह उनके प्रयत्नों को पूर्ण बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। संक्षेप में दिल्ली में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन का यही लक्ष्य अथवा उद्देश्य है। भौतिकवाद से ऊपर उठकर आध्यात्मिकवाद के आधार पर मानव-हृदयों में आत्मिक एकता की अनुभूति जगाकर विश्व शांति अथवा विश्व एकता के स्वप्न को साकार बनाना सम्मेलन का मुख्य ध्येय है। विश्व धर्म परिषद् और अहिसा शोधपीठ की स्थापना करने का निश्चय इसी लक्ष्य, उद्देश्य अथवा ध्येय की पूर्ति के लिए किया गया है।"

## दिल्ली में धर्म सम्मेलन

विश्व धर्म सम्मेलन का सब से विराट् रूप दिल्ली में सन् १९५७ में प्रथम विश्व धर्म सम्मेलन के रूप में देखने को मिला। यह सम्मेलन १७, १८ नवम्बर को दिल्ली के लालकिले में हुआ, जिसका खुला अधिवेशन रामलीला मैदान में तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति स्व० डा० राजेन्द्रप्रसाद ने किया। इस सम्मेलन में प्रधानमंत्री पं० श्री जवाहरलाल नेहरू व मौलाना अबुल कलाम आजाद ने भाग लिया।

इस सम्मेलन में २७ देशों के २६० प्रतिनिधियों ने भाग लेकर इस प्रयास को सफल बनाया। इसमें पारित प्रस्तावों को लेकर तीन वर्षों के बाद पुनः द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन के आयोजन का निर्णय करते हुये मुनिश्री सुशीलकुमार जी ने उसके संयोजन का कार्यभार सम्भाला।

सम्मेलन के लक्ष्यों को व्यावहारिकता प्रदान करने के लिए १८ नवम्बर १९५७ ई० को दिल्ली के ऐतिहासिक लालकिले के अधिवेशन में सर्व सम्मति से दो प्रस्ताव पारित हुए।

## विश्व धर्म संगम

प्रथम प्रस्ताव के अनुसार धर्म के आधार पर विश्व बन्धुत्व की भावना के उद्रेक, विकास एवं प्रचार के लिये विश्व धर्म संगम नामक एक संस्था की स्थापना की गई। दूसरे प्रस्ताव के अनुसार सभी धर्मों में परस्पर धर्म के नाम पर होने वाले मतभेदों तथा अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझने की भावनाओं का त्याग करने तथा परस्पर प्रेम, सौहार्द एवं सहयोग के लिए प्रयास करने पर बल दिया गया। साथ ही विभिन्न व्यक्तियों, जातियों एवं राष्ट्रों में प्रेम और विश्व-बन्धुत्व की भावना की स्थापना एवं विकास के लिए समुचित साधनों, उपायों आदि की जानकारी के उद्देश्यों से अहिंसा, सत्य एवं प्रेम की शक्तियों एवं क्षमताओं के अनुसन्धान और युग-युग के आध्यत्मिक आंदोलनों एवं विचारों के सूक्ष्म अध्ययन के लिये एक "अहिंसा शोधपीठ" (अहिंसा रिसर्च इन्स्टीट्युट) की स्थापना की गई।

प्रथम विश्व धर्म सम्मेलन में रूस के प्रतिनिधि मण्डल के मुफ्ती जियाउद्दीन बाबाखनोव, जापान के प्रतिनिधि श्री इमाईसान, पाकिस्तान के सैयद मुहम्मद काबिल, हंगरी के रैवरेण्ड केरिज वर्की, कम्बोडिया के धर्मगुरु भिक्षु दोयफान फ्लानोनो व कोटगटच्यू प्यासला,

अमरीका के श्री रिचर्ड ग्रेग तथा होरेस अलैग्जण्डर, बहाई प्रतिनिधि श्रीमती शीरेन बोमान, इंग्लैण्ड के श्री डब्ल्यु ए० सिबली, फ्रांस के श्री बुडलैण्ड कहालर, जर्मनी के डा० फ्रैडरिक हाईज, आस्ट्रेलिया के श्री ऐरिक बुजल, स्विटजरलैण्ड की श्रीमती हिताल, डैन्मार्क के श्री औलुफ इगोरोड, हालैण्ड के श्री जे० विंकनाबोर्गे, नार्वे की श्रीमती एच० वर्ग, स्पेन की गास्थ लूथर, इजराईल के डा० ओ० रोबिन्सन, ईरान के श्री ए० ए० हिकमत, अरब के प्रोफेसर मुहम्मद अलमामून, पूर्वी अफ्रीका के श्री मोहनलाल कर्मचंद, दक्षिणी अफ्रीका की श्रीमती पिगाबेल, नैपाल के श्री आशाराम शाक्य, तिब्बत के श्री सियासन डी माम, बर्मा के श्री उलान हला, आस्ट्रेलिया की श्रीमती वर्था टौखर, दक्षिणी कोरिया के श्री प्रोफेसर हीशिमी और भारत के श्री भूपराज जैन, स्वामी हरिहरानन्द जी म०, श्री सौभाग्यमल जैन, सेठ गोविन्द दास, संसद-सदस्य, श्री काकासाहब कालेलकर, स्वामी शान्तानन्द जी, सेठ अचल-सिंह जी, संसद सदस्य, श्री जैनेन्द्रकुमार, स्वामी नरेन्द्र जी, हाफिज शेख, रफीउद्दीन खादिम, योगीराज हंसजी महाराज, श्री डी० रंगाजी, सन्त तुकड़ो जी, श्री एनायुल औग, स्वामी स्वयमेन्द्र आश्रम, श्री दोलतराम गुप्ता, महन्त रामकिशोर जी, स्वामी गंगेश्वरानन्द जी, श्री बद्रीनारायण शुक्ल, सूफी नजीर अहमद, पं० हीरालाल शास्त्री, महन्त प्रेमदास जी आदि धर्म-प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

## कलकत्ता—द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन

मुनि श्री सुशील कुमार जी ने दिल्ली से बंग प्रदेश की ओर पदयात्रा करते हुए कलकत्ता में जाकर धर्म सम्मेलन का प्रचार शुरू किया। १९ जुलाई १९५९ को कलकत्ता के प्रमुख नागरिकों एवं धार्मिक प्रतिनिधियों की एक सभा ने मुनि श्री जी के प्रेरणा से, सर्व-सम्मति से यह निश्चित किया कि जनवरी १९६० में कलकत्ता द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन किया जाय। इसके लिए एक कार्यकारिणी का गठन हुआ, जिसमें सन्त श्री कृपाल सिंह जी के अलावा दीनदुखी लालबाबा, डा० कालिदास नाग, श्री जसवन्त सिंह लोढ़ा, श्री त्रयम्बक लाल दामाजी, श्री भालचन्द शर्मा के अतिरिक्त ११ उपाध्याक्षों एवं ३० सदस्यों की समिति का निर्वाचन हुआ। लोगों ने यह अनुभव किया कि राजनीतिक समझौते से युद्ध का अन्त सम्भव नहीं है, अनुचित एवं अस्वस्थ कूटनीतियों से समृद्धि नहीं आ सकती है। अन्ध मूढ़वादिता, वर्ग-संघर्ष, जाति-विद्वेष पशु एवं अन्य जीवों के साथ निर्दय व्यवहारों से कोई लाभ नहीं हो सकता। अणुबमों, उद्जन बमों, राकेट आदि से मानव मस्तिष्क में शान्ति, आनन्द, कल्याण, प्रेम और अहिंसा के श्रोत प्रवाहित नहीं किये जा सकते। अपितु भय और आतंक का वातावरण अशान्ति ही उत्पन्न कर सकता है।

२ फरवरी १९६० को अपराह्न में वैदिक, जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई, सिख, पारसी बहाई आदि धर्मों के मंगलाचरण पाठ से सम्मेलन आरम्भ हुआ। इसके पश्चात् विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने पाठ किया। इस सम्मेलन का उद्घाटन चैतन्य मठ मायापुर के आचार्य श्री त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद् भक्ति विलास तीर्थ महाराज ने किया। इस सम्मेलन में मुनि श्री सुशील कुमार जी ने अपने प्रेरक भाषण में सभ्यता पर धर्म का प्रभाव, धर्म की वास्तविकता नया संप्रदायवाद, मानव को क्या करना चाहिए ?—इन बातों पर प्रकाश डाला। ३ फरवरी

१९६० को संसद्-सदस्य सेठ गोविन्ददास जी की अध्यक्षता में सभा हुई और अहिंसा का दिशा दर्शन करते हुए मुनि श्री सुशील कुमार जी ने अहिंसा की शिक्षा-दिशा और उसके कार्य का स्वरूप बताया। इस सम्मेलन में अहिंसा के प्रचार के लिये द्विसूत्रीय योजना बनाई गई, जिसमें 'अहिंसा शोधपीठ' की स्थापना, और 'अहिंसा विज्ञान कोष' के प्रकाशन का प्रस्ताव पास हुआ। इस सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में सन्त श्री कृपाल सिंह जी महाराज ने धर्म के स्वरूप का विवेचन किया और बताया कि—धर्म के अध्ययन में दोष कहाँ है, हमें धर्म में जीवन की खोज करनी चाहिए, और यह एक खोज का विषय है।

इस सम्मेलन की तीसरी सभा ३ फरवरी को डा० रमा चौधरी की अध्यक्षता में महिला-सम्मेलन के रूप में हुई। इस सभा में 'नारी का समाज में योगदान और उसका सेवा-भाव' को बताया गया। उन्होंने कहा कि 'नारी के योगदान से विश्व में शान्ति की सम्भावनायें अधिक हो सकती हैं और नैतिक मूल्य भी बढ़ सकते हैं।'

## शाकाहार का महत्त्व

४ फरवरी १९६० को सन्त श्री कृपालसिंह जी की अध्यक्षता में 'शाकाहार-सम्मेलन हुआ जिसमें मुनिश्री जयन्तीलाल ने शाकाहार के महत्त्व को बताया। सम्मेलन के प्रधान वक्ता श्री सिद्धराज जी ढड्ढा ने 'अहिंसा और जीवन' विषय पर अपने विचार प्रकट किये। अरविन्द आश्रम पाण्डेचेरी के प्रतिनिधि श्री केशवदेव जी पोद्दार ने भी शाकाहार का महत्त्व बताया। सन्त श्री कृपालसिंह जी म० ने आहार की सात्विकता, महिमा, संन्यासी महेन्द्र बाबा ने धर्म और आहार के विषय में बताया। इसी समय एक शाकाहार-सम्बन्धी प्रस्ताव पास हुआ—"इस सम्मेलन का दृढ़ अभिमत है कि—अहिंसक समाज व्यवस्था की स्थापना के लिये शाकाहार उसकी पूर्व स्थिति है, जिसे मानव को निश्चित रूप से पूरा करना होगा, इससे पहले कि वह शांति-प्रभात की अभिलाषा करे। इसलिये यह सम्मेलन सभी लोगों, राष्ट्रों तथा विश्व के सभी धर्मों से शाकाहार को अपने जीवन-व्यवहार में स्वीकार करने तथा मानव भोजन एवं जीवन-यापन के लिये शाकाहार को प्रोत्साहन देने के लिये अपील करने का निश्चय करता है। साथ ही भोजन, मनबहलाव या शौक और उद्योग के लिये होने वाली हिंसाओं को अधिकाधिक कम करने की अपील करता है।"

इस सभा में ईरान के श्री अबुलफजल हैंजगी, संयुक्त अरब गणराज्य के अलअजहर विश्वविद्यालय के श्री अब्दुल मोनियम एम० खताब, वर्मा के श्री चुन्नीलाल दामोदरदास भावसार, श्री सच्चिदानन्द भक्तिप्रभा, संयुक्त मन्त्री गौड़ीय वैष्णव-समाज, वियतनाम के भिक्षु थिच्च मिन्ह चाऊ, थाईलैण्ड के भिक्षु विवेकानन्द ने भाग लिया। मुनिश्री सुशीलकुमार जी महाराज ने शाकाहार के वातावरण, अनुभूति, मांसाहार के कारणों के संबंध में बताते हुये कहा कि—शाकाहार मनुष्य की सात्विकता के लिये अनिवार्य है। योगाचार्य श्रीमद् त्रिपुराचरण ने आहार और स्वभाव के बारे में बताया।

५ फरवरी १९६० को धर्म-परिसंवाद हुआ—जिसके अध्यक्ष ईरान के श्री अबुलफजल हैजगी और प्रधान अतिथि महामण्डलेश्वर स्वामी श्री सर्वानन्द जी महाराज थे। इस परिसंवाद में योगोदा आश्रम के स्वामी क्रियानन्द गिरि और मलाया के स्वामी सत्यानन्द जी ने

धार्मिक उदारता का विवेचन किया। विश्व धर्म सम्मेलन के प्रेरक मुनिश्री सुशीलकुमार जी ने बताया कि धर्म एक सर्वांग जीवन-दर्शन है।

६ फरवरी १९६० को होने वाले अहिंसा-सम्मेलन के अध्यक्ष डा० राधाविनोद पाल थे। उन्होंने शक्ति-संतुलन, नैतिक प्रश्न, विश्व-समुदाय, शस्त्रीकरण, युद्ध, वैचारिक क्रान्ति को लेकर अहिंसा और समाज के सम्बन्धों का विश्लेषण किया।

ईरान के बहाई प्रतिनिधि श्री खाबेरी ने अहिंसा और विज्ञान के सम्बन्ध में बताया। इस सम्मेलन में स्वामी आनन्द, जस्टिस श्री रमाप्रसाद मुखर्जी, आस्ट्रेलिया के श्री एडवर्ड ऐल्पप, श्रीलंका के श्री डी० एल० डी० समरसेकर ने भी अपने विचार प्रकट किये।

७ फरवरी १९६० को कलकत्ता के रणजीत स्टेडियम में विश्व धर्म सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता कलकत्ता उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री रमाप्रसाद मुखर्जी ने की। उन्होंने मनुष्य की भौतिक प्यास, विभक्त धर्म और उसका कारण बताते हुए धर्म के समन्वय मन्त्र, जीवन-निर्माण, धर्म और विज्ञान की एकता, यंत्रवाद, संस्कृति के महत्त्व और मानव-परिवार पक्षों पर प्रकाश डाला।

८ फरवरी १९६० को खुले अधिवेशन की दूसरी बैठक हुई, जिसका आरम्भ पश्चिमी बंगाल के स्वायत्त शासन-मन्त्री श्री ईश्वरदास जालान ने किया। विश्व-धर्म सम्मेलन के अध्यक्ष सन्त श्री कृपाल सिंह जी महाराज, कलकत्ता विश्वविद्यालय के डा० मोहम्मद जुबेर सिद्दकी, जापान के श्री व्योगो यूरियामा, बर्मा के श्री चुन्नी लाल भावसार, संयुक्त अरब गणराज्य के श्री अबुल मोनियम एम० खताब, मलाया के श्री लोचिन्वान ने प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया।

## दिल्ली–तृतीय विश्व-धर्म सम्मेलन

तृतीय विश्व-धर्म सम्मेलन २६, २७ और २८ फरवरी १९६५ को दिल्ली के रामलीला मैदान में हुआ। २६ फरवरी को प्रातःकाल विषय-निर्वाचन समिति की बैठक हुई। संध्या को सम्मेलन का उद्घाटन श्री मोरारजी भाई देसाई ने किया। जनरल चेयरमैन श्री साहू शान्ति प्रसाद जैन तथा चेयरमैन श्री अमीरचन्द गुप्ता ने स्वागत भाषण दिये। सम्मेलन के महामंत्री डा० बूलचन्दजी ने विश्व-धर्म सम्मेलन का विवरण और प्राप्त संदेशों का वाचन किया। इसी अवसर पर विश्व-धर्म सम्मेलन के प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज, अध्यक्ष सन्त श्री कृपाल सिंह जी महाराज, सह-अध्यक्ष बैरन वान ब्लोम्बर्ग और प्रधानमंत्री स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री ने अपने भाषण किये। सम्मेलन के मन्त्री डा० रूपलाल बत्रा ने प्रतिनिधियों का परिचय दिया।

इस सभा में सन्त तुकड़ो जी महाराज, सद्गुरु जगजीत सिंह जी महाराज, मुफ्ती अतिकुर्रहमान, स्वामी चिदानन्द जी महाराज चिदाकाशी, स्वामी श्री गणेशानन्द जी महाराज भंते कुशक बकुला, महामान्य आरमेनियन पोप प्रमुख वक्ताओं में थे। तत्कालीन गृहमन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने अध्यक्षीय भाषण दिया।

२६ फरवरी को प्रातःकाल "धर्म अभियान सम्मेलन" हुआ जिसकी अध्यक्षता सन्त श्री कृपाल सिंह जी महाराज ने की। इसके संयोजक आचार्य प्रभाकर मिश्र थे। इस सम्मेलन

के विचारणीय विषय धर्म और विज्ञान, धर्म और शिक्षा, युवक समस्याओं का धर्म द्वारा समाधान, सदाचारी जीवनचर्या थे। सायंकाल "एकता सम्मेलन" महामान्य आरमेनियन पोप की अध्यक्षता और श्री बैरन फ्रारी वान ब्लम्बर्ग के संयोजन में हुआ। इसमें धर्म क्या है और उसकी आवश्यकता क्यों है, धार्मिक संयुक्त मंच का निर्माण आदि विषयों पर विचार किया गया।

२८ फरवरी को प्रातःकाल "अहिंसा सम्मेलन" सेठ गोविन्द दास, संसद्-सदस्य की अध्यक्षता में हुआ। इसके संयोजक श्री जैनेन्द्र कुमार थे। अहिंसा सम्मेलन में अहिंसक समाज-रचना का आधार, अणु युग में धर्म संगठन की भूमिका के विषयों पर विचार हुआ। सायंकाल विश्व-धर्म सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ, जिसकी प्रमुख वक्ता तत्कालीन भारत की स्वास्थ्य मन्त्री डा० सुशीला नैयर थीं।

इस सम्मेलन में मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने भाषण में कहा कि "भारत विश्व-बंधुत्व की भूमि है और यह देश धर्म-समन्वय का है। इस देश में उदारवाद की भावना मिलती है और साम्प्रदायिक संकीर्णता को दूर करने का प्रयत्न किया जाता रहा है। जैन धर्म में धर्मसहिष्णुता की भावना बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह युग धर्म और विज्ञान का है जिसमें विज्ञान के प्रभाव से लोग धर्म के प्रति आस्था नहीं रखते।" मुनि जी ने धर्म सम्मेलन के सप्तसूत्री उद्देश्य के बारे में बताया :

(१) धर्म सम्मेलन सारे संसार को धर्म के प्रेम बन्धन में बाँधना चाहता है।
(२) धर्म सम्मेलन धर्मों का एक विश्वविद्यालय बनाना चाहता है।
(३) धर्म सम्मेलन धर्मों का एक विश्व-कोष सम्पादित करना चाहता है।
(४) धर्म सम्मेलन सारी मानव-जाति में धर्म के प्रति एक सार्वभौम दृष्टिकोण पैदा करने के लिए धर्म-संहिता (चार्टर) बनाना चाहता है।
(५) धर्म सम्मेलन समूचे विश्व के शैक्षणिक पाठ्यक्रम में धर्म-शिक्षा को अनिवार्य करना चाहता है।
(६) धर्म सम्मेलन सारे मानव-जीवन को और सारे विश्व को धर्म के अमृत से ओत-प्रोत कर देना चाहता है।
(७) धर्म सम्मेलन विश्व के संघर्षों को अहिंसा के द्वारा शान्ति और मानव जाति की पुनर्रचना में परिवर्तित कर देना चाहता है। अहिंसा शोधपीठ और उनकी अनेक प्रवृतियों को विश्व शांति के लिए सम्पूर्ण रूप से सहयोगी देखना चाहता है।

इस सम्मेलन में अमेरिका, जापान, युगोस्लाविया, स्काटलैण्ड, फिनलैण्ड, हालैण्ड, पोलैण्ड, इटली, फांस, जर्मनी के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

## दिल्ली—चतुर्थ विश्व धर्म सम्मेलन

चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन नई दिल्ली के रामलीला, मैदान में दिनांक ४ से ८ फरवरी, १९७० तक आयोजित वुआ।

सम्मेलन का उद्घाटन प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु परमादरणीय फूजी गुरुजी द्वारा किया

गया, अध्यक्षता भारत के तत्कालीन उपप्रधानमंत्री श्री मोराराजी देसाई ने की। अनेक प्रख्यात व्यक्तियों ने विश्व धर्म सम्मेलन के कार्यक्रम और महत्त्व पर प्रकाश डाला। विषय समिति की बैठकें चार अलग-अलग भागों में हुईं। विषय निम्न प्रकार थे :—

१. मनुष्य के सर्वांगीण विकास में धर्म का स्थान।

२. अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक एकता और धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए संस्था की स्थापना।

३. धर्मों की अंतर्राष्ट्रीय व्याख्या।

४. वर्तमान युग में धर्मों की उपादेयता।

उपर्युक्त चारों समितियों के अध्यक्ष क्रमशः प्रो० राममूर्ति (न्यूयार्क), आचार्य काकासाहब कालेलकर, श्री बैरन फ्रेरी वान ब्लम्बर्ग (यू० एस० ए०) तथा उपाध्याय श्री अमर चन्द्र जी महाराज थे।

निम्नलिखित विशिष्ट व्यक्ति भी सम्मेलन में उपस्थित थे :—

१. कर्नल पिन मुथूरव्दान्त, बैड्कोव्द (थाइलैंण्ड) २. श्री अब्दीश अफकानिशी, टोक्यो (जापान) ३. स्वामी दयानन्द वैदाचार्य, बड़ौदा (गुजरात) ४. श्री सौकाक्र सिसुन थोन लाओस ५. श्री मैथीवान डायव्येन, हालैंड ६. श्री वैंचंग प्रिरीराध, संस्कृति मंत्रालय; शिक्षा विभाग ७. श्री ए० हाव्यामिशी, (जापान) ८. श्री सौकान्व सिसु थौम, (लाऔस) ९. श्री काबल सिट को, डाप्न पेनमा (यू० एस० ए०) १०. मेजर जनरल मोहम्मदमजहरी, (ईरान) ११. श्री कात्य लैन बैस्ली, एथैन्स, (ग्रीस) १२. श्री लौथार डैण्डल पिलम (इण्डिया) १३. वीर डा० मो० डब्ल्यु पिंक नौलेटहर स्टार (प० जर्मनी)

प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने भाषण में विश्व धर्म सम्मेलन के कार्य और लक्ष प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ने के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। उन्होंने धर्म की सच्चे अर्थों में व्याख्या करते हुए आज के समय में धर्म की आवश्यकता पर बल दिया।

## मुनि जी का भाषण

प्रिय आत्माओ,

विश्व धर्म सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन पर मैं आगंतुक महानुभावों, धर्माचार्यों, धर्म-प्रतिनिधियों का हार्दिक अभिनंदन करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। अनेक प्रकार की मार्ग-बाधाओं को पार कर आप इस धार्मिक विश्व-परिवार के सदस्य के रूप में उपस्थित हुए, इसके लिए मैं आप सबका बहुत आभारी हूँ।

विगत १५ वर्षों से विश्व धर्म सम्मेलन, भाईचारे और सहअस्तित्व तथा सह-जीवन की स्थापना के लिए एक ऐसे मंच के निर्माण में प्रयत्न करता आया है, जहां विश्व के सभी धर्मों के लोग जाति, धर्म और संकीर्णता की परिधि से निकल कर एक ऐसी आचार-संहिता का निर्माण करें—जिस की सार्वभौमिकता, विश्व जीवन और व्यापक आस्था का आधार हो। वर्तमान युग की यह सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या है—और यह धर्म सम्मेलन उसी के समाधान में एक विनम्र प्रयास है।

मेरी इच्छा है कि अमानुषिक कृत्यों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करूं। दिन-

प्रतिदिन तीव्रतम गति से बढ़ती हुई युयुत्सा एवं घोर हिंसा की वृत्तियों से मानव आतंकित होता जा रहा है। उसका भविष्य इतना अनिश्चित एवं अव्यवस्थित हो गया है कि वह अपने अस्तित्व को चिता और सन्देह की दृष्टि से देखने लगा है। नैतिक शोषण एवं घृणा ने पारस्परिक प्रेम एवं सौहार्द को जुगुप्सामय बना दिया है। विश्व के सभी दार्शनिक, समाज-सेवी, इतिहासकार और साहित्यकार इस बात से पूर्णतः सहमत हैं कि हिंसा, भूख, गरीबी और बेकारी के मारे हुए लोग अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हैं। अज्ञान, अभाव और अत्याचार की समस्याओं ने न केवल हमारी आध्यात्मिकता छीन ली है वरन् हमें सीमा, मत, रंग और युद्ध जैसे विवादों में उलझा दिया है।

हम गांधी-शताब्दी-वर्ष में इस सम्मेलन का आयोजन कर रहे हैं— इसलिए ज्वलंत समस्याओं की ओर अनायास ही हमारा ध्यान चला जाता है। यह निर्विवाद है कि विश्व-शान्ति एवं विश्वधर्म बीसवीं शताब्दी को गांधीजी की एक अद्भुत देन है। उनका सन्देश हमें उस ओर प्रेरित करता है जहां करुणा, क्षमा एवं सेवा की महती आवश्यकता है। दरिद्र नारायण की सेवा गांधी जी के जीवन का महान् संदेश था। सत्य और अहिंसा उनके दिव्य जीवन के पर्याय थे। आज मानव उन सिद्धान्तों को भूलकर समुदाय, भाषा, प्रांत और अधिकार के लिए जो वीभत्स दृश्य उपस्थित कर रहा है—उन्हें देखकर हम पुनः धर्म की शरण में जाने के लिए विवश हो जाते हैं। एक ओर सर्वनाश का दृश्य उपस्थित करने वाले परमाणु अस्त्रों का अंबार है और दूसरी ओर एक ऐसी मासूम पीढ़ी है, जिस का भविष्य खतरे में है। क्या यह धर्महीनता एवं भोगवाद का घृणित दृश्य नहीं है ?

ऐसी परिस्थिति में धर्माचार्यों, धर्मानुयायियों, राजनीतिकों एवं राष्ट्रनायकों का विशेष उत्तरदायित्व हो जाता है कि वे मानव के हृदय-परिवर्तन को अपना लक्ष्य बनाएं, तभी विश्व में अमन एवं चैन का विस्तार संभव हो सकता है। धर्म और केवल धर्म ही वर्तमान और भविष्य में स्वर्णिम प्रभात का अंशुमाली बन सकता है। विश्व की समस्त शक्तियों का ध्रुवीकरण यदि एक बिंदु पर हो सकता तो सच्ची मानवता की प्राणप्रतिष्ठा में हम पूर्णतया सफल हो सकेंगे और मनुष्य की सर्वविध स्वतन्त्रता का स्वप्न साकार होकर हमारे तन-मन को अधिक समृद्ध एवं शाश्वत बना सकता है।

विज्ञान बड़ी तेजी से उन्नति कर रहा है। विज्ञान की सहायता से पृथ्वी के विभिन्न रहस्यों का उद्घाटन करने के पश्चात् मनुष्य के चरण चंद्रमा तक पहुँच गए किन्तु विचारना यह है कि क्या उसने पृथ्वी की मानवता को सुखी एवं समृद्ध बना लिया ? कहीं हमारी आंखें नक्षत्रों के प्रकाश की चकाचौंध में न खो जाएं। संभव है, हम नक्षत्रों की दूरी नाप लें किंतु अपने सहजीवन से रागात्मक सह-सम्बन्ध स्थापित किए बिना अनंत रश्मि के अमृतपान से वंचित रह जायेंगे। पारस्परिक संवेदनशीलता के अभाव में हमारा प्रत्येक उपार्जन एवं उत्पादन हमारे लिए अभिशाप बन जाएगा और प्रकृति की लीलास्थली इस धरती को छोड़-कर शून्य में भटक जाएगी।

लगभग तीन हजार वर्षों के विश्व-इतिहास के विभिन्न आयामों में हमने यही पाया है कि धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण एवं आचार ही सामाजिक संतुलन स्थापित करने में समक्ष रहे हैं। जहां तक समस्याओं के नैतिक पहलू का सवाल है, वह धर्म से पूर्णतया प्रभा-

वित है, क्योंकि समाज की सार्वभौमिकता, प्राणी-वर्ग का तादात्म्य एवं राष्ट्रीय, पारिवारिक एवं विश्वजनीन अखंडता का वही प्राणस्रोत रही है। किसी भी जाति, समाज या राष्ट्र की उन्नति का वृक्ष धर्म के अमृत से ही पुष्पित एवं पल्लवित होता है। देश, काल और भाव के अनुसार विभिन्न धर्मों ने विभिन्न भौगोलिक परिवेशों में अपना नामकरण कर लिया, जबकि मनुष्य भौतिक साधनों की विषमता का दास मात्र था, किन्तु आज उसकी भौतिक परिस्थितियों में अद्‌भुत परिवर्तन हुए हैं और वह इस आशय पर आ पहुँचा है कि वह अपनी एकता की घोषणा कर सके।

आज की भयावह परिस्थिति विश्व में अभय एवं अहिंसा की स्थापना में अपना योगदान करना विश्वधर्म सम्मेलन की तीव्र आकांक्षा है जिसे उपलब्धि का रूप देना हमारा ध्येय है। विश्व धर्म सम्मेलन का प्रेरणामय इतिहास व्यवस्थित रूप में सन् १९५४ से प्रारंभ होता है—तभी से उसके मूर्तरूप का सृजन प्रारंभ हुआ और सन् १९५७ में एक विशेष विधा के रूप में इसे प्रस्तुत किया गया। दिल्ली के लालकिले एवं रामलीला मैदान में आयोजित इस समारोह में २७ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और सर्वसम्मति से इसकी विधिवत् स्थापना हो गई। सन् १९६० में इसका दूसरा अधिवेशन हुआ जिसके फलस्वरूप विदेशों में इसकी शाखाएं खोली गईं। इस महत्कार्य में विश्व के प्रबुद्ध नागरिकों, साहित्यकारों, धर्म-गुरुओं एवं समाजसेवियों ने अपना अपूर्व योगदान दिया। प्रतिनिधियों तथा धर्माचार्यों के सहयोग से विश्वधर्म सम्मेलन अपना विश्वव्यापी स्वरूप एवं कार्यपद्धति प्रस्तुत कर सका।

पृष्ठभूमि में धर्मज्योति सन्त कृपालसिंह जी महाराज के अमूल्य सहयोग के हम सदा ऋणी रहेंगे जिन्होंने सन् १९५७ से लेकर अब तक अपनी प्रगाढ़ निष्ठा एवं लगन से विश्व-भ्रमण कर मानवता का संदेश जन-जन तक पहुँचाया। धर्म सम्मेलन उनको अपने अध्यक्ष के रूप में पाकर सदा गौरव का अनुभव करता रहा है। मैं अपने सह-अध्यक्ष बैरन ब्लम्बर्ग के अमूल्य सहयोग को भी भुला नहीं सकता हूं।

वर्तमान में हमारे समक्ष चतुर्थ सम्मेलन का स्वरूप है। हमारी आकांक्षा है कि धर्म के आधार पर विश्व-परिवार बनाने में सैंकड़ों हजारों धर्माचार्य एवं कोटि-कोटि धर्मप्रिय जनता, विश्वास, मैत्री एवं सहअस्तित्व के लिये एकजुट होकर प्रयत्न करें। धर्म को उसकी परंपरागत रूढ़िवादिता एवं पार्थक्य की सीमा से बाहर खींचकर उसे सृजनशील केन्द्रबिन्दु पर लाना है जहाँ मूलभूत एकता का कल्याणकारी स्वरूप प्रस्तुत किया जा सके। धार्मिक एकता की सहायता से राष्ट्रों की सुरक्षा की गारन्टी हम न दे सके और मानव-जीवन में सामंजस्य स्थापित न किया गया तो विश्व के सामने एक बहुत बड़ी कठिनाई आने वाली है। सामाजिक और बौद्धिक-स्तर से मनुष्य कितना भी ऊंचा क्यों न उठ जाय, यदि वह आध्यात्मिक एकता से वंचित रह जाय तो युद्ध के भयंकर परिणाम ही हमारे सामने आयेंगे। अहिंसा, सत्य और प्रेम धर्म के शाश्वत मूल्य हैं और उन्हीं के द्वारा विश्व में शांति स्थापित हो सकती है।

हमें इस सम्मेलन की फलश्रुति के रूप में निम्नांकित तथ्यों पर विचार करना है:—

(१) धर्म-विश्वविद्यालय की स्थापना—धर्म विज्ञान युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है जिसकी पूर्ति के लिये एक ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना की जरूरत है जहाँ जाति, धर्म

और वर्ग के पारस्परिक मतभेद से रहित सब धर्मों के समन्वयात्मक अध्ययन के लिये कला, दर्शन, संस्कृति एवं इतिहास, राजनीति-शास्त्र, समाजशास्त्र, नृतत्व-शास्त्र को समृद्ध किया जायेगा।

(२) धर्म-विश्वकोष का निर्माण—इस विश्व कोष के अन्तर्गत मानव-संस्कृति, सभ्यता और धर्म का सांगोपांग अध्ययन, चिंतन प्रस्तुत किया जायेगा।

(३) विश्व के समस्त धर्माचार्यों एवं विचारकों के सुझाव से एक ऐसी आचार-संहिता का निर्माण जिसकी सार्वभौमिकता विश्व मानवता की प्रत्येक इकाई के लिये समाचरणीय एवं मान्य हो। मनुष्य से मनुष्य की दूरी किस प्रकार कम की जाय, इसके लिये एक संपर्क स्थल का चयन किया जाय।

(४) संयुक्त राष्ट्रसंघ इस दिशा में प्रयत्नशील है किंतु स्वस्थ आध्यात्मिकता के अभाव में वह सफल नहीं हो सका है। अतः आवश्यक है कि राष्ट्रों एवं धर्मों के पारस्परिक मेल-जोल से एकता और सद्भाव की स्थापना की जाय।

मैं चाहता हूं कि धर्मप्रतिनिधि विश्व में सुख, समृद्धि एवं सौहार्द की स्थापना के लिए मनुष्य के हृदय में परिवर्तन लाने में अपना महवत्त्पूर्ण योग दें। विश्व वात्सल्य एवं करुणा की अजस्र धारा से मानवता के कलुष एवं अशिव को धोकर सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् का विस्तार जनमानस एवं जनजीवन में किया जाय तभी संसार के महान् पुरुषों भगवान् महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, जरथुस्त, नानक, कन्फ्यूशियस आदि के उपदेशों को मूर्तरूप प्रदान करने में हम सफल हो सकेंगे। और ऋषियों के इस महान संदेश "मिलकर चलें, मिलकर वोलें, मिलकर काम करें और सदा मिलकर रहने की प्रतिज्ञा करें"—पर आचरण कर 'वसुधैव कुटुम्वकम्" के आदर्श को चरितार्थ कर सकेंगे।

# प्राणिरक्षा और अभयदान

मुनि जी ने संसार के सभी प्राणियों की रक्षा के लिए भिन्न-भिन्न अवसरों पर अभियान चलाये हैं। मुनि जी का विश्वास है कि संसार का कोई भी प्राणी हो, उसकी उपयोगिता हम समझे या न समझें किन्तु कोई भी इस भूतल पर जीव अनुपयोगी नहीं है। चाहे जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपुर हो या चाहे भुजपुर हो। जमीन पर रेंगकर चलने वाले या आकाश में उड़ने वाले सभी जीव आत्मा के नाते समान हैं, उपयोगी हैं और सृष्टि के संचालन में उन सब का योगदान है।

''परस्परोपग्रहो जीवानाम्-' का सिद्धान्त समूचे विश्व के कल्याण का आश्वासन है। अगर जगत् के सभी जीवों के प्रति शोषण या भक्षण की भावना हटा कर मानव उपकारीः बुद्धि या कृतज्ञता की भावना का प्रवाह बहने दें तो वसुधा को कुटुम्ब बनने में क्या देर लगे।

आप जो निःश्वास छोड़ते हैं वह आप के लिए जहर है, कार्बन है, पेड़, पौंधों, पत्तों एवं घास के लिए जीवन है, भोजन है, सहारा है और पोषण-तत्त्व है। और पेड़-पौधे जो आक्सीजन छोड़ते हैं जो उनके लिए अनुपयोगी है वह आप के लिए प्राणाधार है।

जिन मक्खी-मच्छरों को आप अनुपयोगी मानते हैं वह ही नर-मादा वृक्षों में एक दूसरे के पराग पहुंचाकर फल आने के लिए रास्ता साफ करते हैं। अगर मादा वृक्षों का सम्बन्ध नर वृक्षों से किसी तरह संभव ही न हो तो फल का उत्पादन सर्वथा बंद हो जाये।

सर्प, बिच्छू, नील गाय, रीछ, सिंह आदि जितने बनैले जीव हैं इन सब का उपयोग है। संभव है कि हम उसे पूरी तरह आँक न सकें किन्तु एक दिन ऐसा आयेगा कि आप उन सबके योगदान का मूल्यांकन कर सकोगे।

जंगली जीवों का शिकार बंद करने, पशु-वध बन्द कराने, कुक्कर, बकरे, गाय, भैंस आदि सभी जीवों की रक्षा के लिए मुनि जी प्रयास करते रहे हैं।

मध्यप्रदेश, बम्बई और महाराष्ट्र में मछली बचाने, कुत्तों की रक्षा करने, दिल्ली

में कसाईखाने कतिपय दिनों के लिए बंद कराने और गोरक्षा के लिए राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चलाते रहे हैं।

गुड़गाँवा में चोगान माता पर सुअर-बध की क्रूर प्रथा है। गुड़गावाँ के लोगों की बड़ी इच्छा थी कि मुनि जी चाहें तो गुड़गाँव के माथे पर लगा यह सुअर-बलि का कलंक मिट सकता है। और फिर मुनि जी की यह जन्म-भूमि है; उन्हें यहाँ आकर अवश्य प्रयास करना चाहिए।

गुड़गाँव के सभी लोगों ने बड़ा आग्रह किया, मुनि जी ने मान लिया और सुअर बलि-विरोध में अभियान चालू कर दिया।

मुनि जी का अभियान निराला होता है। वह कभी भी धर्म स्थानों में बैठकर कोरा हिंसा-विरोध नहीं करते, अपितु जहाँ हिंसा हो रही हो वहीं से हिंसा-विरोधी कार्य संचालित करते हैं। सुअर बलि-विरोधी आन्दोलन का सूत्रपात भी चोगान माता के प्रांगण में बैठकर ही किया। रातभर वहाँ ठहरे, चारों ओर सुअर-बधिकों का आवास और बीच में मुनि जी महाराज। रातभर बैठक, पंचायत चलती रही, सारा शहर मुनि जी की तरफ, बलि समर्थक हरिजन एक तरफ। रातों-रात हरिजनों के समर्थन में सैकड़ों हरिजन नेतागण एकत्रित हो गये। एक बहुत बड़ा हंगामा मच गया।

चारों ओर चर्चा, तर्कों-वितर्कों की बौछारें। क्यों जी जैन मुनि अपना धर्म नहीं छोड़ सकते तो हमारे धर्म में ये हस्तक्षेप करने वाले कौन ?

दूसरा तेज स्वर करते हुए कहने लगा कि सुअरों को नहीं मारा गया तो क्या इनकी फौज बनाई जायेगी ?

तीसरा कहने लगा कि चैत्र और बैसाख में दो महीने रविवार से मंगलवार तक यह मेला लगता है, ३०-३५ हजार सुअरों के बच्चों की बलि दी जाती है, अगर ऐसा नहीं हुआ तो ये सुअर सारे देश के अन्न को खा जायेंगे।

अच्छा जी, अगर हम बलि बन्द कर दें तो हमारी देवी-पूजा का क्या होगा। 'जीव के बदले जीव बच्चों की रक्षा के लिए' ही सुअरों की बलि दी जाती है। एक जीव की बलि देवी के लिए कर देने से हमारे जीव की रक्षा हो जाती है। यह तो हमारा सिद्धान्त है और अगर बलि बन्द हो गई तो हमारे बच्चों की जान कौन बचायेगा।

ऐसी कितने कुतर्क उठे, आरोप लगे, मारने की धमकियाँ दीं। दिल्ली के २०-२२ सज्जन रात भर मुनि जी के साथ इन हरिजन-समूहों को समझाते रहे किन्तु वे हरिजन भाई टस से मस न हुये। अंत में आध्यात्मिक बल के सहारे ही विजय प्राप्त हुई।

मुनि जी ने सब हरिजन बन्धुओं को ललकारते हुए कहा कि जोर से हिंसा बन्द करने में हमारा विश्वास नहीं है और आप लोग मान नहीं रहे हो किन्तु भरोसा रखो, सारी रात जो बीत गई है, दिन के बारह बजे तक आप सब लोग अवश्य मान जाओगे।

मुनि जी यह कहकर शहर के जैन स्थानक में चले आये और वे हरिजन बन्धु मुनि जी पर फौजदारी मुकदमा चालू करने के लिए कोर्ट जा पहुँचे।

चाहते तो थे मुनि जी पर रात को दिल्ली के गुण्डों से पिटवाने का केस करना किन्तु जिलाधीश ने उन्हें बुलाकर समझाया कि मुनि जी हमारे देश की महान् विभूति हैं,

राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद का मुनि जी की प्रशंसा एवं बलि-विरोध में लिखा हुआ उन्हें दिखाया गया। हरिजनों का मन बदल गया। सीधे मुनि जी के पास आकर चरणों में गिर गये, सरकारी कागज पर सभी हरिजनों ने लिख कर दे दिया कि हम आज से सुअर बलि बन्द करते हैं। बलि बन्द हो गई। किन्तु चोरी से अब भी होती है, व्यापक रूप से बलि अवरुद्ध हो गई, किन्तु, गुप्तरूप से अब भी होती है। बलि-प्रथा हटाने के लिए अभी और बलिदान करना होगा तभी इस कुप्रथा का अंत होगा।

# गोरक्षा आन्दोलन

गो-वंश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगवाने के लिए साधु-संतों ने जिस गोरक्षा आन्दोलन का सूत्रपात किया था, उसकी चरम परिणति ७ नवम्बर, १९६६ को संसद् भवन पर १० लाख नर-नारियों के विराट् प्रदर्शन के साथ हुई। इसमें सम्मिलित शान्तिप्रिय गोभक्त, निर्दोष महिलाओं व अबोध बालकों को लाठी-चार्ज, आंसू गैस एवं धुआंधार गोला-बारी का निशाना बनाया गया। इन नृशंस हथकण्डों से सरकार ने इस आन्दोलन को कुचल देने का प्रयास किया।

जैन मुनि श्री सुशील कुमार आरम्भ से ही इस गोरक्षा यज्ञ के सूत्रधार थे, सर्वोच्च समिति के सदस्य, उक्त ऐतिहासिक प्रदर्शन के संयोजक एवं सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने समय-समय पर दिशा-निर्देश करते हुए गोरक्षा आन्दोलन को अपना समर्थ नेतृत्व प्रदान किया। उनकी कृतियों, वक्तव्यों और उद्गारों के आधार पर ही इस अंश में गोरक्षा आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि, घटनाक्रम एवं निष्कर्ष पर प्रकाश डाला गया है।

स्वामी दयानन्द, अवधूत सियारामदास और राजस्थान के निर्भीक सन्त स्वामी शंकरानन्द विरक्त, गोरक्षा आन्दोलन के इन प्रणेताओं की त्रिमूर्ति रामनवमी के दिन रामलीला मैदान में प्रकट हुई तथा आन्दोलन को बल प्रदान करने के लिए धरना देने का संकल्प किया।

मुनि श्री सुशील कुमार इस आन्दोलन के उद्घाटनकर्ता के रूप में आए थे, उन्होंने कहा कि मैं गोरक्षा को संस्कृति की रक्षा तथा राष्ट्रीयता का रूप मानता हूँ। गो बचेगी तो देश बचेगा। किन्तु आन्दोलन को सही दिशा में निर्देशित करने के लिए हमें सतत् सतर्क एवं जागरूक रहना होगा तथा विवेकपूर्वक इसका मार्ग निर्धारित करना होगा।

३० मार्च १९६६ रामनवमी के दिन यह संकल्प व्यक्त करके मुनि जी रामलीला

मैदान से चले गए। नई दिल्ली के जैन भवन में उन्होंने दिल्ली की समस्त धार्मिक संस्थाओं एवं जातीय संगठनों को आमंत्रित किया। हिन्दू महासभा के नेता प्रो० रामसिंह, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सर संचालक श्री गोलवलकर, नामधारी सन्तों के सद्गुरु जगजीत सिंह जी महाराज, गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अध्यक्ष व महामंत्री, गुरुनानक मिशन के संस्थापक तथा बौद्ध एवं जैन प्रतिनिधियों के अतिरिक्त श्री गोस्वामी गिरधारीलाल, अन्य सन्यासी मंडल २ अप्रैल १९६६ को हुई सभा में उपस्थित हुए। यद्यपि सभी महानुभाव गोवंश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगवाने की सब एक स्वर में मांग कर रहे थे, किन्तु कुछ कर गुजरने की हिम्मत नहीं थी। मुनि जी ने इस ध्येय की प्राप्ति के लिए देश के विभिन्न भागों में दृढ़ता से एकता के निर्माण का उद्घोष किया। उन्होंने कहा कि यदि सब खास वर्गों के नेता अपना सहयोग प्रदान करें तो गोहत्या का कलंक मिटना कठिन नहीं है।

तदनन्तर इसी उद्देश्य को लेकर उक्त संगठनों की ३ और बैठकें हुईं।

८ अप्रैल को पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज स्वयं पधारे और कहा कि गोरक्षार्थ प्राणों की आहुति देने का अवसर अब आ गया है। उन्होंने कहा कि चाहे सैंकड़ों साधु-संन्यासी धरना दे दें, पर जब तक जैनियों में मुनि सुशील कुमार जी महाराज, शंकराचार्यों में मैं, श्री गोलवलकर जी और प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी आदि आमरण अनशन को प्रस्तुत नहीं होंगे तब तक गोहत्या बन्द नहीं हो सकती। मुनि जी ने कहा कि आमरण अनशन अन्तिम हथियार है। यदि सुप्त जाति किसी भी प्रकार न जागी तो इस मार्ग के अवलम्बन की आवश्यकता होगी। अभी निर्णायक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इसके पूर्व सम्पूर्ण जन-मानस को आन्दोलित करना होगा। समूचे राष्ट्र की आत्मा गोहत्या बन्दी के लिए जब तक पुकार नहीं उठेगी तब तक गोहत्या से प्राप्त लाभ का लोभ ध्वस्त नहीं होगा और सांस्कृतिक संरक्षण के संस्कार को न जगाया जा सकेगा।

वर्ष १९६६ को महावीर जयन्ति के अवसर पर मुनि श्री ने समस्त जैन समाज को गोरक्षणार्थ प्राण-प्रण से जुट जाने का संकल्प कराया और देश के कोने-२ से यह उत्साहपूर्वक समाचार मिला कि जैन समाज मुनि जी के नेतृत्व में तन-मन-धन से धर्म-युद्ध में भाग लेगा।

अगस्त मास के प्रथम सप्ताह में सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति की स्थापना हुई। तदन्तर ७ सदस्यीय सर्वोच्च समिति का गठन हुआ। जिसमें मुनि श्री सुशील कुमार, श्री गोलवलकर, श्री करपात्री जी महाराज, श्री पुरी पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य जी, श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी, श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार और स्वामी गुरुचरण दास थे। २१ अगस्त को दिल्ली के बारह टूटी चौक पर मुनि श्री के सान्निध्य में २५ हजार नर-नारियों की विराट् सार्वजनिक सभा में समिति के नेताओं ने घोषणा की और कहा कि बैल और बछड़े सहित सम्पूर्ण गोवंश की हत्या को जब तक अवैध घोषित नहीं कर दिया जाता तब तक कोई भी राष्ट्रीय निष्ठ भारतीय चैन से नहीं बैठेगा। गोहत्या बन्दी की आवाज जनता की आवाज है और इस देश में गाय की हत्या प्रजातन्त्र के हनन के समान होगी।

इन्हीं दिनों तत्कालीन खाद्य मंत्री श्री सुब्रह्मण्यम् ने इस सम्बन्ध में सरकारी नीति की घोषणा कर दी जिसमें राज्यों को विषय बताकर मामले को टाल दिया गया। १ सितम्बर को भारत गोसेवक समाज के कार्यालय में हुई बैठक में सरकारी नीति पर तीव्र

असंतोष व्यक्त किया गया। मुनि जी ने शांतिपूर्वक किन्तु सुदृढ़ रूप अपनाने पर जोर दिया।

५ सितम्बर प्रातःकाल मुनि श्री सुशील कुमार के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल ने प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी से मिलकर निम्नलिखित तीन माँगें प्रस्तुत कीं :—

(१) गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित किया जाय।

(२) नवम्बर मास से पूर्व कानून बनाकर गोवंश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया जाय तथा

(३) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक उच्चस्तरीय समिति गठित की जाय, जो केन्द्र एवं राज्यों को निर्देशन करे। उस दिन सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से आयोजित प्रदर्शन के बाद इसी आशय का एक ज्ञापन तत्कालीन गृहमंत्री श्री नंदा जी को भी प्रस्तुत किया गया।

२५ अक्तूबर को एक सम्वाददाता गोष्ठी में मुनि जी ने घोषणा की कि यह आन्दोलन सर्वथा असाम्प्रदायिक एवं गैर-राजनीतिक है जिसने राष्ट्र में सांस्कृतिक एकता की लहर उत्पन्न कर दी है। उन्होंने कहा कि गोवंश की रक्षा में वर्तमान खाद्य संकट से भक्ति के अतिरिक्त देश की आर्थिक सांस्कृतिक प्रगति का राज भी निहित है।

अन्त में ७ नवम्बर, १९६६ का वह दिन भी आया जब अहिंसा में अटूट विश्वास रखने वाले मुनि श्री सुशील कुमार के संयोजकत्व में संसद् भवन के बाहर १० लाख गो-भक्तों का ऐतिहासिक प्रदर्शन हुआ तो राजधानी में अब तक का विराटतम प्रदर्शन माना गया। विभिन्न धर्मावलम्बियों ने विशाल संख्या में सम्मिलित होकर अपूर्व एकता का परिचय दिया। मंच पर नेताओं के भाषण हो रहे थे कि कुछ निहित स्वार्थ वाले राजनीतिक तत्त्वों ने स्थिति का अनुचित लाभ उठाना चाहा। मुनि जी ने जनता से शान्त एवं अहिंसक बने रहने की अपील की, जो पूर्णतः कारगर हुई। गोभक्त समुदाय सर्वथा शान्त था कि पुलिस ने अश्रुगैस छोड़ दी और तदन्तर लाठीचार्ज एवं धुआंधार गोलीवर्षा शुरू कर दी। सरकारी घोषणा के अनुसार ७ व्यक्ति मारे गये तथा १४१ घायल हुए। वस्तुतः हताहतों की संख्या इससे बहुत अधिक थी।

यह दमनचक्र जारी रहा और निर्दोष गोभक्तों की भारी धर-पकड़ हुई। दूसरे ही दिन करपात्री जी ५०० गोभक्तों सहित सत्याग्रह करते हुए पकड़ लिए गए।

गोभक्त प्रदर्शनकारियों का ज्ञापन मुनि जी ने १७ नवम्बर को प्रधान मंत्री के संसद् भवन स्थित कार्यालय में भेंट कर उन्हें प्रस्तुत किया। ७ नवम्बर को हुई जनहानि से संतप्त होकर आत्मशुद्धि के हेतु उन्होंने तीन दिन का उपवास किया।

पूरी के जगद्गुरु शंकराचार्य जी ने २० नवम्बर को सम्पूर्ण गोहत्या बन्दी के लिए आमरण अनशन शुरू कर दिया। वे बन्दी बना लिए गए। मुनि जी ने सरकार से वार्ता का निमन्त्रण यह कहकर ठुकरा दिया कि जब तक आन्दोलन के सभी नेता रिहा नहीं कर दिए जाते तब तक सरकार से कोई बात नहीं हो सकती।

२५ नवम्बर को सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति के अध्यक्ष के रूप में पत्रकार परिषद् को सम्बोधित करते हुए मुनि जी ने कहा 'यदि सरकार श्री शंकराचार्य जी जैसे धार्मिक नेताओं को जेल में ठूसकर दमन द्वारा आन्दोलन को समाप्त करने पर तुल गई है

तथा बातचीत के द्वारा समस्या के हल के लिए तैयार नहीं, तो बाध्य होकर हमें धार्मिक अनशन का उपक्रम स्वीकार करना पड़ेगा। हम २ दिसम्बर तक प्रतीक्षा करेंगे अगर तब तक संतोषजनक उत्तर न मिला तो मेरा धार्मिक अनशन शुरू हो जायेगा।'

३० नवम्बर को प्रधानमंत्री का एक विस्तृत पत्र मुनि जी को प्राप्त हुआ, जिसमें कहा गया कि भारत सरकार पूर्ण गोहत्या बन्दी की मांग पर वार्ता के लिए तैयार है। आप अपने साथियों सहित बातचीत के लिए आएँ तो प्रसन्नता होगी। प्रधानमंत्री ने मुनिजी से अनशन का निश्चय त्यागने की अपील की।

१ दिसम्बर को रात्रि के ११ बजे मुनिजी ने अपना उत्तर पहुँचा दिया कि आपसे वार्ता के आमन्त्रण का स्वागत करता हूँ। पर अनशन तभी रुक सकता है जब कि आप सर्वोच्च समिति के दो वन्दी नेताओं श्री करपात्री जी तथा श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी की रिहाई का आदेश न दे दें। पर देश के अनेक गणमान्य नेताओं ने व्रत रोकने के लिए मुनिजी पर दवाव डाला। मुनिजी ने उत्तर दिया कि कुन्जी सरकार के हाथ में है। गोभक्त नेताओं की रिहाई पर ही अनशन समाप्त होगा अन्यथा नहीं।

२ दिसम्बर को मुनिजी स्वयं अनशन पर बैठ गए। गोभक्त नेताओं की रिहाई के साथ ७ दिसम्बर को अपना अनशन स्वामी करपात्री जी महाराज के अनुरोध पर तोड़ा।

२५ दिसम्बर को गृहमंत्री श्री चव्हाण की उपस्थिति में प्रधानमंत्रीजी के निवास पर हुई बैठक में मुनिजी ने कहा कि गोरक्षा की मांग को दमन एवं धमकियों से नहीं कुचला जा सकता। यदि सरकार सचमुच जन भावनाओं का आदर करते हुए जगद्गुरु शंकराचार्य जी की प्राण रक्षा करना चाहती तो उसे ढुलमुल नीति का परित्याग कर गोवंश को सर्वथा अवैध घोषित कर देना चाहिए।

●

# विचार-दर्शन

# नये-नये धर्म नये-नये रूप

नये-नये धर्म और नये-नये रूप में संसार के सामने आये और एक ही मुल्क में एक से अधिक धर्मों के अनुयायी रहने लगे। सब लोग अपने-अपने धर्मों की बातों को ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि मानने लगे। फल यह हुआ कि विभिन्न धर्मों के अन्दर आपस में कटुता बढ़ी और सैनिक एवं राजनैतिक रूप में ही नहीं, दार्शनिक रूप में भी उनमें बराबर झगड़ा चलता रहा। संसार का धार्मिक इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है। उन में धर्म के नाम पर इतना ज्यादा खून खराबा हुआ, जिसे देख कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। धार्मिक गुरुओं को जलाया गया, फाँसी दी गई, कत्ल किया गया। शासन करने वाली सत्ता को जिसनेअंगीकार किया उसके अलावा दूसरे धर्मों को मानने वाली प्रजा पर अनेक तरह का जुल्म ढाया गया और सारे संसार के इतिहास में एक बार नहीं, हजारों बार धार्मिक मदान्धता एवं क्रूरता का प्रयोग किया गया। इससे धर्म के सुन्दर चेहरे पर कालिख लग गई और जिस धर्म से समस्त संसार को सभ्यता, समानता, शान्ति एवं शिष्टता की प्रेरणा मिली थी, वही धर्म स्वयं ही इन गुणों को नष्ट करने के लिए प्रधान साधन बन गया। यह बात भी ठीक है कि बीच-बीच में इस संसार के अन्दर अच्छे-अच्छे आदमी आये, अच्छे-अच्छे शासक पैदा हुए तथा उनके जमाने में सभी धर्मों को एक जगह एकत्रित करने की चेष्टा की गई। लेकिन इस काम में सफलता नहीं मिल सकी। इसी कारण से अधिकांश संख्या में विभिन्न धर्मों को मानने वाली जनता में एक दीवार खड़ी हो गई तथा किसी को अपने से भिन्न धर्मों के मानने वालों के बारे में कोई जानकारी ही न रह गई। धर्मों के बीच इस तरह की लड़ाई का किस तरह का खतरनाक नतीजा हो सकता है, इसका सबसे मुख्य उदाहरण हिन्दुस्तान का दो भागों में बँट जाना है।

हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के अनुयायियों के बीच इस लड़ाई का कितना खतरनाक परिणाम हुआ, यह इसी से मालूम पड़ता है कि कई हजार लोगों को अपनी भूमि

और घरबार छोड़ कर बहुत दूर जा कर बसना पड़ा। पुराने जमाने में भी रोमन कैथोलिकों और प्रोटेस्टेन्टों के बीच भी ऐसे ही खतरनाक झगड़े हुए थे। इसी तरह इस्लाम की मार के सामने पारसियों को अपना घरबार छोड़ कर हिन्दुस्तान में आना पड़ा और इन पारसियों में से जो लोग ईरान में रह गये, उन पर अनेकों तरह के जुल्म ढाये गये। इस्लाम को स्वयं भी ईसाइयत के सामने ईसाइयत को इस्लाम के सामने बहुत बुरे अत्याचारों का सामना करना पड़ा। इसी तरह यहूदियों को भी पूरे २५ वर्षों तक ठोकरें खाते हुये अस्त-व्यस्त-त्रस्त रह करके फिरना पड़ा। चीन में भी ताओ धर्म, कन्फ्युशियस और बुद्ध धर्म के बीच में अनेक झगड़े हुए और उनमें काफी खून खराबा हुआ। इससे संसार का धार्मिक इतिहास खून से लाल ही लाल है। आज अगर धर्मों के नाम पर दुनिया में भय पैदा होने लगा है, तो कोई ताज्जुब की बात नहीं है। अगर यही धर्मों के व्यावहारिक जीवन में उसूल हुए, तो इतने कत्ल धर्मों के नाम पर क्यों हुए, यह सवाल है। इस सवाल का जवाब देना हमारे लिए बिलकुल आसान नहीं है। अगर हम सही तौर से जवाब न दे पाये और इस रोग का ठीक इलाज न ढूंढ़ पाये तो धर्मों की कीमत संसार में कम ही होती चली जायेगी। इसके लिए हमें आपस में बैठ कर यह समझना है कि हमारे बीच ऊँचे सिद्धान्तों के होते हुए भी झगड़े क्यों हो रहे हैं ?

जहाँ तक मुझे मालूम है, इन सब झगड़ों का कारण यह है कि जब धर्मों के मूल प्रचारक, पैगम्बर या मसीहा इस संसार में न रहें तो उन धर्मों की बागडोर उनके शिष्यों के हाथ में आई। उन्होंने राजनीतिक और सैनिक लिबास ले लिया और धर्मों के नाम पर अलग-अलग फिरकों और जातियों के बनाने एवं दूसरों को लूटने का काम अपनाने लगे। चूंकि इन फिरकों के धर्म आपस में अलग-अलग थे, इसलिये फिरके जो कि अधिक उन्नति कर जाते थे, वे एक-दूसरे के नाम पर अत्याचार एवं अन्याय करने लगे। इसी तरह धर्मों के इतिहास के अन्दर अलग-अलग जातियों की साम्राज्य-लिप्सा और लूटने-खसोटने की प्रवृत्ति छिपी हुई है और इसी प्रवृत्ति ने धर्म के इतिहास को खून के कतरों से भर दिया। इस तरह जिसको हम धर्म का इतिहास कहते हैं, वह सही माने में धर्म का इतिहास नहीं है। इस इतिहास के बनाने में चाहे किसी भी धर्म का नाम लिया गया हो, चाहे वह बुद्ध धर्म हो, ईसाइयत हो, यहूदी धर्म हो या हिन्दू धर्म हो, ये इतिहास इन धर्मों के नाम पर बनाये भले ही गये हों, लेकिन असल में वे इन धर्मों के कब्रिस्तान पर ही खड़े हैं। अगर ऐसा नहीं तो मुझे यह समझ में नहीं आता कि उन महात्माओं के नाम पर उनके अनुयायियों ने संसार के सारे देशों को फतह करने का विजय-अभियान किस तरह उठाया ? इन देशों में भी पोर्चुगीज, कैथोलिक पादरियों ने लोगों को जबरन ईसाई बनने के लिए जो कारनामे किये, वह किसी से छिपे हुए नहीं हैं। इसी तरह मुझे यह भी समझ में नहीं आता कि हिन्दू धर्म के अन्दर मनु के दस धर्मों के लक्षण धर्मों के प्रधान लक्षण माने गये हैं। लेकिन इन लोगों में इस तरह अहंकार कैसे छाया कि लोग एक-दूसरे को छूने आदि में घृणा करने लगे। मुझे यह भी समझ में नहीं आता कि जिन महात्मा बुद्ध ने प्राणी मात्र के लिए दया भाव का उपदेश दिया था तथा छोटी-से-छोटी तकलीफ देना भी आपत्तिजनक अर्थात् इसे बहुत बड़ा पाप समझा जाता था; उन्हीं के मानने वाले बुद्ध धर्मावलम्बी किस तरह से आज संसार

में सबसे प्रबल मांसाहारी हैं । इसी तरह मुझे यह भी समझ में नहीं आता कि जिन मुहम्मद साहब ने अपने पड़ोसियों के प्रति पूरा प्यार बर्तने का उपदेश दिया था उन्हीं के अनुयायियों ने एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में कुरान लेकर एटलांटिक से लेकर प्रशान्त महा-सागर तक किस तरह खून की नदियाँ बहाईं । मुझे यह समझ नहीं पड़ता कि जिन जैनियों के लिए एक पतंगे को मारने में भी पाप लगता है उन्हीं में से किस तरह आज हजारों नवयुवक मांस तक खाते हैं, शराब पीते हैं, ब्लैक करते हैं और रिश्वत लेते व देते हैं । इन सब बातों से मुझे यही समझ पड़ता है कि इन सब धर्मों के अनुयायी अपने मूल धर्म के सिद्धान्तों के कठोर शत्रु हो गये हैं तथा उन धर्मों के मूल आदर्शों एवं नियमों को तो इन्होंने भुला ही दिया है । उन धर्मों का जो अंश रह भी गया था वह भी सूखते-सूखते अब बिल्कुल खाली हो गया है । यही कारण है कि आज सारा धर्म इतना विकृत हो गया है कि संसार के बहुत से लोग इन सभी धर्मों को बड़ी नफरत से देखते हैं । संसार में कुछ राष्ट्रों के लोग तो आज धर्म का नाम लेने को ही पांप समझते हैं । उसके पीछे उनके मन के अन्दर धर्मों का यह विकृत रूप ही काम करता है । अगर इस विकृत रूप का हम परिष्कार न कर सके तो जिस तरह एक बाघ के सामने हजारों भेड़ों का झुंड एक साथ ही भागता है उसी तरह कि भेड़ें भागने पर भी बाघ से छुटकारा नहीं पा सकती हैं उसी तरह ये धर्म भागने की चेष्टा करते हुए भी भाग नहीं सकेंगे और विज्ञान की हवा एवं विज्ञान की भावना इन सभी धर्मों को एक साथ ही खा जायगी ।

तो हमें चाहिए कि हम इन धर्मों के रूप को परिष्कृत करें । इन धर्मों के बनने के बाद इनमें जो बुराइयां फैली हैं उनको दूर करें । सबसे पहले हर एक आदमी को चाहिए कि वह अपने-अपने धर्म की बुराइयों को दूर करें तथा अपने-अपने धर्मों के सम्मेलन बुला करके इन धर्मों की बुराइयों पर विचार करें और उनको दूर करने की चेष्टा करें । क्योंकि हर एक धर्म के पैगम्बरों के अपने एक छोटे दायरे रहे हैं । इसलिए हमें चाहिए कि इन पैगम्बरों के उपदेशों को शिरोधार्य करें, लेकिन उन्हें स्पष्ट रूप से समझने की भी चेष्टा करें, ताकि इतिहास में जो फिरकेबाजी रही है, उसे भी हम समझ सकें । हर एक धर्म के अनुयायी अपने-अपने धर्म सम्मेलन करने पर जिस नतीजे पर पहुँचे, उन नतीजों को फिर दूसरे धर्मा-नुयायियों के साथ बैठ करके समझने की चेष्टा करें, ताकि हर एक धर्म को यह पता लग सके कि हमें दूसरे धर्म वाले किस नजर से देखते हैं । तब हमारा अहंकार कुछ कम हो जायेगा तथा इतिहास के कुछ और धर्मों की तस्वीर भी स्पष्ट हो जायेगी । दूसरा काम यह होगा कि अलग-अलग धर्मों के आचार्य और अनुयायी एक साथ बैठ कर के यह फैसला करें कि एक धर्म का दूसरे धर्मों से किन-किन बातों में मतभेद है और वह मतभेद किस तरह से दूर किया जा सकता है । इस बारे में हमें धर्मों के बीच पंचशील के सिद्धांत को लागू करने की चेष्टा करनी चाहिए । अगर धर्मों के बीच इस पंचशील के सिद्धांत को हम लागू कर देते हैं, तो हम यह देखेंगे कि ये झगड़े शीघ्र ही खत्म हो जायेंगे और एक धर्म दूसरे धर्म को इज्जत की निगाह से देखना शुरू कर देगा । यह मानकर चलना ठीक नहीं होगा कि एक धर्म में जो कुछ लिखा है, वही ब्रह्म-वाक्य है, क्योंकि अगर ऐसा मानकर हम चलते हैं तो किसी तरह कोई झगड़ा समाप्त नहीं हो पायेगा । आज राष्ट्रों के बीच में भी आपस में जो

झगड़े होते हैं, वे बातचीत, सलाह तथा समझने आदि से तय होते हैं। उसमें जो उचित पक्ष होता है, उसको ही दूसरे पक्ष वाले भी स्वीकार करते हैं। इसी तरह अगर धर्मों के आचार्य-गण भी काम करें, तो धर्मों में होने वाले आपस के झगड़े धीरे-धीरे, सुलझाये जा सकते हैं। इसलिए यह मानना चाहिए कि धर्मों के मूल उपदेशों के अन्दर ज्यादा अन्तर नहीं है तथा अगर इस मूल उपदेश के दायरे में हम काम करें, तो इन झगड़ों का सुलझाना बहुत मुश्किल काम नहीं है। इसके लिए हमें अहंकार, अंध-विश्वास, साम्राज्य-लिप्सा एवं जबरदस्ती दबोचने की प्रवृत्ति का परित्याग करना पड़ेगा। एक धर्म का दूसरे धर्म से अगर किसी प्रकार का मतभेद है तो इस मतभेद को हमें नैतिक माप से देखना पड़ेगा। जो पक्ष नैतिक माप से कमजोर पड़ता है उस पक्ष को दूसरे पक्ष के मुकाबले में अपनी जिद छोड़नी पड़ेगी। इस तरह धीरे-धीरे ये सब झगड़े छोटे-छोटे दायरों में होते चले जायेंगे और एक दिन ऐसा आयेगा, जब कि हम देखेंगे कि यह झगड़ा बहुत कम हो गया है। जब झगड़े धीरे-धीरे कम पड़ जायेंगे, तो हम एक जगह बैठ कर के कार्यक्रम बनाने में सफल होंगे। हमें याद रखना चाहिए कि संसार के सारे लोगों में से अधिकांश लोग अपना जीवन किसी न किसी धर्म के नाम पर ही बिताते हैं। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम धार्मिक साम्राज्यवाद को खत्म कर दें। जब सभी धर्म ऊंचे और उत्तम कोटि के हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों एक धर्म दूसरे धर्म के अनुयायियों को अपने में मिलाने की चेष्टा करता है। अगर समझ-बूझकर कोई एक आदमी एक उसूल से दूसरे उसूल में जाता है तो वह एक अलग बात है। लेकिन लोभ से, लालच से, जोर-जबरदस्ती से, बहलावे से अगर कोई एक धर्म अपना प्रचार करना चाहता है तो वह अपने पर ही कुठाराघात करता है। मुझे इस बात पर थोड़ा गर्व अवश्य है कि भारत ने कभी भी धर्म प्रचार करने के लिए तलवार या रुपये पर भरोसा नहीं किया। यह एक बड़ी चीज थी और अगर संसार के सारे धर्म इस सिद्धान्त को अपना लेते हैं तो यह संसार के लिए बहुत बड़ी बात होगी। आज अगर फ्रांस पर जर्मनी हमला करता है या चीन हिन्दुस्तान पर हमला करता है तो दुनिया के लोगों को बहुत बुरा लगता है। फिर अगर ईसाइयत इस्लाम पर हमला करती है या इस्लाम हिन्दू-धर्म पर हमला करता है तो यह कैसे बुरा नहीं है ? यह मुझे समझ में नहीं आता। ईसामसीह और हजरत मुहम्मद इसके बहुत बड़े परिपोषक हैं लेकिन इसके लिए तो ईसाई और मुसलमान बनने की आवश्यकता ही क्या है ? महापुरुषों के उपदेशों का तो मैं दूर से ही स्वाद ले सकता हूँ जिस तरह कि गुलाब के बगीचे की खुशबू सभी को दूर से ही मिल जाती है। इसी तरह अगर कोई कृष्ण, पातजलि या वेदव्यास के प्रशंसक हैं तो उन्हें हिन्दू बनने की क्या आवश्यकता है, यह मुझे समझ नहीं पड़ता। बहुत से देशों के अन्दर विभिन्न धर्मों के लोग आपस में एक ही साथ खाते-पीते हैं, आपस में रिश्ता कायम करते हैं और एक-दूसरे के देवस्थान की बहुत बड़ी इज्जत करते हैं, यह बड़ी अच्छी चीज है तथा इस चीज को हमें धीरे-धीरे बढ़ते हुए देखना चाहिए, तभी हमारे मनों की दरारें और दीवारें दूर होंगी तथा तभी हम कह सकेंगे कि हम सही माने में एक-दूसरे की इज्जत करते हैं। अगर किसी धर्म को अपने धार्मिक नियमों के अनुसार अलग बैठ कर खाने का आदेश है तो वह अपना काम एकान्त में बैठ कर कर सकते हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अपने को औरों से महान् समझें। इसी तरह अगर कोई फिर्का

अपने रक्त की शुद्धता के लिए अपने अन्दर के रिश्तों में विश्वास करता है तो यह समझ में आता है। फिर भी हमें यह भी देखना चाहिए कि एक ही धर्म के अन्दर बहुत-सी जातियां एवं देशों के रक्त मिले हैं और रक्त-शुद्धता का अभिमान किसी भी जगह माने नहीं रखता। इन धार्मिक मतभेदों को हम जब तक ईमानदारी से कम नहीं करेंगे तब तक यह काम अधूरा ही रहेगा और धर्म के लिए भविष्य का खाका बाहर ही रह जायेगा।

धर्म के आपस के झगड़ों को छोड़ कर अगर हम देखते हैं तो हमें मालूम पड़ता है कि धर्म के लिए खतरा दूसरे धर्मों से नहीं बल्कि विज्ञान की भौतिक प्रवृत्ति से है। मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि धर्म को समाजवाद या साम्यवाद से कोई बड़ा खतरा है। लेकिन मैं इन बातों को जरूरी मानता हूँ कि मनुष्य की विज्ञान के रूप में जो बढ़ती हुई शक्ति है मनुष्य पर जो उसका नशा चढ़ता जा रहा है उससे धर्म को अवश्य खतरा है। आज मनुष्य को विज्ञान की बदौलत कुछ शक्ति मिली है, कुछ ज्ञान बढ़ा है एवं कुछ उत्पादन करने की शक्ति बढ़ी है तथा सोचने की शक्ति में भी वृद्धि हुई है। अगर इस बढ़ी हुई शक्ति को मनुष्य रचनात्मक कामों में लगाता है तो संसार के लिए सुख-समृद्धि बढ़ेगी। लेकिन अगर इस बढ़ी हुई ताकत को संसार से झगड़ा करने में लगाया और एक-दूसरे से घृणा उत्पन्न हुई तो भविष्य के लिए एक महान् खतरा है। यह खतरा क्यों है यह बताने की जरूरत नहीं है। क्योंकि आज संसार का हर एक राजनीतिज्ञ इसी चिन्ता से परेशान है। लेकिन इस बात के लिए भी हमें दुख है कि अगर मनुष्य की दौलत बढ़ती है तो उसमें अभिमान भी बढ़ता है और अगर उसकी शक्ति बढ़ती है तो उसके पाशविक विचार को भी उत्तेजना मिलती है। अगर बुद्धि बढ़ती है तो मनुष्य उस बुद्धि को दूसरे का शोषण करने के काम में लाता है। आज मनुष्य की दौलत, शक्ति और बुद्धि तीनों बढ़ रही हैं। इसका उपयोग अभिमान, क्रूरता या शोषण पर होगा कि नहीं, यही सवाल है। अभी तक जितने संकेत मिलते हैं उनसे यही मालूम पड़ता है कि मनुष्य ने अपनी बढ़ी हुई शक्ति, दौलत और बुद्धि का उपयोग बाहरी तरीकों से ही करने का फैसला किया है। जैसे-जैसे विज्ञान में उन्नति होगी वैसे-वैसे मनुष्य की दौलत, शक्ति और बुद्धि भी बढ़ेगी। इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन इसका उपयोग अधिक अभिमान, क्रूरता और शोषण प्रवृत्ति में हुआ तो यह बाहरी बात होगी और मनुष्य का अस्तित्व समाप्त होने का एक बहुत बड़ा खतरा पैदा हो जायेगा। इसलिए जहाँ पहले धर्मों को अपनी बुराइयों से खतरा था वहां आज सब धर्मों को एक साथ मनुष्य की बढ़ती हुई शक्ति से खतरा हो गया है। हम यह नहीं चाहते कि यह शक्ति, दौलत एवं बुद्धि घटे, इसके बढ़ने में ही हमारा फायदा है। फिर भी अगर हम इस शक्ति का उपयोग बाहरी तरीके से करते हैं तो हमारे लिए पहले जितना खतरा था उससे भी ज्यादा खतरा पैदा हो हो जायेगा। सभी धर्माचार्यों से यह निवेदन है कि वे मनुष्य-जाति का पथ-प्रदर्शन करें। अगर ऐसा करने में हम सफल हुए तो इतिहास में हम बहुत बड़ा काम कर पायेंगे और अगर असफल हुए तो हमारा जीवन विज्ञान के आगे नष्ट हो जायेगा तथा विज्ञान मनुष्य की नैतिक कमजोरियों के कारण नष्ट हो जाएगा। हम इतिहास के चौराहे पर खड़े हुए हैं और हमें यह फैसला करना है कि हमें कुछ काम करना चाहिए या नहीं। इतिहास की धारा को सही दिशा में ले जाने के लिए जो जरूरी है, उसे करें।

# एशियाई धर्मों का मिलन

धर्म, मृत्यु पर आत्मा की विजय का सन्देशवाहक है। धर्मों ने भोग पर त्याग की, आसुरी शक्तियों पर दैवी शक्तियों की विजय करवाई है। धर्म का प्रासाद प्रेम और सहिष्णुता पर खड़ा है। आत्मसमर्पण धर्म की पहली शर्त है। धर्म ने मानव के विराट् अन्तस्तल में सुप्त परमात्मा को जागृत किया है। धर्म ने आत्मा को परमात्मापन का आत्मविश्वास दिया है। और परमात्मा ने ही परमात्मा की अलौकिक ज्योति को निहार सकने का रहस्य उद्घाटित किया है। वट के बीज वट हैं, एक बीज के अगणित होने पर भी उनमें वही शक्ति है, शक्ति के विनिमय का सिद्धान्त अर्थात् शक्ति का विभाजन होने पर भी शक्ति है, वह अशक्ति नहीं हो सकती। ठीक इसलिये धर्म प्राणीमात्र की आत्मा को दिव्य प्रभुमय ही देखता है। 'अप्पा सो परमप्पा'' अर्थात् भगवान् महावीर की वाणी और आत्मा ही परमात्मा है, यह सब सुनहरा सिद्धान्त उसी परमधर्म के विश्वासी मानव को प्रदान किए गए हैं। प्रभुमय हुये बिना प्रभु का साक्षात्कार नहीं हो सकता है। यही सभी सन्तों, साधकों, धार्मिकों और मस्त फकीरों की अमरवाणी रही है जिससे धर्म जैसा अमृत इस मानव-लोक में निरन्तर बहता रहता है। यही एक ऐसा भावात्मक धर्मों का संगम है, जहाँ संसार के सभी धर्म अपनी-अपनी एकता की गूंज से प्रतिध्वनित हो रहे हैं।

धर्म चाहता है कि मानव की और मानवीय संसार की असुन्दरता धो दी जाय और मानव आसक्तिहीन हो सके, वाणी और विचार का अतिक्रमण कर, मौन की भाषा में वाणी के नाद को सुन सके। याद रखिए, मौन ही आत्मा की भाषा का अविरोध प्रवाह है। उसका उद्गम प्रभु-साक्षात्कार से प्रकट होता है। प्रभु स्वरूप हुये बिना प्रभु को पाना असम्भव है। अपने स्वरूप में लीन होने के पूर्व अपने स्वरूप का प्रेम होना आवश्यक है। अपने स्वरूप का प्रेम ही ईश्वर में प्रेम है। प्रभु-भक्ति ही जप-विकारों के शमन का एक उपाय है। सब दुर्वृत्तियों, अनैतिकताओं से अपने को बचाने के लिये सिवाय आनन्द भाव से प्रभु के प्रति

आत्मसमर्पण करने से श्रेष्ठ कोई मार्ग नहीं है। आत्मा ही सच्चा गुरु है। वही हमें प्रतिक्षण सत्य का साक्षात् शिक्षण देता है जिससे मानव अन्तर्मुखी हो सके, शान्ति प्राप्त कर सके, भेद से अभेद की ओर, अविद्या से ज्ञान की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृत की ओर प्रयाण कर सके। यही आत्मार्थी की, धर्मात्मा की, सर्वोच्च ध्येय-सिद्धि है जिसका शिक्षण सभी धर्मों ने किसी न किसी रूप में संसार को प्रदान किया है।

सभी धर्मों ने आत्मसमर्पण से अहम्भाव के नष्ट होने का विश्वास किया है। इसी से मानव का शोक और दुख, पीड़ा और व्यथा, सभी कुछ नष्ट हो जाती है। यहीं से आत्मानुभूति का पहला आस्वाद प्राप्त होता है। और आत्मानुभूति की शक्ति ही संसार की सभी गुप्त शक्तियों से बढ़ कर है। संकल्प, व्रत, जप, तप, नमाज, उपासना और प्रार्थना सब कर्म उसी शक्ति के जाग्रत करने के उपकरण मात्र हैं। उद्देश्य तो स्वरूप का बोध ही है, बिना स्वरूप के समझे "मैं" को पाये, हम अपना और संसार का किंचिन्मात्र भी उपकार नहीं कर सकते। इसलिये संयम, दया, परोपकार, सरलता, दमन, शांति तथा क्षमा आदि दैवी शक्तियों का प्रकटीकरण पहले अपने ही में करना पड़ता है। क्योंकि तुम्हारा ध्येय तुम्हारी विनम्रता में ही छुपा हुआ है, तुम्हारा कल्याण तुम्हारे ही चरित्र-निर्माण में निर्मित है, तुम्हारा उत्थान और पतन तुम्हारी ही भावनाओं और आचरणों पर अवलम्बित है। तुम्हीं अपने आप के विधाता हो। शुभ करो, शुभ हो जायेगा। तुम्हें अशुभ से शुभ की ओर तथा शुभ से शुद्ध की ओर प्रयाण करना है। यही तुम्हारा पथ-क्रम है और इसी उदात्त वृत्ति को अपनाने के लिये सभी धर्मों का बलपूर्वक आग्रह है।

यह मैं धर्म का अध्यात्म पक्ष कह गया हूँ। सभी धर्मों ने लोक-मंगल, लोक-कल्याण और लोक-हित को ही अपना एकमात्र उद्देश्य घोषित किया है। आवश्यकता है कि हम अनेकान्त की दृष्टि से अखण्ड सत्य का दर्शन करें। शुद्ध दृष्टि द्वारा सत्य का साक्षात्कार करें। विश्व के धर्म केवल उन्हीं के लिये उपादेय और ग्राह्य हो सकते हैं जिनकी दृष्टि सम्यक् है, विचार सम्यक् है, आचार सम्यक् है। मैं विश्वास करता हूँ कि सभी धर्म सापेक्ष दृष्टि से सच्चे हैं, उन्हें झूठा नहीं कहा जा सकता है, हीन नहीं कहा जा सकता, वह किसी-न-किसी अपेक्षा से इसी परम सत्ता की ओर जाने के लिये आतुर हैं, जिसे धर्म अनेकान्त-आत्मक परम सत्य कहा जाता है। गांधी जी ने कहा था कि धर्मान्धता और दिव्यदर्शन दोनों अलग-अलग रूप हैं, उनमें कोई मेल नहीं है। धर्म की आत्मा को पहचानने वालों आत्मा को पहचानो, धर्म का साक्षात्कार करो।

मैं धर्म के ब्रह्मस्वरूप में एकता का दर्शन कर रहा हूँ, क्या संध्या, नमाज, आत्म-चिन्तन, उसी आत्मबोध को सिद्ध नहीं कर रहे हैं? माला, तस्वीह और रोजारी एक ही चीज के नाम नहीं हैं।

अरहन्त, बुद्ध, रसूल, जरथुस्त्र, मसीह आदि शिक्षा देने वालों के नाम नहीं हैं क्या? क्या सभी धर्म पुण्य तथा पाप के फल भोगने के स्थान को जन्नत, स्वर्ग तथा हैवन का नाम नहीं देते हैं?

व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, धर्मार्थ दान, मनुष्य मात्र तथा समस्त प्राणियों के प्रति की गई दया, सुजनता और सौहार्द की सभी धर्म क्या प्रशंसा नहीं करते हैं?

यह तो मैं एक स्थूल नियमों से तुलना कर रहा हूँ, नहीं तो सिवाय दृष्टि-भेद के संसार के सभी धर्मों में आश्चर्यकारक एकता है। उस एकता को पाने के लिये समन्वय की बुद्धि, श्रद्धा का हृदय तथा प्रेम की आँखें चाहिये। धर्म के मानने वालो! विश्व के नागरिको! संसार के सभी धर्मों के प्रति उदार बनो, सहिष्णु वनो और उनके प्रति आदर रखो। तिरस्कार की भावनाओं को तिलांजलि दे दो। सहानुभूति के अमृत की वर्षा करो, तभी तुम धर्म का सौहार्द पा सकोगे।

अन्त में विश्ववंद्य महावीर के शब्दों में "वस्थु सहावो धम्मो" कह कर मैं उस विराट् अखण्ड सत्य की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ। अमर सन्तानों, सम्प्रदाय के स्थान पर स्वभाव को धर्म मानो और प्रेम का विस्तार करो। मैं आशा करता हूँ कि भारत भूमि पर ही सभी धर्मों का मिलन होगा जिससे समुचित विश्व को विलक्षण प्रेम का दिव्य सन्देश दिया जा सके।

# कल्याण मार्ग धर्म-योग

संसार में कल्याण के लिए धर्म से अच्छी नौका कोई नहीं है। वही कल्याणकारी है, उसकी महिमा न्यारी है। कल्याण के लिए धर्म ही एक अच्छा रास्ता है। आदमी को यह कभी भूलना नहीं चाहिए कि सत् जितना सच है उतना ही गम्भीर है तथा असत् भी सच ही के सहारे पर चलता है। संसार में आजकल इतने धर्म हो गये हैं कि किसको समझा जाय कि यह धर्म सत्य है तथा यह धर्म असत्य है। यह पहचानना बहुत ही मुश्किल हो गया है। हंस में यह शक्ति होती है कि वह नीरक्षीर को अलग कर सकता है। लेकिन अगर आप में भी यह शक्ति है वह ताकत है तो आप सत् तथा असत् और धर्म तथा अधर्म को पहचान सकते हैं। हीरे की परख कैसे हो सकती है। बात तो सही है, लेकिन सही होते हुए भी आधी सही है आधी झूठ। एक कहानी है कि एक आदमी ने कहा कि महाराज मैं तो खूब भांग पीता हूँ, तो महाराज ने कहा कि भांग पीना अच्छा नहीं है। आदमी बोल पड़ा कि महाराज आपने क्या कह दिया कि भांग पीना अच्छा नहीं है। अरे जिस बेटे ने भांग नहीं पी, वह बेटा नहीं बेटी है। जिस आदमी ने अपनी जिन्दगी में भांग नहीं पीया वह इन्सान नहीं है। जिस प्रकार से कि जिस हलवा में घी नहीं होता वह हलवा नहीं। उसने एक मसला कहा कि जिस बेटे ने भांग नहीं पी वह बेटा नहीं बेटी है तथा जिस हलवे में घी नहीं वह हलवा नहीं मिट्टी है। संसार में सच झूठ के सहारे चला करता है। धर्म-अधर्म सत्य और असत्य का विवेक किस प्रकार से कर सकते हैं। सन् १९३५ की बात है, इस बीच बहुत से धर्म पैदा हुए। जैसे-जैसे प्रोडक्शन बढ़ता गया वैसे-वैसे धर्म भी बढ़ते गये। ये जो नये धर्म बनते हैं इसमें पुरातन अर्थात् पुरानी बातें नहीं रहती हैं लेकिन कभी वे भी पुरानी ही हो जाती हैं। मनुष्य का यही भेद है कि नया पुराना किसे कहते हैं ? बूढ़ा किसे कहते हैं जो कभी बच्चा होता है, जवानी किसे कहते हैं, जो कभी जाकर नहीं आती। राधा स्वामी सम्प्रदाय के विषय में मैं आपसे कुछ कह रहा था। आत्मा को पहचानने के लिए आत्मा को साधने के

लिए योग को बहुत बड़ा सिद्धांत माना गया है। यह जो बादाम के ऊपर का छिलका होता है यह तो धर्म का व्यवहार है और जो अन्दर का छिपा हुआ होता है, वह योग है। सब धर्मों का सार योग में भरा पड़ा है। भगवान् ने कहा है कि दर असल अन्दर में योग की सिद्धि जब तक न हो जाय तब तक कल्याण नहीं होता। मूल चीज तो योग ही है। योग से ही आदमी का विकास होता है, आदमी अपना कल्याण कर सकता है। जिस प्रकार दुनिया के लोगों की नींद एक-सी होती है परन्तु जागने में अन्तर होता है। कोई ज्यादा देर तक सोता है, कोई कम देर तक सोता है, कोई शिथिल होता है, कोई फुर्तीला होता है। उसी प्रकार से दुनिया में तमाम धर्म हैं। परन्तु सब धर्मों का मूल अमृत योग है। यही बात है कि बहुत से धर्म प्रवर्तक साधु, संन्यासी, गृहस्थ आदि के रूप में हुए हैं। यहाँ तक कि बहुत से बाल-ब्रह्मचारी के रूप में भी हुए हैं। हमारे चौबीस तीर्थंकरों में कुछ ऐसे थे कि जिनके सैंकड़ों बाल बच्चे थे चक्रवर्ती थे। जिसकी योग वृत्तियाँ केन्द्रित हो गई हैं वह माया के बीच में जवान की तरह, पानी में कमल की तरह रहेगा। वह दुनिया में चाहे जहाँ रहे, चिड़िया की तरह रहेगा। उस पर संसार की किसी वस्तु का प्रभाव नहीं पड़ेगा। भगवान् कहते हैं कि यदि साधु आंख बंद करके नहीं चलता तो वह माया के फेर में पड़ जाता है। जैसे नाक खुली रहेगी तो उससे सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों आयेंगी। कान खुला रहेगा तो उससे अच्छी तथा खराब दोनों बातें सुनने को मिलेंगी। पति-पत्नी के प्रेम की भी बातें सुनने को मिलेंगी तथा इसी प्रकार दुनिया की तमाम बातें हमें सुनने को मिलेंगी। भगवान् कहते हैं कि जो सिद्ध विवेक तथा योग के द्वारा चलता है उसके अन्दर दुनिया की बुराइयाँ कभी नहीं आ सकतीं। राधा स्वामी सम्प्रदाय किस प्रकार बना। राधा स्वामी ये बहुत बड़े अफसर थे। वे कोई ऐसी पुस्तक पढ़े जिसके अध्ययन से उन्हें लगा कि श्रुत योग बहुत बड़ा है। अब यह प्रश्न आता है कि श्रुत योग क्या है। श्रुत योग यह आँखों से किया जाता है। आँखों को मूंद कर बैठ जाओ। आँखों में दर्द होने लगे, धड़कन आने लगे, कोई परवाह न करो। लगातार दो-तीन दिन करते रहो। ऐसे धीरे-धीरे जब आप लगातार कई महीने तक करते रहेंगे तो आपकी यह एक आदत हो जायेगी। आँखों में बिजली के समाज तेज आ जायेगा। जिस प्रकार कि स्विच लगाने से बत्ती जलने लगती है उसी प्रकार आखों में प्रकाश आ जायेगा। आपके सामने मोटर जा रही है, गाड़ी जा रही है, सर्प जा रहा है, यदि आपकी इच्छा होती है कि हम इसे रोक लें तो वह अपने आप ही रुक जायेगा। आँखें सूर्य की शक्ति से बनी होती हैं। लेकिन इसके करने से जो बुराई होती है वह यह है कि आंख खराब हो जाने से वह किसी प्रकार की भी चिकित्सा से अच्छी नहीं हो सकती। जो आदमी श्रुत योग को सिद्ध कर लेता है, आसमान जोकि ऊपर दिखाई दे रहा है वह साक्षात् सामने दिखाई देने लगेगा। जब तक आप आसन ठीक ढंग से नहीं लगाते हैं तब तक सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती है। आप आसन को पहले ठीक ढंग से लगाइए तथा उसके बाद चिंतन कीजिए तथा मन की वृत्तियों को शुद्ध कीजिए। इस पर आपको जो आनन्द प्राप्त होगा वह आसीम है। स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परम हंस से कहते हैं कि भगवान् हैं कि नहीं। रामकृष्ण परमहंस ने उनके सिर पर हाथ रखा और कहा कि आंख बंद करो। आंख बंद करने पर उनको एक प्रकाश दिखाई पड़ा तथा एक दिव्य पुरुष उनके मन को दिखलाई पड़ा। इसी प्रकार अगर

आसन की सिद्धि मनुष्य को प्राप्त हो जाती है तो आसन की सिद्धि से मनुष्य महान् बन सकता है।

बहुत से ऐसे साधु होते हैं जोकि कपड़े बदलकर बैठ जाते हैं और धीरे-धीरे श्वास लेते हैं तथा अपने को महान् कहते हैं, वे कहते हैं कि मंत्र लो। मंत्र लेने से भगवान् की प्राप्ति होती है। सब ढोंग है। महात्मा वह होता है जो चीजें किसी को प्राप्त नहीं होती हैं वह उसे प्राप्त कर लेता है। इसका मतलब यह है कि जो चीजें गृहस्थी को नहीं प्राप्त होती हैं वे प्राप्त कर लेता है तो वह सच्चा महात्मा कहा जा सकता है। यदि वह नहीं प्राप्त कर पाता तो चाहे जैसा आचार्य हो लेकिन वह सच्चा महात्मा कभी नहीं कहा जा सकता। बिना इसके कोई फायदा नहीं तथा कोई कल्याण भी नहीं हो सकता। कल्पना कीजिए कि आँख के ऊपर का जगत् आपका नहीं है तथा नीचे का भी आपका नहीं है। जब यह स्थिति हो जाये तो एक काले बिन्दु की कल्पना कीजिये। बहुत ज्यादा जोर मत दीजिए, धीरे कीजिए। मगर एक भी इच्छा, कल्पना यदि रही तो सब नष्ट हो जायेगा। एक भी सिद्धि होने को नहीं है। यह सब दिल की कमजोरियां हैं। जगत् तुम्हारे अधीन नहीं है। पर धीरे धीरे वह अधीन हो सकता है। मन को ट्राई करने में भी कुछ समय लगता—है जैसे यदि मोटर सीखना है तो सीखते-सीखते भी कुछ दिन लगता है। उसी प्रकार मन को ट्राई करने में कुछ समय लगता है। जब आपका मन पक्का हो जायेगा तो आप संगीत सुनना चाहेंगे तो आपको संगीत सुनाई देगा। अथवा आपकी जो कुछ इच्छा, मनोकामना होगी, वह सफल होकर ही रहेगी। यह श्रुत योग है। मनुष्य भावना का भण्डार है। जब उसको एक रास्ता मिल जाता है तो वह समझने लगता है कि यही रास्ता सबसे अच्छा है, दूसरा रास्ता रास्ता ही नहीं है। आनन्द उसी आदमी को प्राप्त हो सकता है जो काम, क्रोध, मोह, माया आदि को त्याग दे तथा व्यभिचारों से दूर रहे। एक आदमी एक महात्मा के पास गया और कहा कि महाराज हमारे अन्दर तमाम व्यभिचार भरे पड़े हैं। महात्मा ने कहा उनको और बढ़ाओ। उन्होंने उसको एक ऐसा आसन बता दिया जिससे कि उसके सब व्यभिचारों का लोप हो गया। कुछ आदमी ऐसे होते हैं जिनको कि लड़ने में आनन्द आता है, कुछ ऐसे होते हैं, जिनको व्यापार में आनन्द आता है। आप अपने मन को जिस तरफ ले जायें उसी तरफ आनन्द आने लगता है इसके सिवाय तो कोई दूसरी स्थिति नहीं है। तमाम दुनिया का सार योग है।

योग के अन्दर जो श्रुत योग है वह ही सबसे बड़ा एवं महान् है। सामायिक करने से मनुष्य के दस हजार वर्षों के पापों का नाश हो जाता है। यही योग सिद्धि है। जब आत्मा परमात्मा से मिल जाती है तो आत्मा का उद्धार हो जाता है। ऐसे ही नमाज, प्रार्थना से से भी आदमी का उद्धार हो जाता है। कहा है —

वफा जिससे किया, बेवफा हो गया।
जिसे बुत बनाया, वह खुदा हो गया।

धर्म का मतलब है इन्सान को इन्सान बनाओ, मनुष्य को मनुष्य बनाओ। जब तक मनुष्य के अन्दर यह भावना नहीं होती है तब तक मनुष्य अपने जीवन का कल्याण नहीं कर सकता है। राधा स्वामी सम्प्रदाय योग पर विश्वास करता है। मन की वृत्तियों को वश में

करने से ही आनन्द प्राप्त होता है। भूल उन्होंने भी की । जिसने कुछ पाया और समझ लिया कि यही सबसे बढ़कर है । अगर सारे व्यापारी एक ही व्यापार करने लगें तो क्या होगा ? सबके अलग-अलग तरीके होते हैं, ढंग होते हैं । कोई कपड़े का व्यापार करता है, कोई अनाज का व्यापार । अगर ये लोग कपड़े तथा अनाज का व्यापार न करें तो हमको कैसे कपड़ा तथा अनाज मिल सकेगा ? जो जिस चीज का व्यापार करता है वह समझता है कि इसी में सबसे ज्यादा फायदा है । और कोई व्यापार, व्यापार ही नहीं है । कहा है गढ़ तो चित्तौढ़गढ़ और सब गढ़ैया । कुछ मनुष्य कहते हैं कि हम जो कुछ कहते हैं, हमारे जो कुछ ग्रन्थ हैं, वही सबसे श्रेष्ठ एवं महान् हैं । बेईमानी ईमानदारी के रूप में, झूठ सत्य के कन्धे पर, अधर्म धर्म की चादर पहन कर चलता है । विवेक बुद्धि के बिना इसका पता नहीं लगाया जा सकता । इसलिये प्रत्येक आदमी को चाहिये कि वह प्रकाश की ओर चले । अधर्म को छोड़कर धर्म का मार्ग अपनाए ।

●

# धार्मिक सम्प्रदायों में परम-ऐक्य

धर्म-समन्वय, धर्म-सहिष्णुभाव एवं विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में परम-ऐक्य का दर्शन भारत में प्रारम्भ से ही विकसित होता आया है। 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'— यह ऋग्वेद के उन ऋषियों की वाणी है—जो नाम और रूप के नाना प्रकार के भेदों में एक ही सत् का दर्शन कर रहे हैं। मुझे गौरव है कि मैं संसार के उन प्राचीनतम धर्मों में से ऐसे धर्म पर विश्वास कर रहा हूँ कि जिस धर्म ने अपने दार्शनिक आधार को अनेकान्तवाद का नाम दिया है। और अहिंसा जैसा उदार सिद्धान्त जिसमें सब जीवों का हित और अनेकान्त जैसे अखण्ड सत्य का प्रतिपादक सिद्धान्त ही जिसके मूलाधार हैं। जिसकी पहली शर्त यह है कि संसार के सब धर्मों में, सब विचारधाराओं में और सब प्रकार के साम्प्रदायिक दृष्टिकोणों में सापेक्षिक सत्य का दर्शन जो नहीं कर सकता— वह उस धर्म को अपना ही नहीं सकता और उस धर्म का नाम जैन धर्म है। धर्म-सहिष्णुता का भाव ही जैन धर्म की हमारे लिये विरासत है।

यह वह देश है जहाँ ऋषियों की वाणी मुखरित हुई। योगिराज कृष्ण का गीता-संदेश, राम का कर्तव्य, तीर्थंकर महावीर का त्याग और बुद्ध की करुणा, अनन्त-अनन्त राशि में प्रभावित हुई। पूर्व के तीर्थंकरों ने, दक्षिण के आचार्यों ने और उत्तर के संतों ने इस देश की संस्कृति को भूमा बनाया है।

यद्यपि आज संगठन का युग है किन्तु अर्थ एवं सत्ता व व्यापार के आधार पर खड़े किये गए संगठन—मनुष्य जाति के लिए लाभदायक सिद्ध नहीं हो रहे हैं। संयुक्तराष्ट्र संघ अन्तर्राष्ट्रीय संगठन संसार की शान्ति का पूर्ण रूप से आश्वासन नहीं दे पा रहा और पंचशील तथा बांडुंग सम्मेलन आज पारस्परिक अविश्वास को नहीं धो पा रहे— उसका कारण सह-अस्तित्व एवं सह-जीवन की भावनाओं को इन संगठनों में स्थान तो दिया गया किन्तु पीछे जिस आत्मनिष्ठा की एवं अभयवृत्ति की आवश्यकता होती है उसको महत्त्व न

दिया जा सका। यही कारण है कि धर्म की इस समता, सह अस्तित्व आदि सिद्धान्तों को राजनीतिक संगठनों ने धर्म से उधार तो लिया किन्तु इनको आत्मनिष्ठ न बना सके। वर्ग-संघर्ष, प्रतिद्वंद्विता और प्रतिद्वेष को यह संगठन मिटा न सके।

इसीलिये धर्म के आधार पर एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता हम महसूस करते हैं—जिसके द्वारा मानव-समाज के आपसी संबंधों को आत्मनिष्ठ बनाया जा सके। राजनैतिक स्तर पर यूनेस्को जिस सांस्कृतिक भाव की सृष्टि कर रहा है—इस की पूर्ति इस धार्मिक संगठन से की जा सके। हमारा विश्वास है कि अब वह समय आ गया है जब धर्म के मानने वाले लोग अनुन्नत राष्ट्रों की सहायता के लिये विश्व-मानस तैयार करें, पारस्परिक संघर्षों को आत्मिक विस्तार से धो दें। भाषा व साम्प्रदायिक संघर्षों को मिटाने के लिये कटिबद्ध हो जायें और तमाम पराधीन राष्ट्रों को स्वाधीन कराने में सहायक बनें, ऐटम-स्पर्धा को नियंत्रित करने के लिये विश्व-व्यापी अभियान चलायें, समाज के पुनर्निर्माण में नैतिक सिद्धान्तों को आत्मनिष्ठा से स्थापित करें—जिससे मानव-समाज की बुनियादी मानवीय समस्या का समाधान हो सके और जीवन के चिरन्तन सत्य को मनुष्य पा सके। जगत् की समस्याओं को राजनीतिक स्तर से हल करने के बहुत प्रयास हो चुके हैं, अब यह समय आ गया है कि जगत् की सब समस्याओं को धार्मिक और आध्यात्मिक कसौटियों में कसा जाये और उनका समाधान किया जाये। इसके लिये संसार के विभिन्न धर्मों के एक सघ की वहुत बड़ी आवश्यकता है।

दुःख होता है कि जब आज का सुधारवादी किसी धर्म के सम्बन्ध में बड़ी घृणा से यह कहता है कि—मैं धर्म को कुछ नहीं मानता, शास्त्र और तत्त्वज्ञान को स्वीकार नहीं करता, ऐसा लगता है कि उसकी बौद्धिक अस्मिता इतनी रुग्ण हो चुकी है कि धर्म जैसे अमृत को, अमृत मानने को ही तैयार नहीं होता। इससे अधिक आज के सुधारवादी की विसंगति क्या हो सकती है?

आज धार्मिकों के सामने जो सबसे बड़ी समस्या है वह धार्मिक एकता की तो है ही, किन्तु उससे बड़ी बात धार्मिक ज्ञान को सुरक्षित करने की भी है। जिस तरह संसार में कुछ महत्त्वाकांक्षी लोग धर्म को कट्टरता का रूप देकर उसे असुन्दर बनाते हैं और अशुभ की ओर ढकेल देते हैं—उसके निराकरण करने की भी समस्या हमारे सामने है। आज हम अपने चारों ओर जिस अंधकार को देख रहे हैं-- उसे दूर करने का उपाय धर्म और विज्ञान और विज्ञान को धर्म का रूप नहीं दे सकेंगे, तब तक हमारी समस्याएं किसी भी तरह सुलझ नहीं सकतीं।

●

बम्बई में आयोजित धर्मसम्मेलन के अवसर पर बम्बई राज्य के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री मोरारजी देसाई एवं अन्य धर्माचार्यगण । सन् १९५४

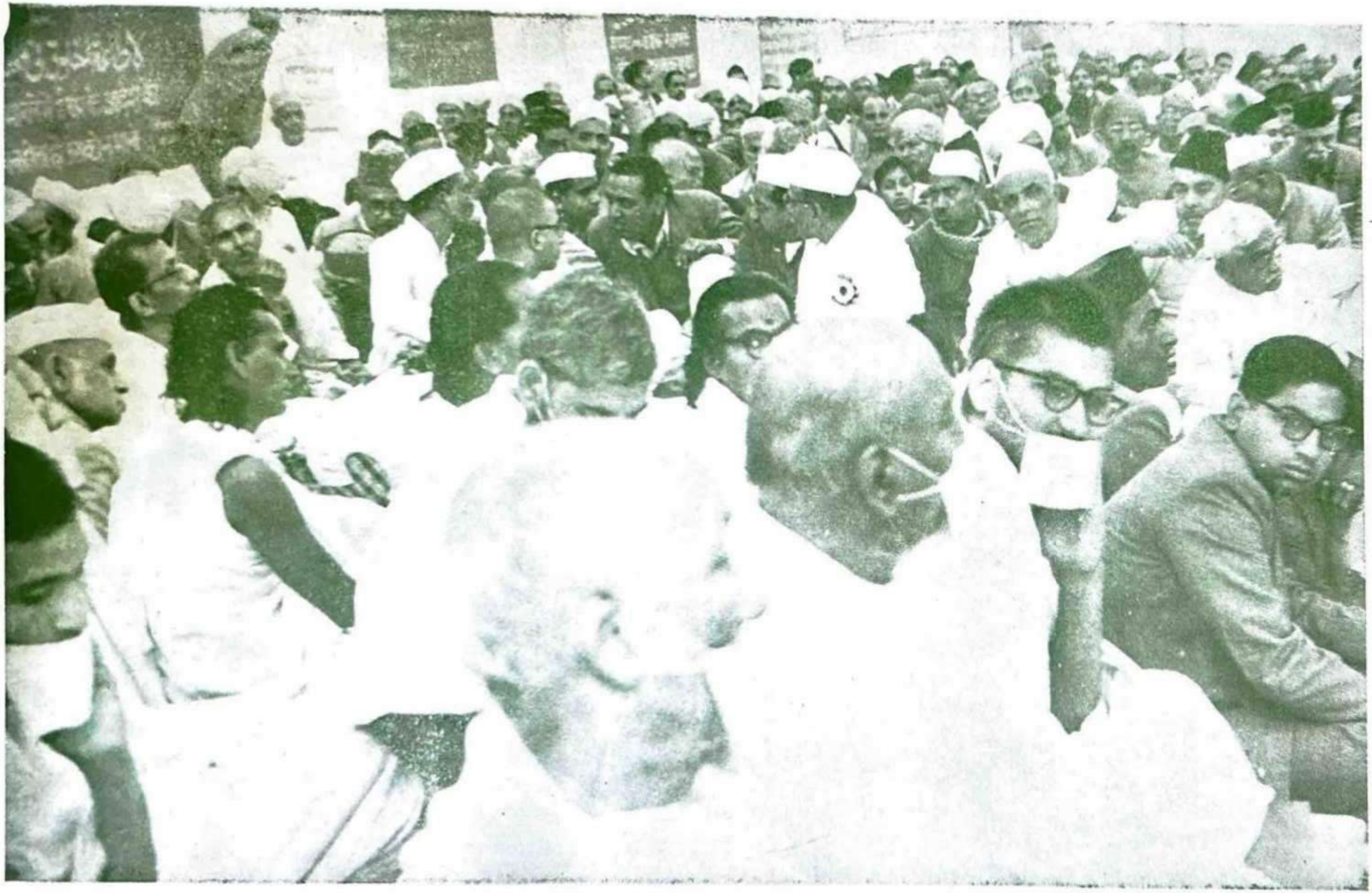

उज्जैन में आयोजित सर्वधर्मसम्मेलन के अवसर पर (बायें) से पूज्य श्री किशनलाल जी म०, मालवकेसरी श्री सौभाग्यमल जी म० एवं सम्मेलन के सूत्रधार मुनि श्री सुशील कुमार जी म० । सन् १९५५

उज्जैन महिला-सम्मेलन में सम्मिलित महिलायें जो मुनिजी का ओजस्वी प्रवचन तन्मय होकर सुन रही हैं। सन् १९५५

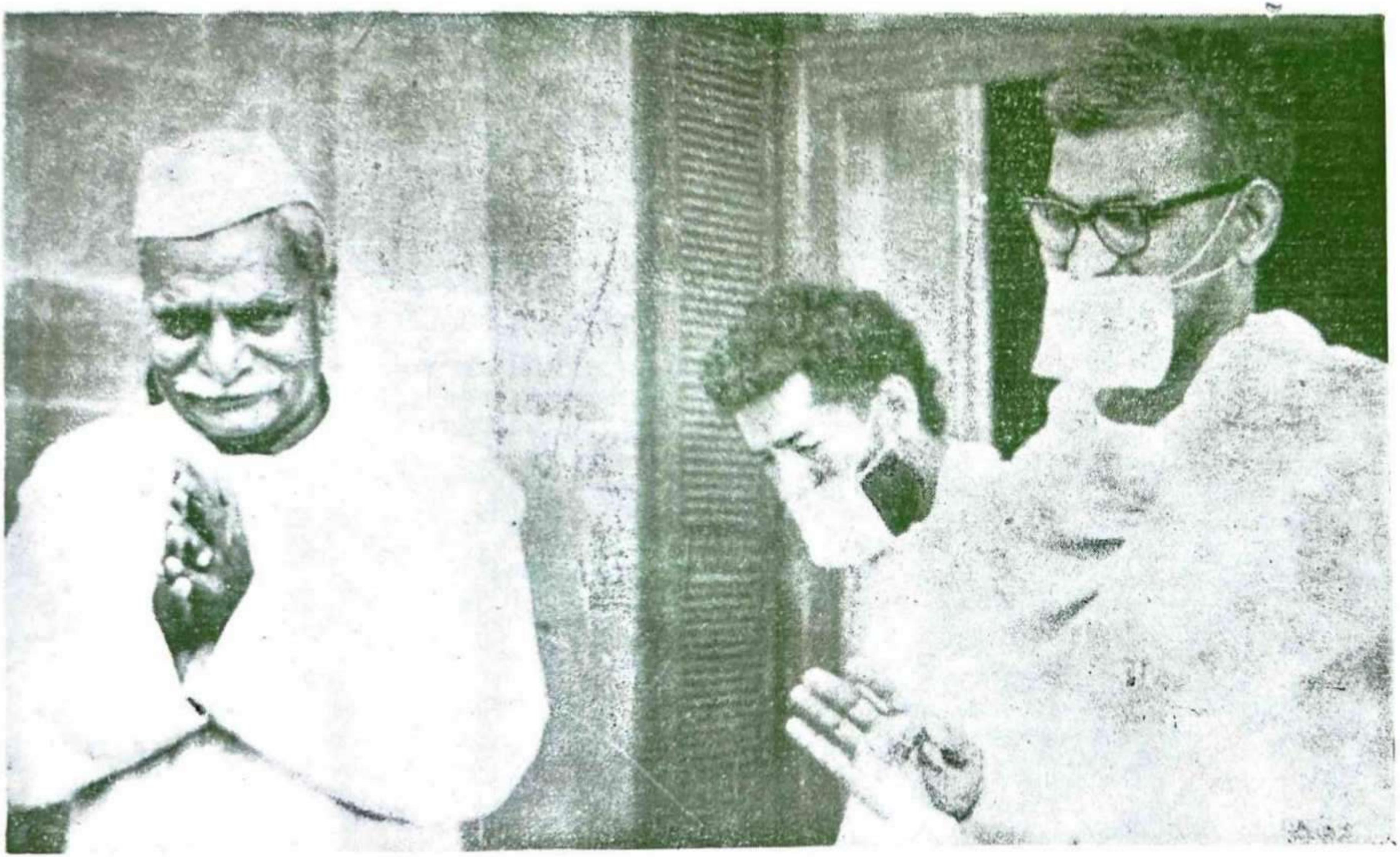

राष्ट्रपति भवन में डा० राजेन्द्र प्रसाद, श्री सुभाग मुनिजी एवं मुनिजी । सन् १९५७

प्रथम विश्वधर्म सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू, तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् और स्वागताध्यक्ष साहू शान्तिप्रसाद जैन के बीच मुनिजी

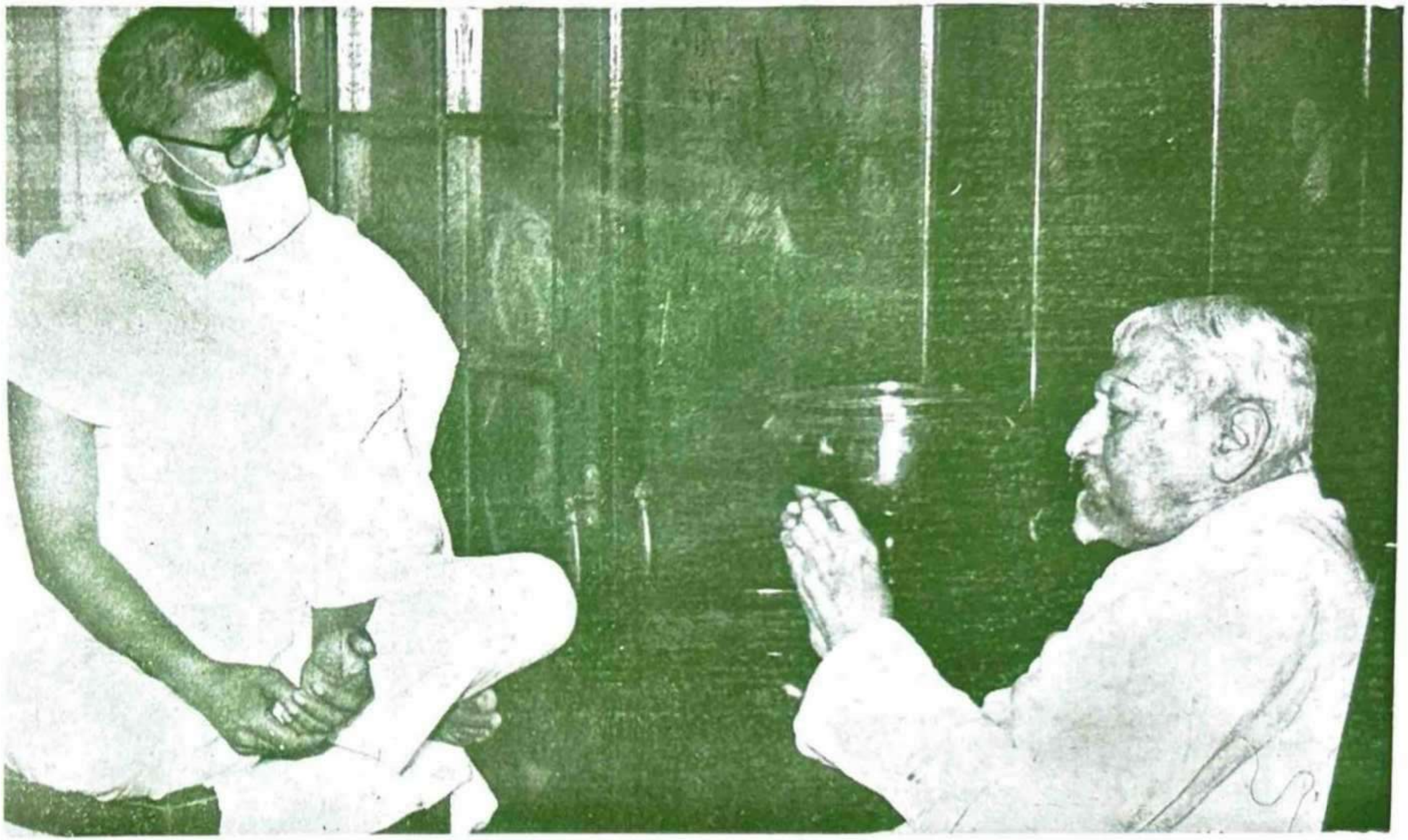

तत्कालीन शिक्षामन्त्री मौलाना अबुल कलाम आजाद को विश्वधर्म सम्मेलन की गतिविधियों से अवगत कराते हुए मुनिजी

प्रथम विश्वधर्म सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर (बायें से) मुनिजी, पण्डित नेहरू (माइक पर) और
तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

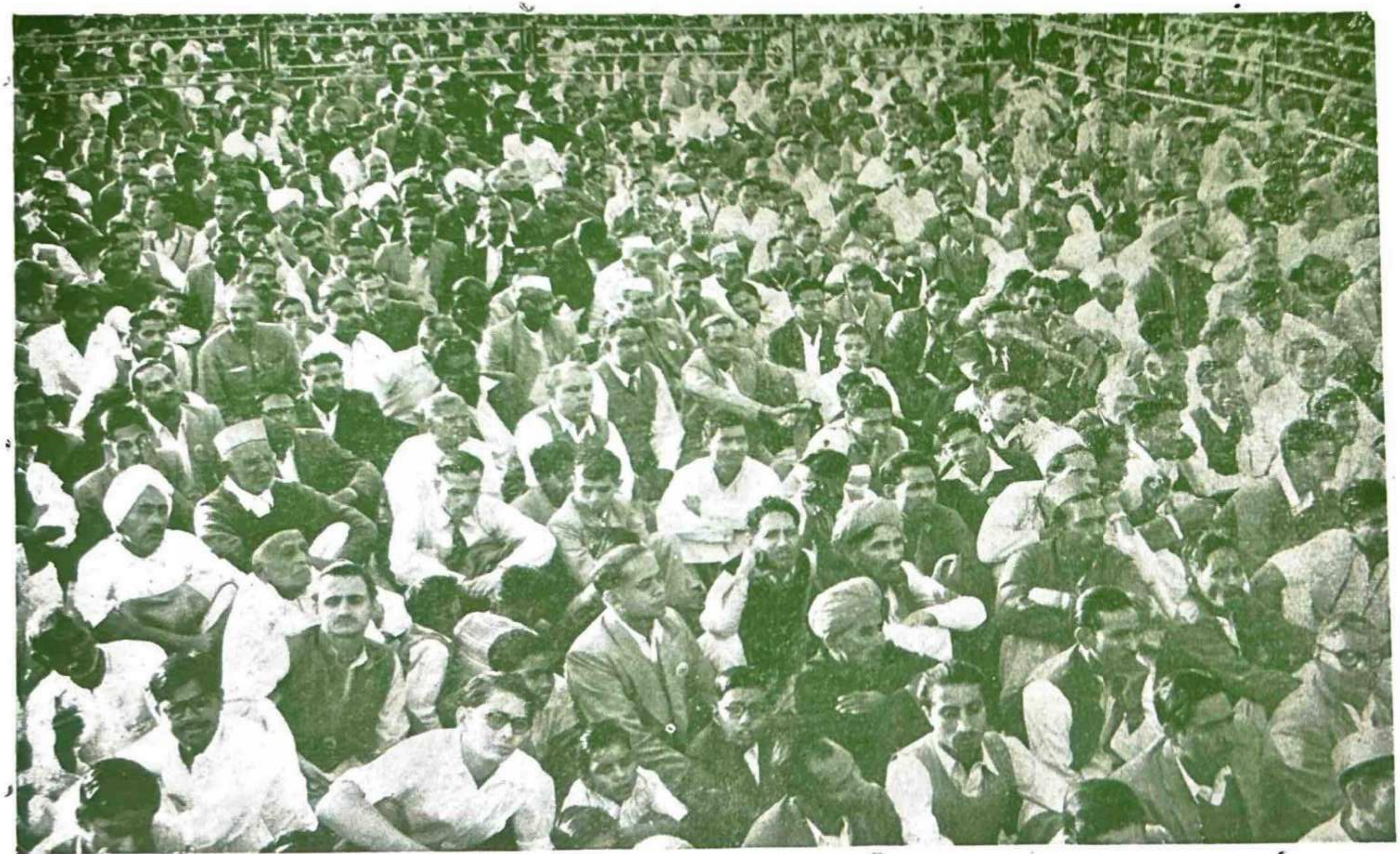

दिल्ली में आयोजित प्रथम विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर एकत्र अपार जनसमूह

लालकिले में विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर बोलते हुए अलेक्जेण्डर मार्की, मुनिजी तथा अन्य प्रतिनिधि

विभिन्न धर्म प्रतिनिधियों के बीच मुनिजी

मुनिजी तत्कालीन गृहमंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पन्त के साथ बातचीत करते हुए

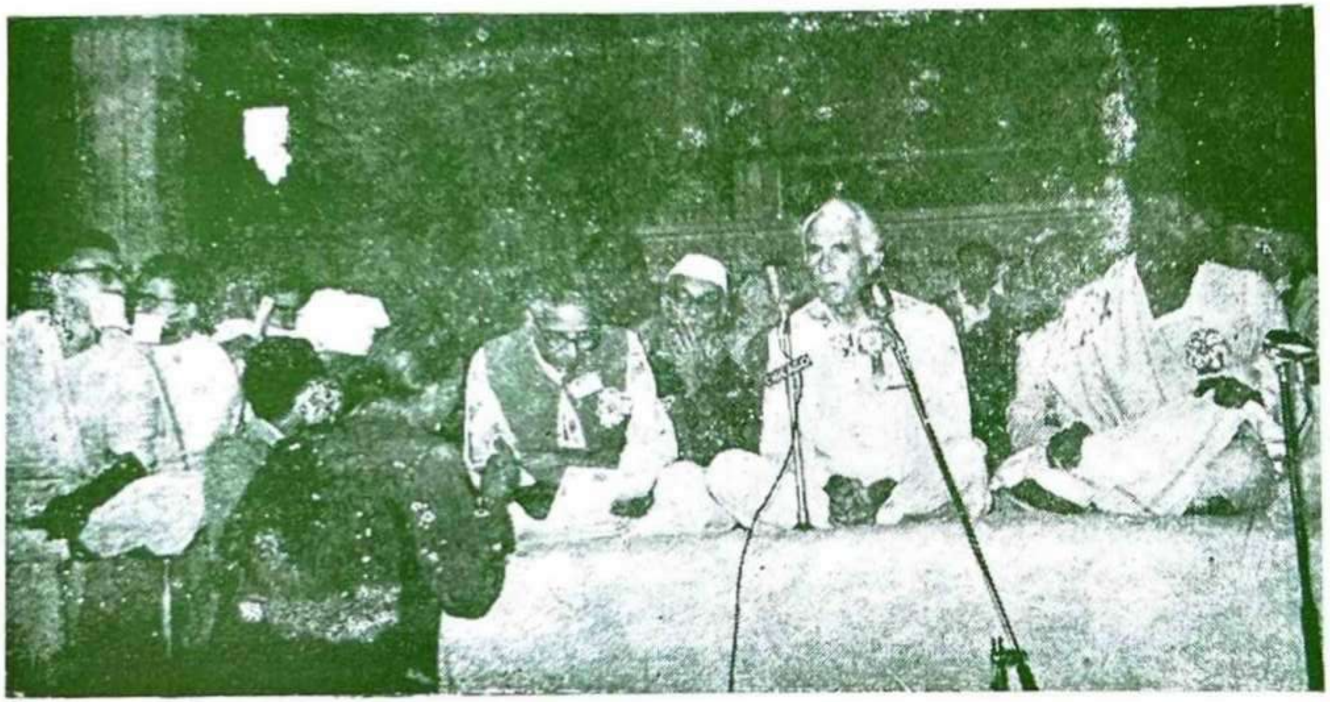

प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक रिचर्ड ग्रेग मुनिजी के सान्निध्य में

विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधि

(बायें से) श्री अनन्तशयनम् आयंगार, सेठ जुगलकिशोर बिरला, आर्कप्रीस्ट रूसीस्तकी (मास्को), सन्त कृपाल सिंह जी,
मुनिजी एवं श्री सुभाग मुनि जी

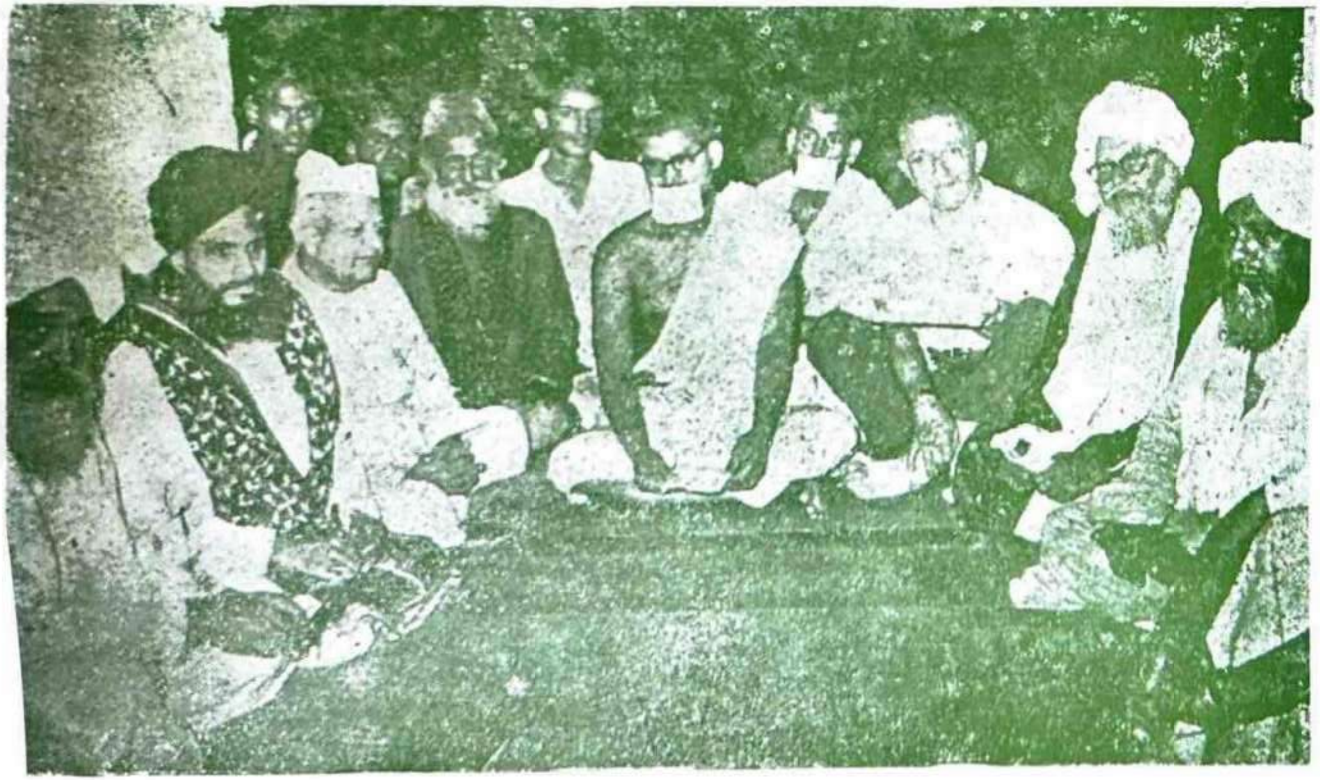

फ्रान्सीसी पत्रकार अल्फान्से सी० देल्को तथा अन्य धर्मप्रतिनिधियों के साथ मुनिजी

आर्कप्रीस्ट रूसिस्तकी के साथ मुनिजी

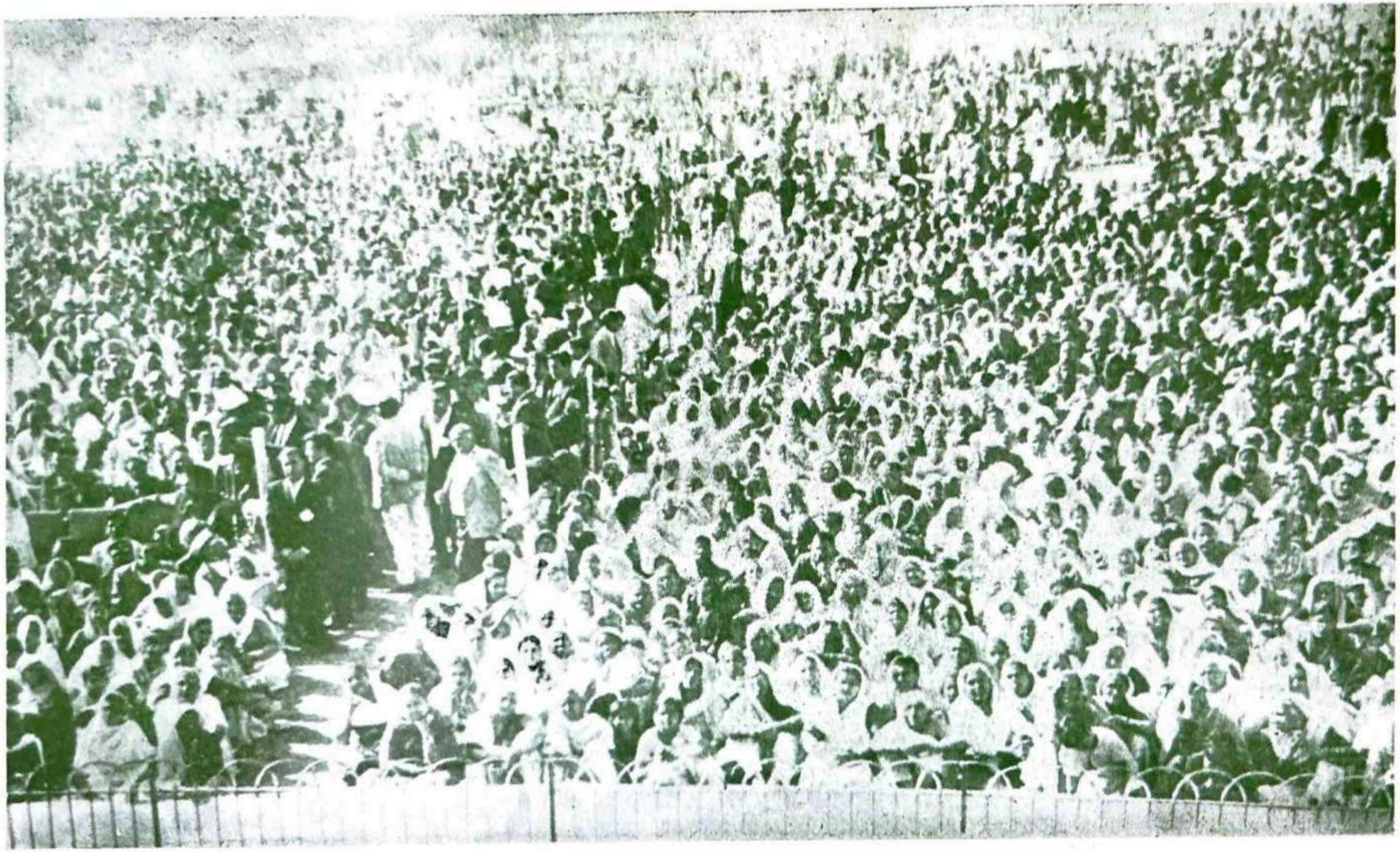

रामलीला मैदान में विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर एकत्र जनसमूह

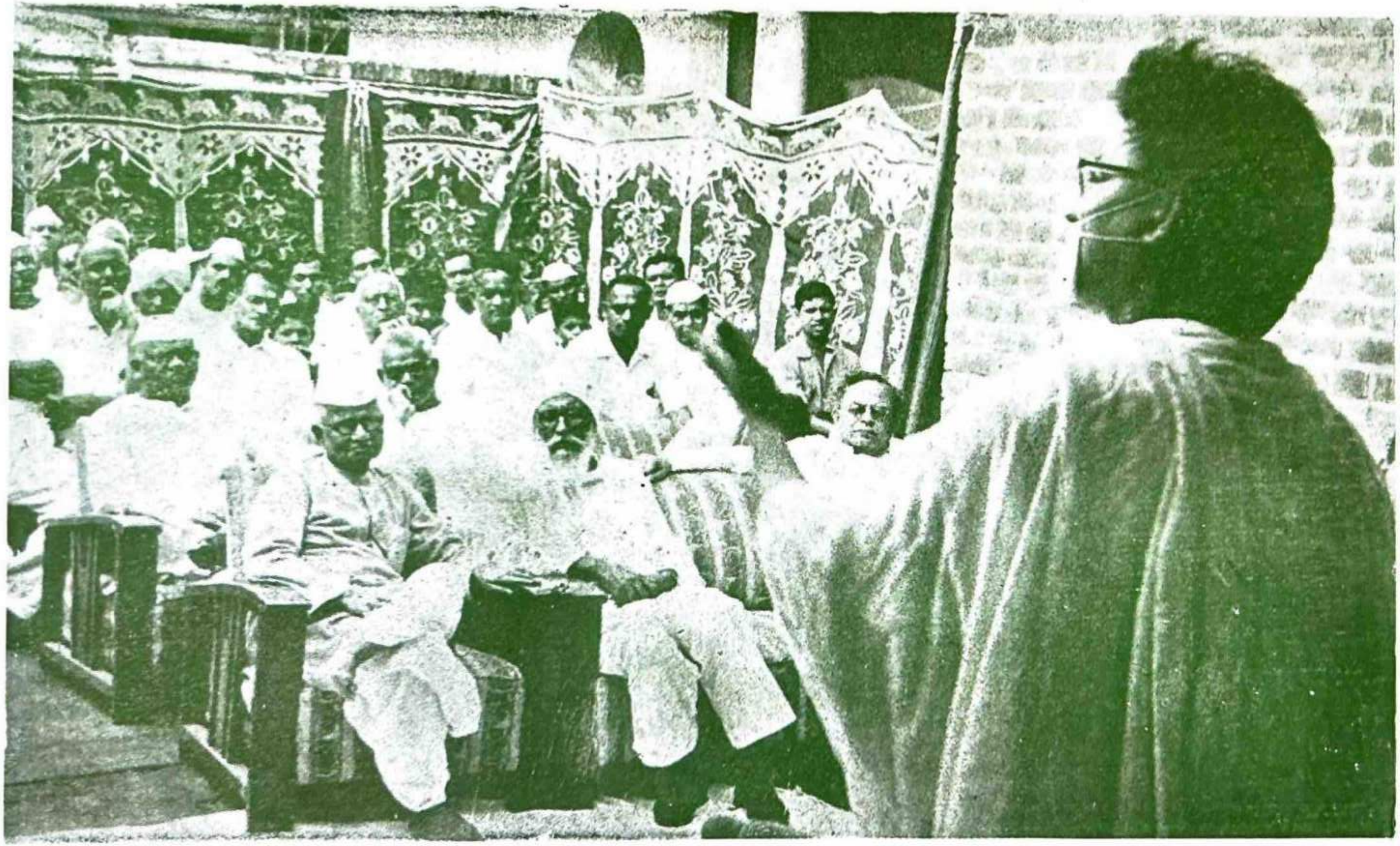

पत्रकार-परिषद् को सम्बोधित करते हुए मुनि जी (बैठे हुए) कांग्रेस महामन्त्री श्री तखतमल जैन, केन्द्रीय मन्त्रीगण एव पत्रकार

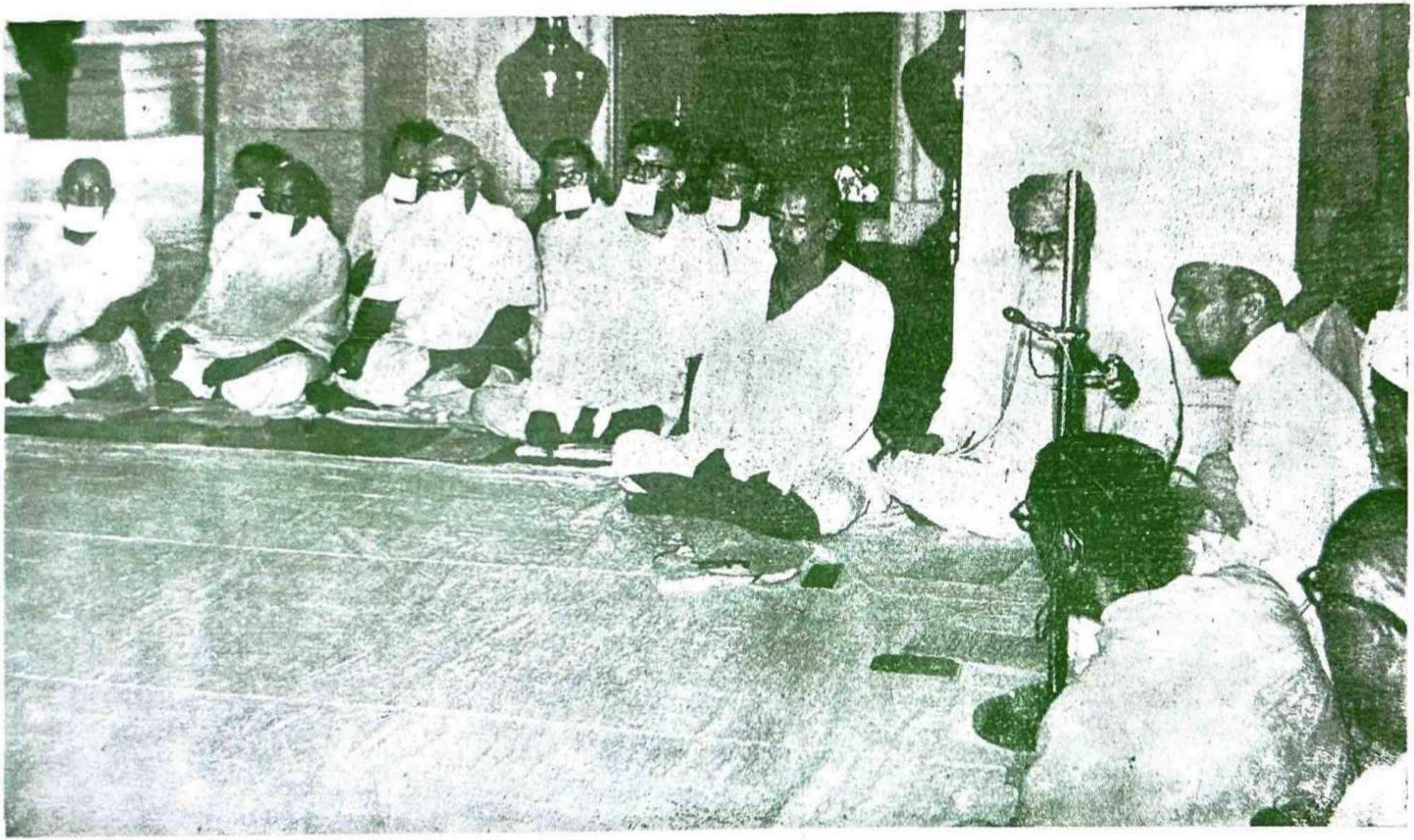

राष्ट्रपति भवन में आयोजित बैठक में (बायें से) मुनि श्री छोटे लाल जी म०, मुनि श्री त्रिलोक चन्द जी म०, मुनि श्री शुक्ल चन्द जी म०, मुनि जी सन्त तुकड़ोजी, काका कालेलकर, श्री उच्छरंग नवल भाई ढेबर आदि

विश्वधर्म सम्मेलन की विषय निर्वाचन समिति की बैठक के अवसर पर मुनिजी, पोलैण्ड, हंगरी और कज़ाकिस्तान के सर्वोच्च धर्मनेता जियाउद्दीन बाबा खनोव, आर्कप्रीस्ट रूसितस्की के साथ

आन्ध्र धर्म सम्मेलन शाखा के सम्बन्ध में विचार गोष्ठी के अवसर पर आन्ध्र के मुख्यमन्त्री श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी, मौलाना पीर अजमेर शरीफ, मुनिजी श्री सुभाग मुनिजी एवं श्री शान्तिप्रिय जी

राष्ट्रपति भवन में विश्वधर्म-सम्मेलन का परिचय देते हुए मुनिजी (बैठे हुए बायें से) मुनि शान्तिप्रिय जी, मुनि श्री शुक्लचन्द जी म०
डा० राजेन्द्र प्रसाद, सन्त तुकड़ों जी, श्री हरिभाऊ उपाध्याय आदि

कलकत्ता में आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर (दायें से) स्वामी सहजानन्द (केरल) श्री रमेश अग्रवाल, मुनिजी, सन्त कृपाल सिंह,
श्री ह्राजेकी ईरान, श्री भावसार वर्मा, उड़िया बाबा (उड़ीसा) और समरसेकर (श्रीलंका)
(अग्रिम पंक्ति में दायें से) कामणार पारसी (ईरान), सेठ आनन्दराज सुराणा, अब्दुल हुसेन-बिन-आनकादिर इस्माइल मलाया।

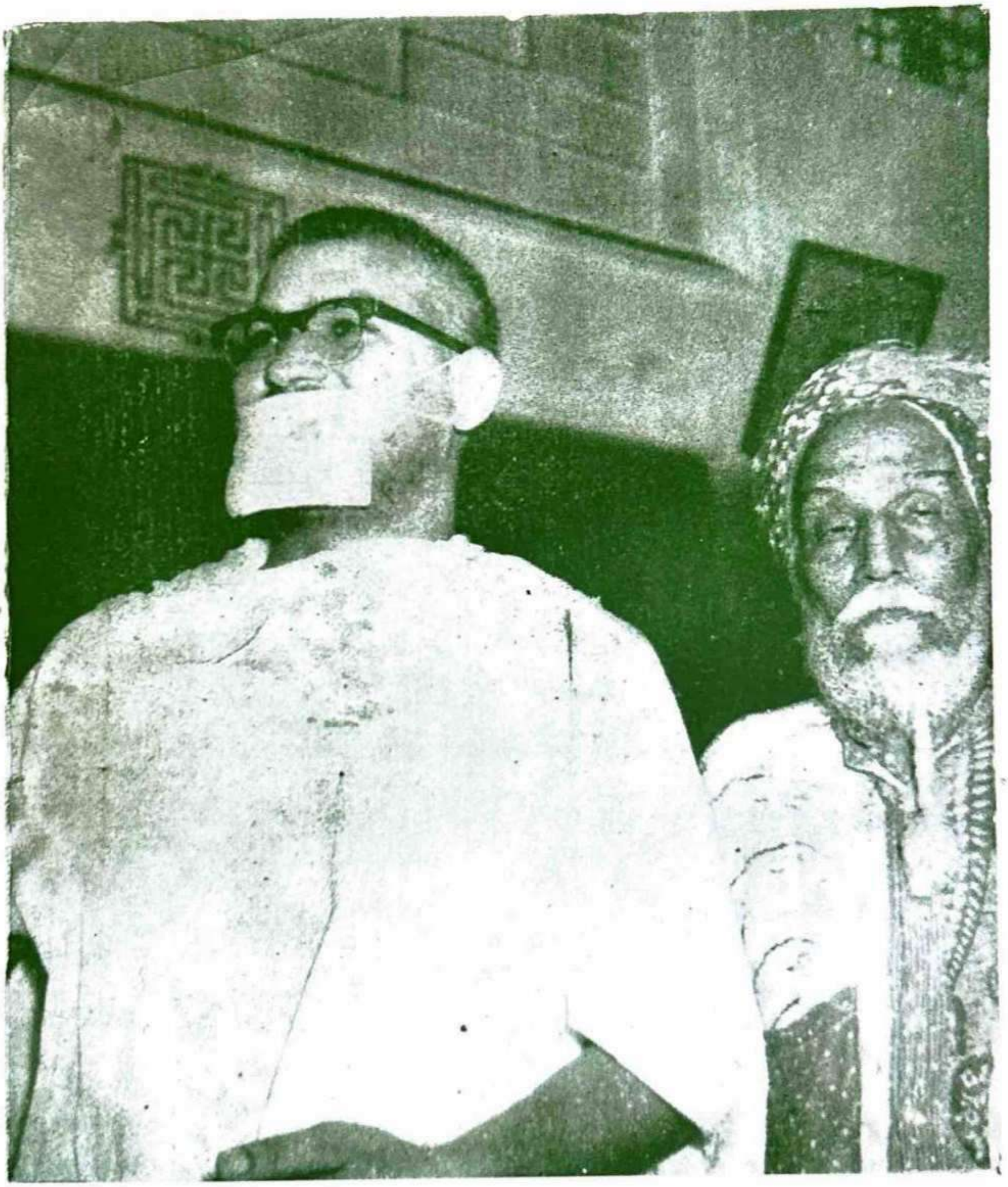

कलकत्ता में दीन दुखी लाल बाबा के साथ मुनिजी

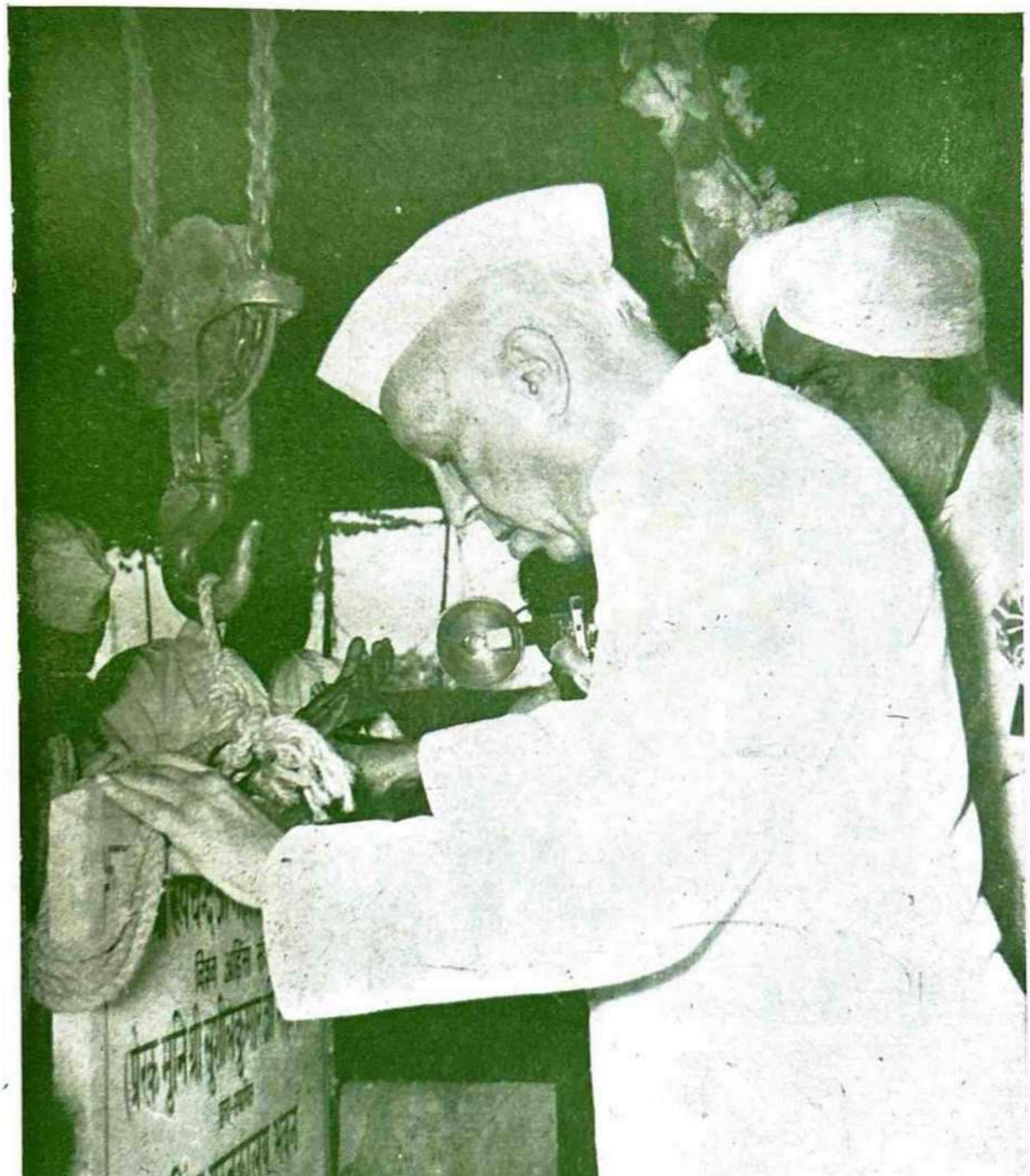

अहिंसा भवन का शिलान्यास करते हुए नेहरु जी

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के साथ विचार-विनमय करते हुए मुनिजी

अहिंसा भवन के शिलान्यास के अवसर पर (बायें से) श्री सुभाग मुनि जी, मुनि जी (प्रार्थनालीन) नेहरू जी, सेठ गोविन्द दास, काका कालेलकर डा० दौलत सिंह कोठारी आदि

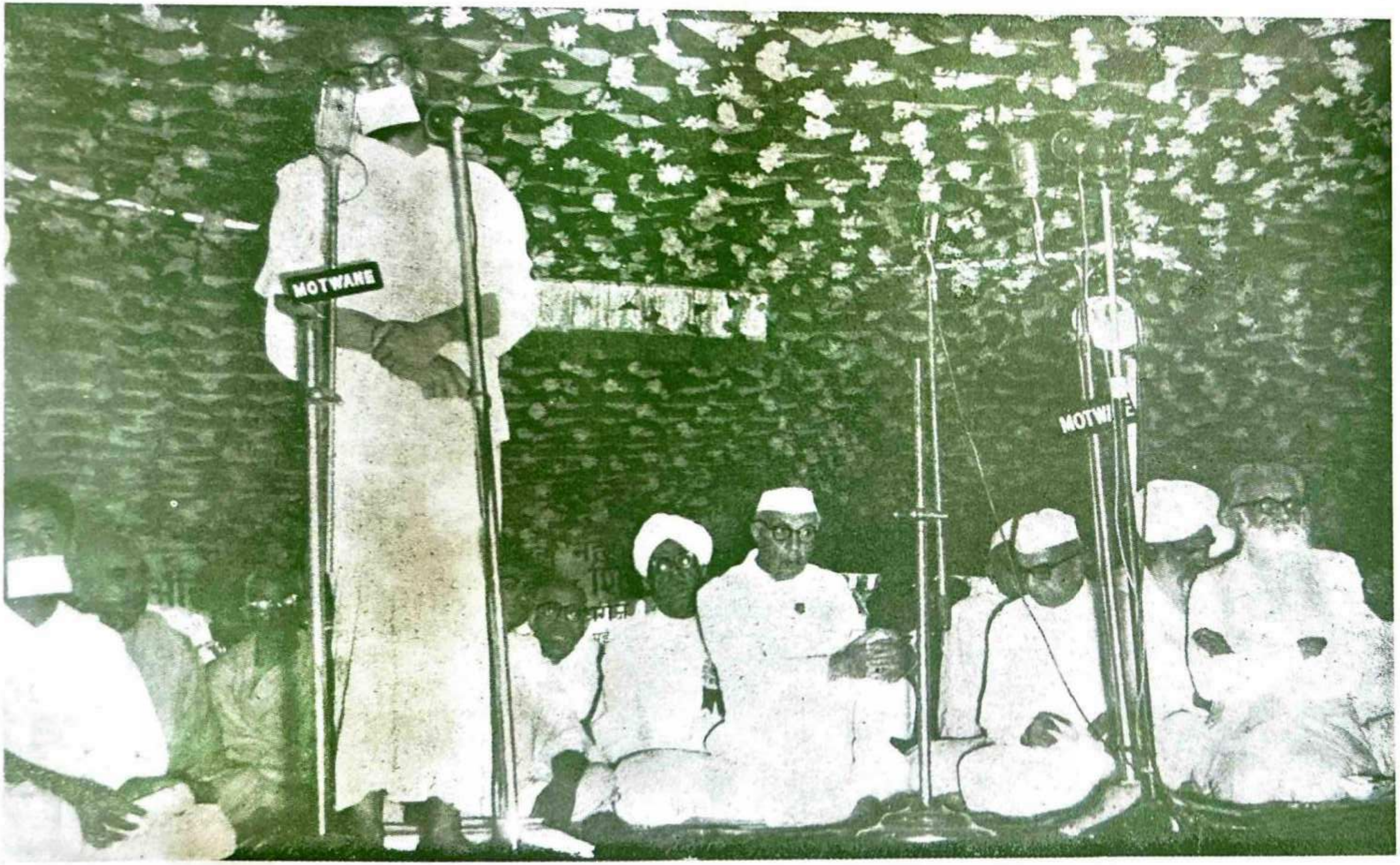


अहिंसा भवन के शिलान्यास के अवसर पर : (बायें से) श्री सुभाग मुनिजी, मुनिजी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सेठ गोविन्ददास और काका कालेलकर

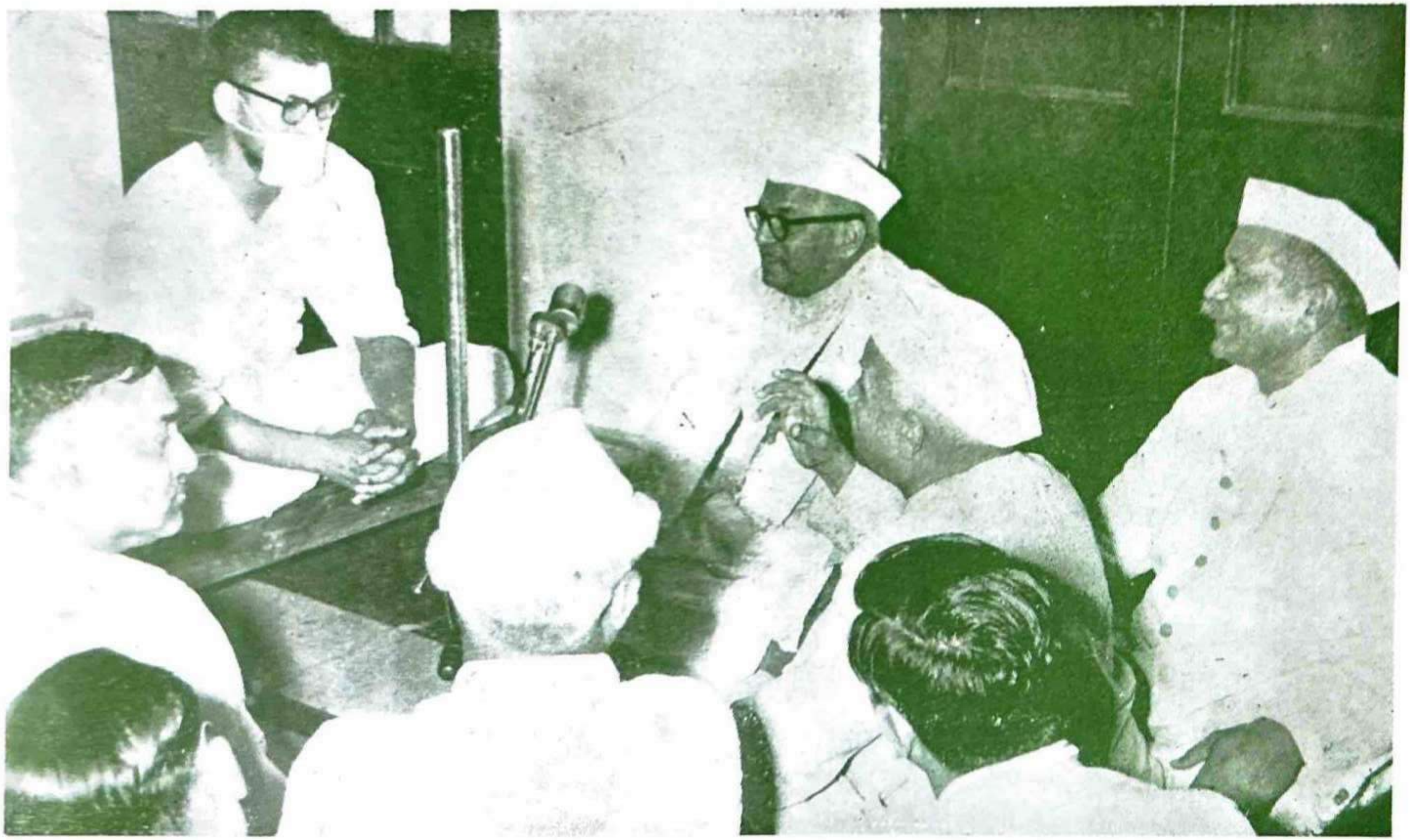

तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम् आयंगार के साथ विचार-विनिमय करते हुए मुनि जी साथ में हैं, सेठ आनन्दराज सुराणा एवं श्री अचलसिंह

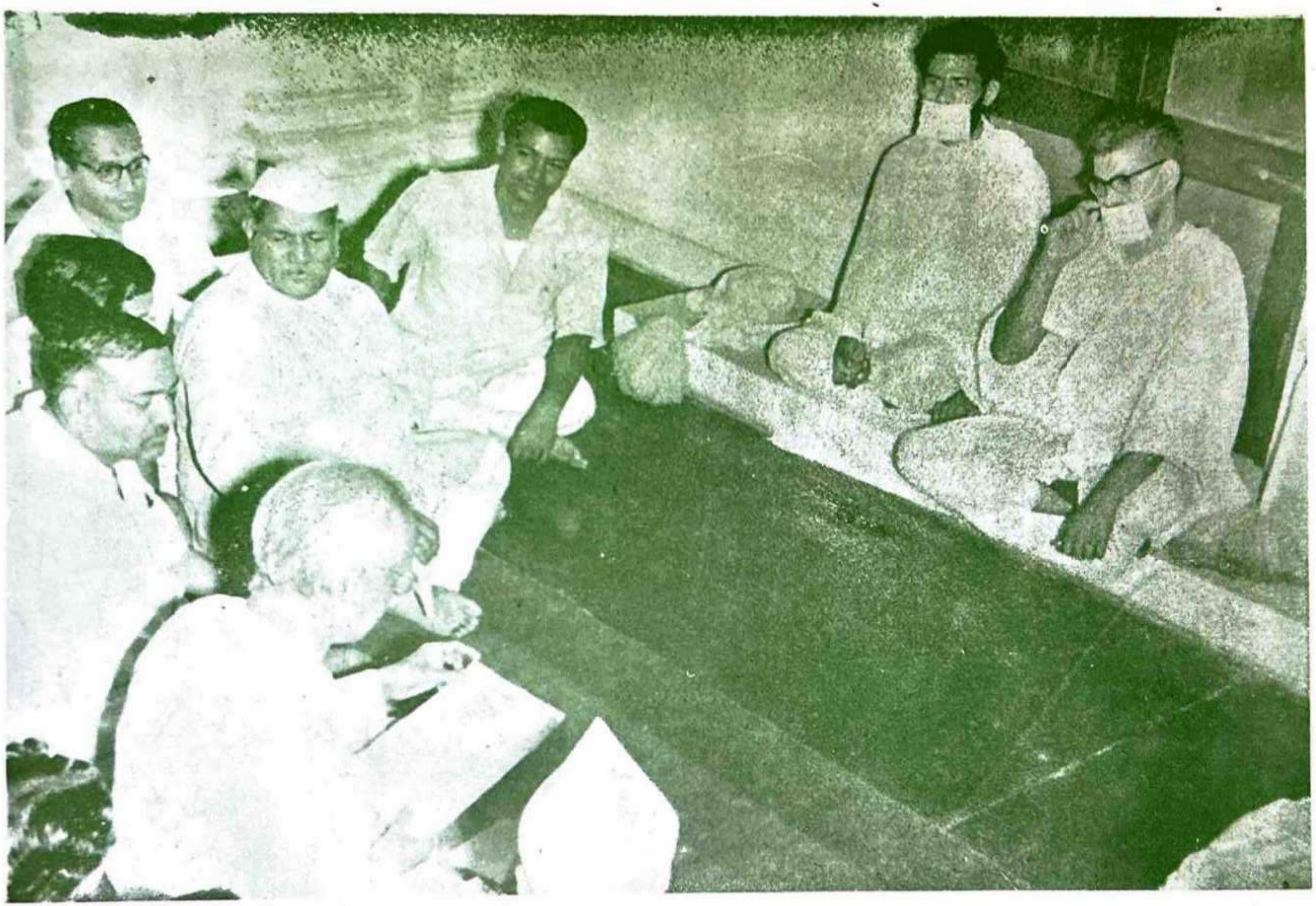

तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् से विश्वधर्म सम्मेलन की रूपरेखा पर बातचीत करते हुए मुनिजी.
साथ में हैं श्री सुभाग मुनि जी

अहिंसा भवन के शिलान्यास के समय पण्डित जवाहरलाल नेहरू से विचार-विनिमय करते हुए मुनि जी

अहिंसा भवन के शिलान्यास के अवसर पर (वायें से) मुनिजी, डा० बूलचन्द और संसद सदस्य सेठ गोविन्ददास

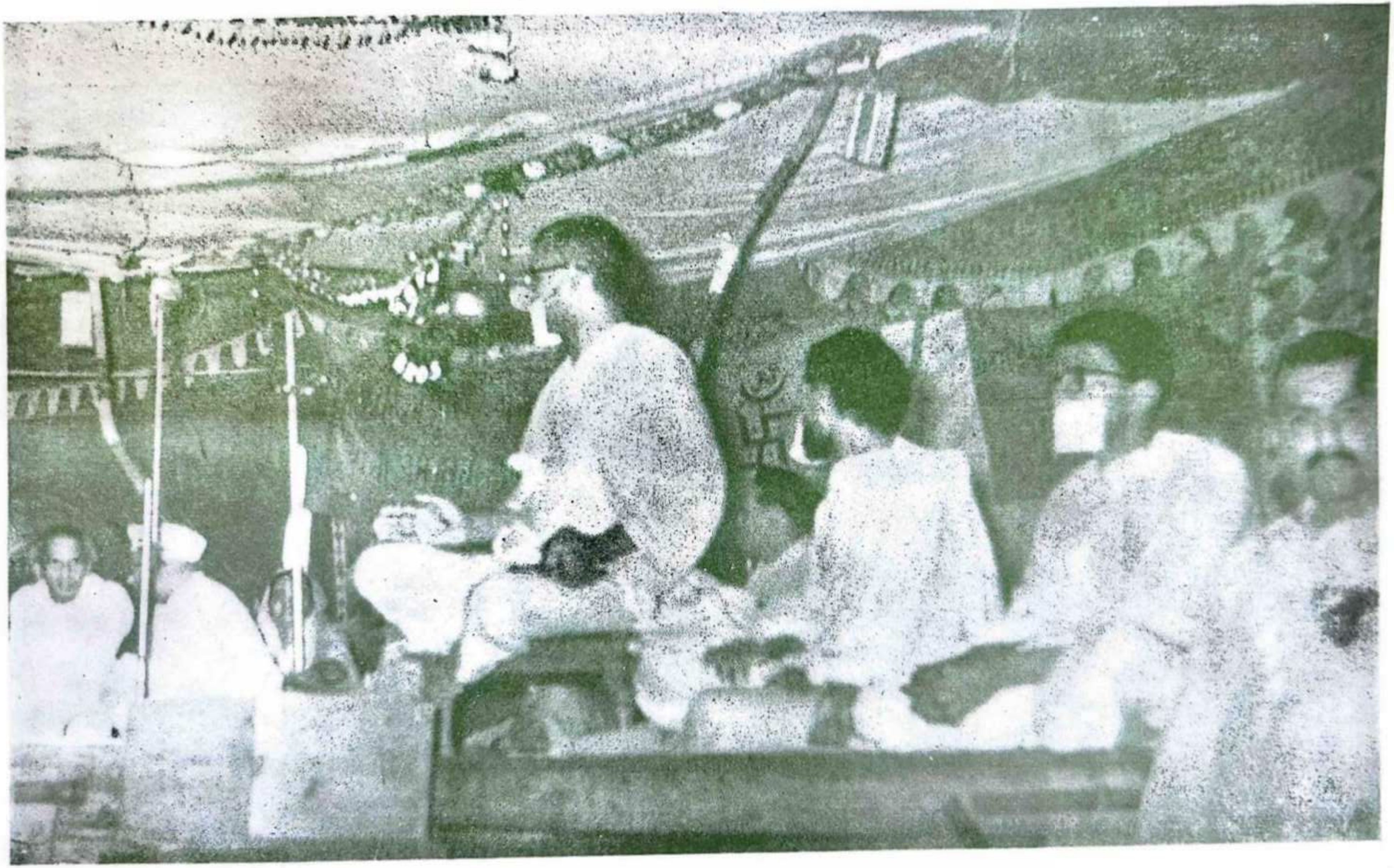

महावीर जयन्ती के अवसर पर (बाय से) तत्कालीन प्रतिरक्षामंत्री श्री वी० के० कृष्ण मेनन, मुनि जी, श्री सुभाग मुनि जी आदि

पंजाब के तत्कालीन मुख्यमंत्री सरदार प्रताप सिंह कैरो से डेराबसी जैन स्कूल के सम्बन्ध में बातचीत करते हुए मुनि जी

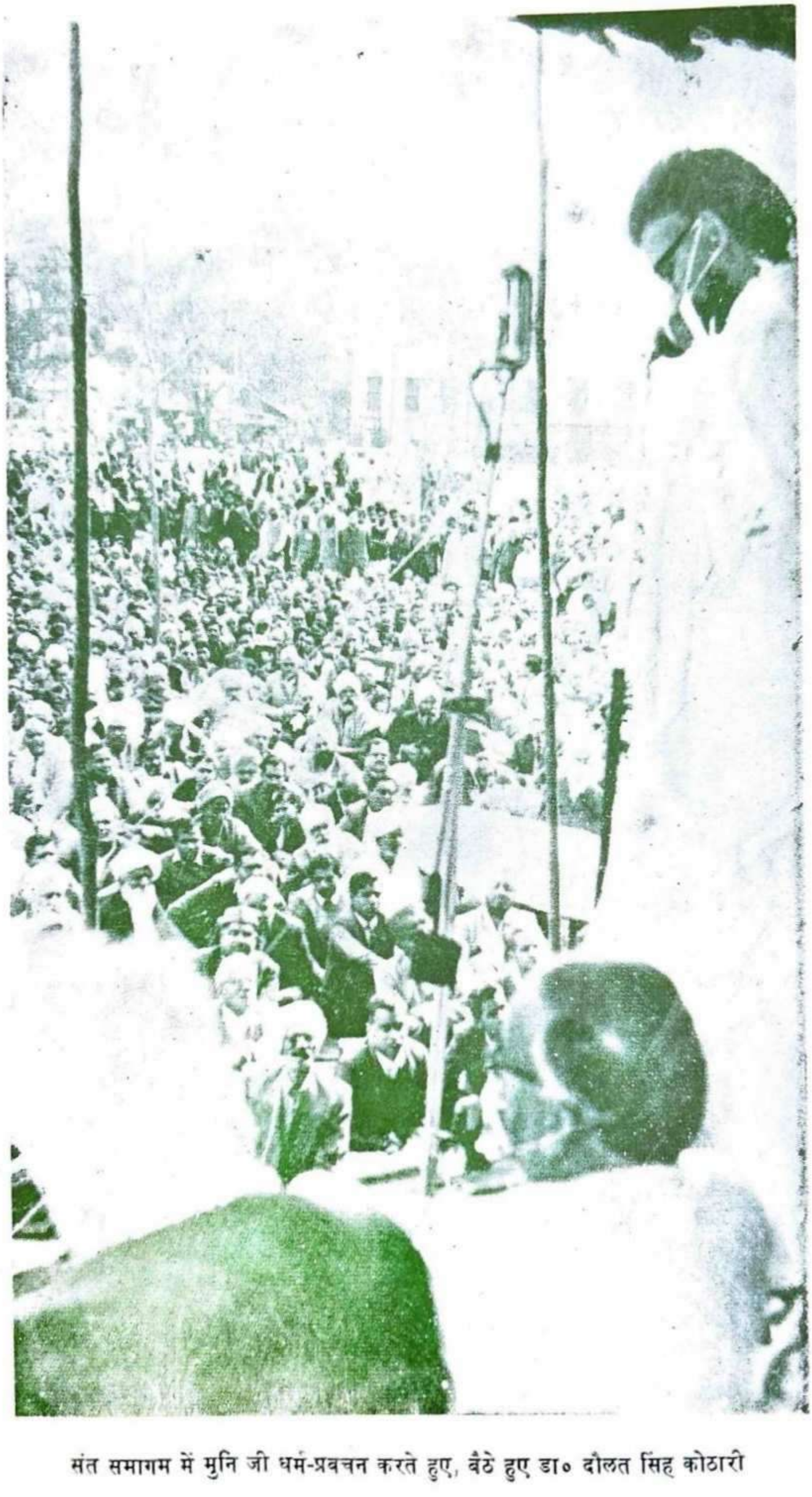

संत समागम में मुनि जी धर्म-प्रवचन करते हुए, बैठे हुए डा० दौलत सिंह कोठारी

धर्मनेताओं से मिलन (बायें से) महामण्डलेश्वर श्री पूर्णानन्द जी म०, मेजर जनरल मजहरी (ईरान), मुनिजी, मुनि हरिमिलापी जी आदि

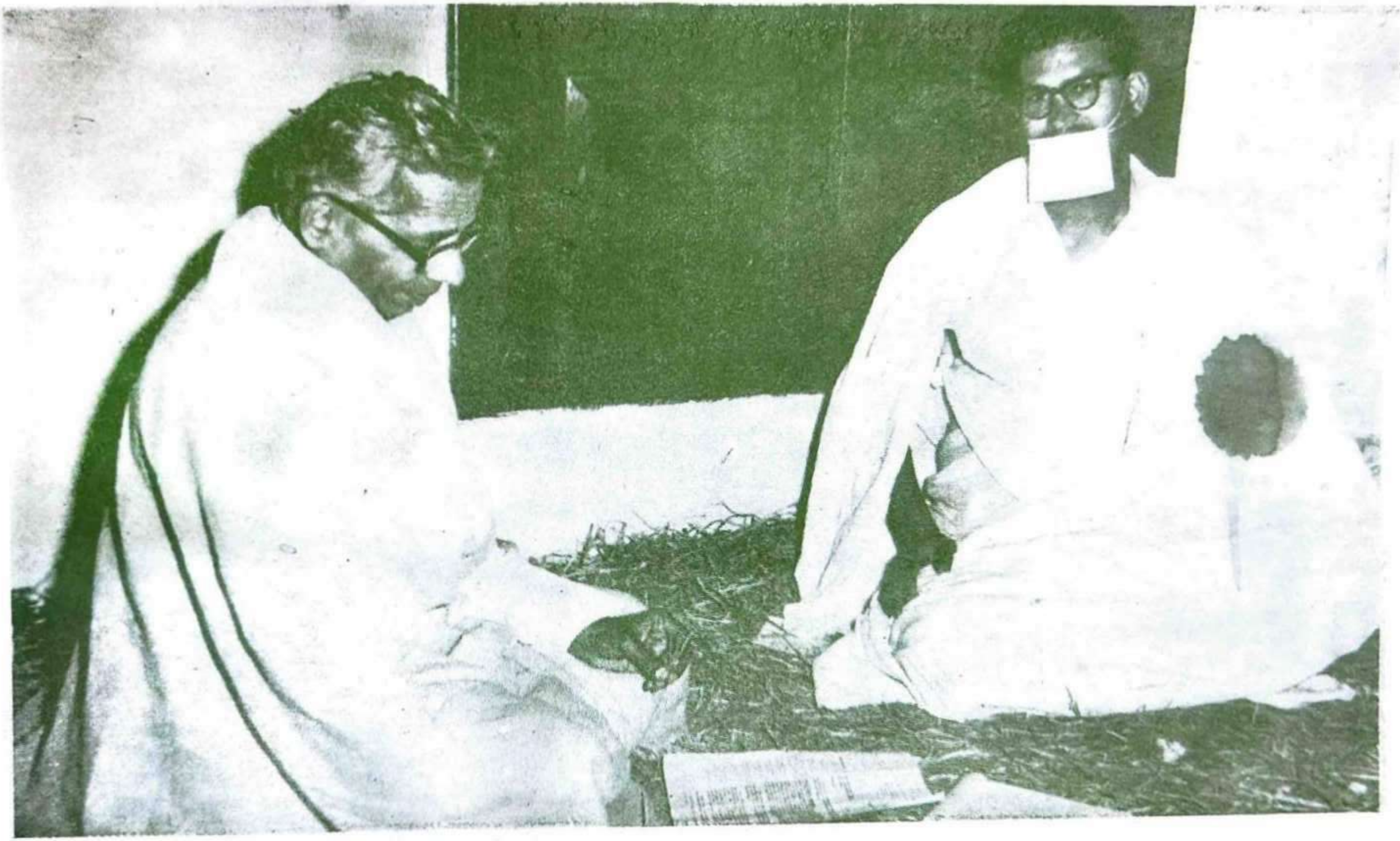

श्री जैनेन्द्र कुमार के साथ दार्शनिक चर्चा में लीन मुनि जी

गोरक्षा आन्दोलन के जुलूस के संयोजक मुनिजी एवं करपात्रीजी, जगद्गुरु शंकराचार्य तथा अन्य धर्म नेतागण

पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार प्रताप सिंह कैरो मुनि जी का चरण-स्पर्श करते हुए

स्वर्गीय ारम तपस्वी मुनिश्री रूपचन्द जी म० के १२५ वें दीक्षा दिवस के अवसर पर मुनिजी, श्री सुभाग मुनिजी,
तत्कालीन शिक्षामन्त्री डा० कालूलाल श्रीमाली एवं सेठ गोविन्द दास

धर्माचार्यों के बीच (बायें से) स्वामी भास्करानन्द, महेन्द्र भिक्षु, मुनि जी, वीरा महाथेरा, थाईलैण्ड, वियतनाम एवं बंगलादेश के बौद्ध भिक्षुगण तथा महन्त शुकदेव नाथ

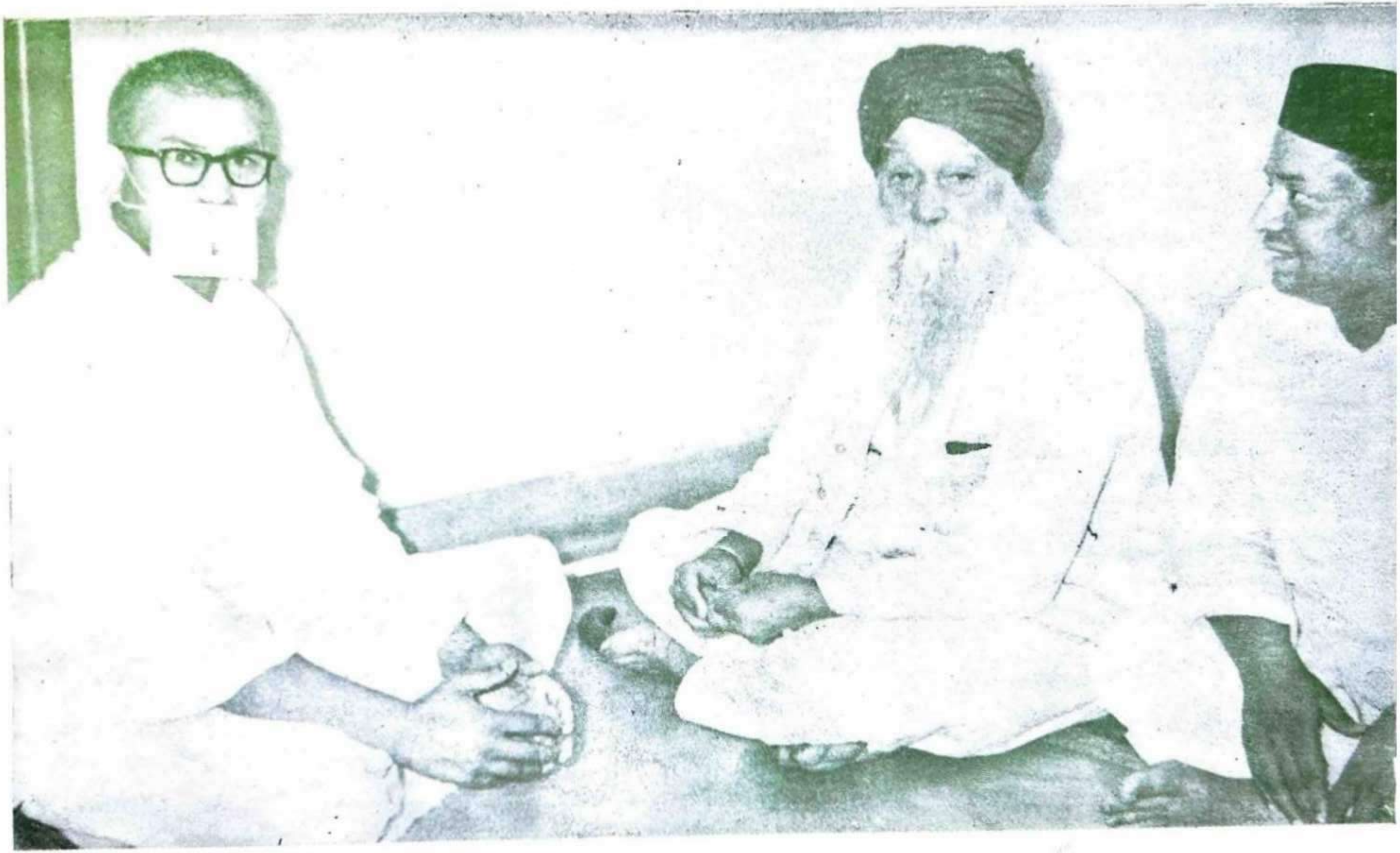

अकाली नेता मास्टर तारा सिंह के साथ विचार-विमर्श करते हुए मुनि जी

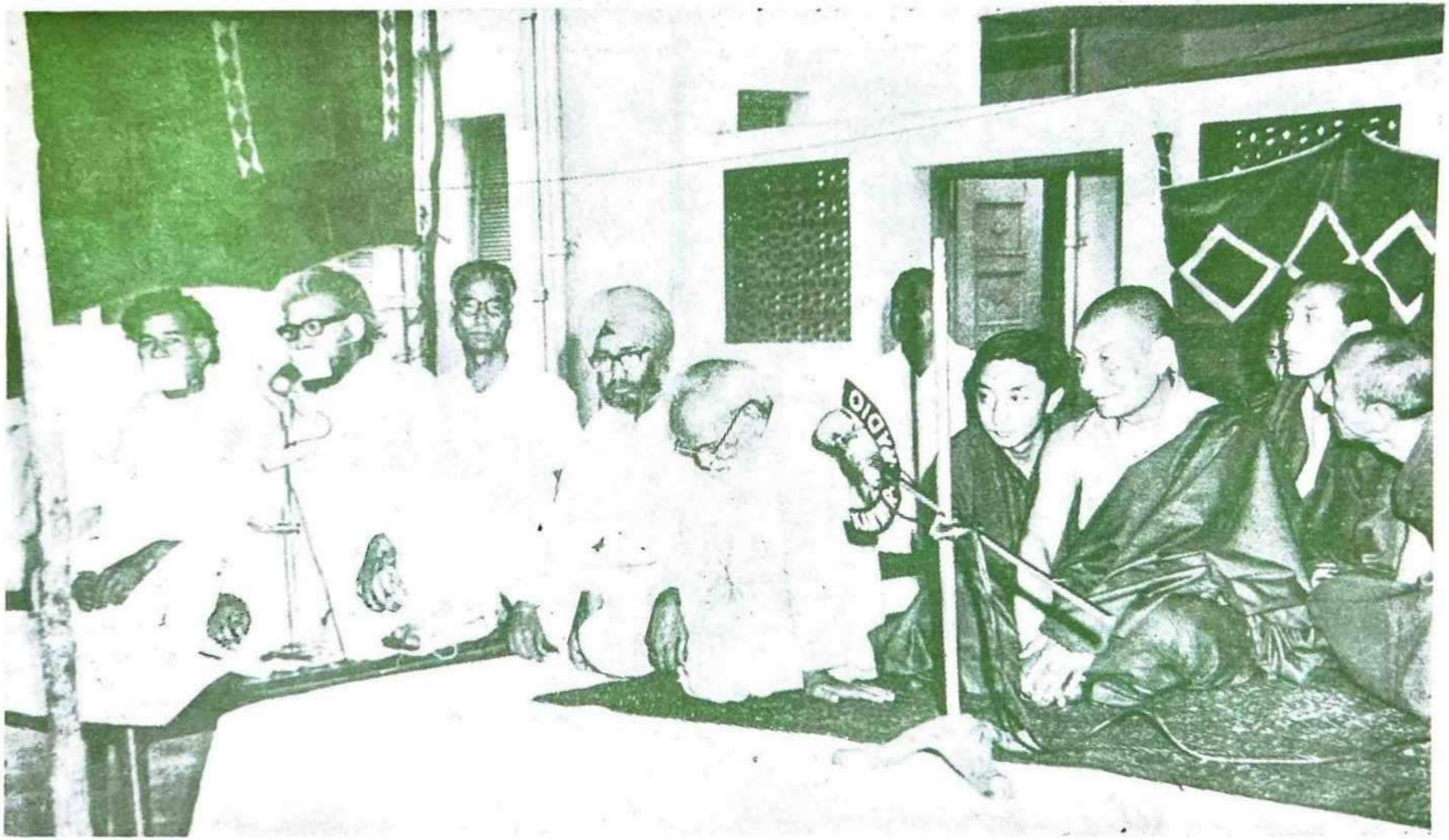


विभिन्न देशों के सन्तों के साथ (दायें से) कुशिक बकुला, दलाई लामा के बड़े भाई, पण्डित सुन्दर लाल, सरदार मान सिंह, मुनि जी एवं श्री सुभाग मुनिजी

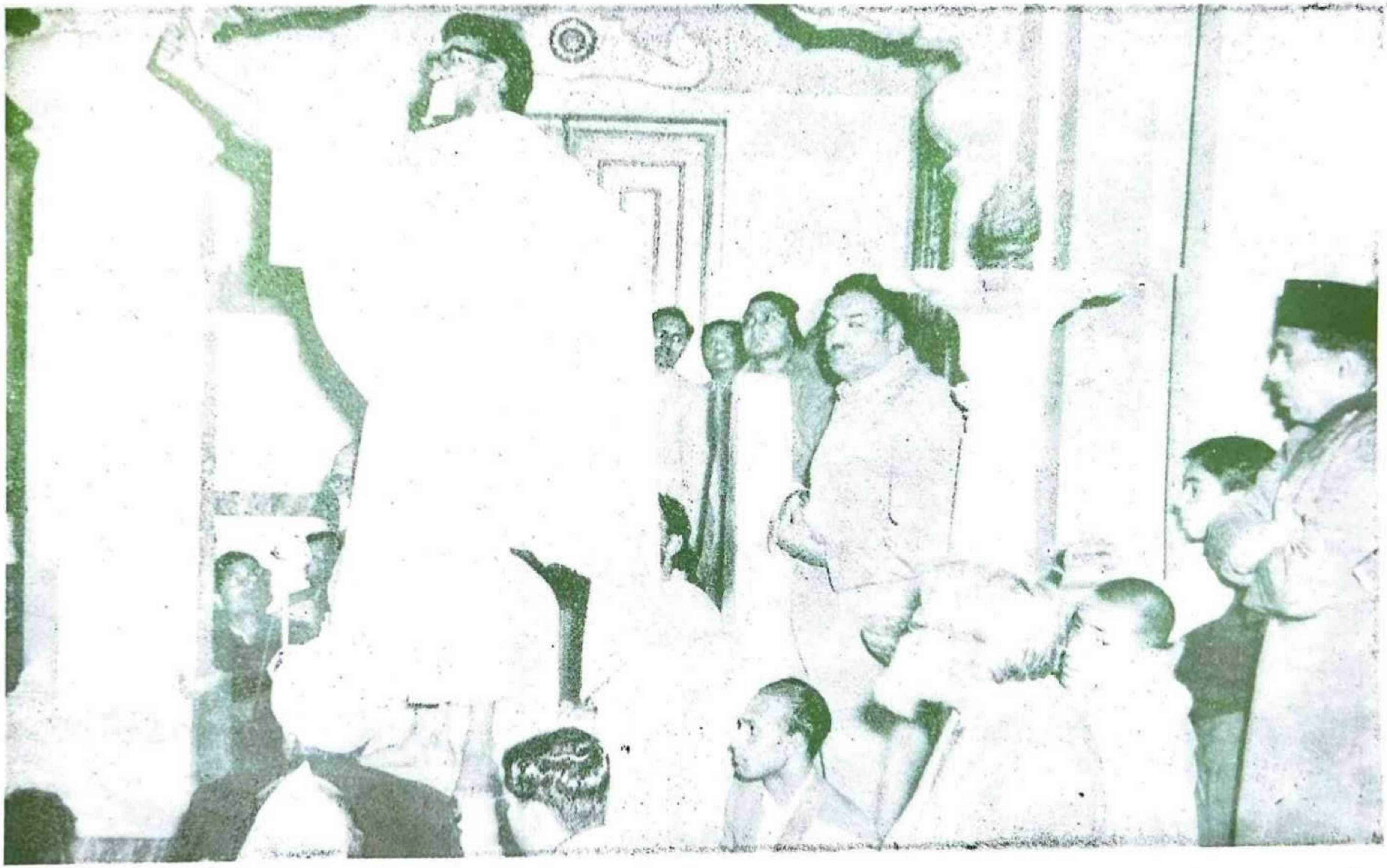

बिरला मन्दिर में आयोजित अपने अभिनन्दन के अवसर पर मुनि जी जनता को सम्बोधित करते हुए, बैठे हुए काका कालेलकर, आर्यवंश महाथेरा आदि

गोरक्षा आंदोलन में भाग लेने वाली गोभक्त जनता, सन्तजन एवं मुनि जी

अणुव्रत आन्दोलन मैत्री-दिवस समारोह में बोलते हुए मुनिजी (बैठे हुए) मुनि महेन्द्र कुमार जी, मुनि नगराज जी, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद और श्रीमती मनमोहिनी सहगल

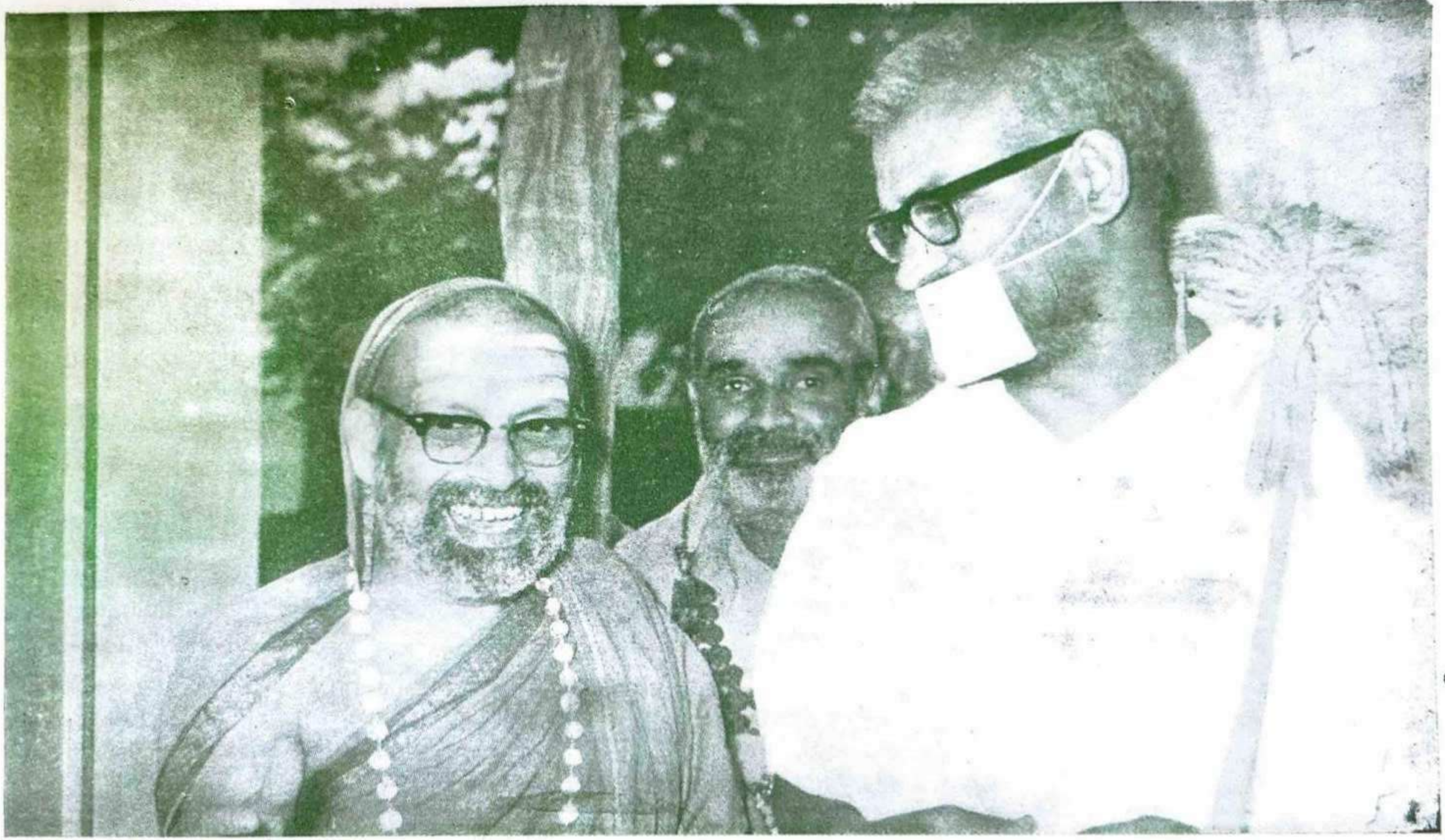

गोरक्षा आन्दोलन के अवसर पर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रृंगेरी एवं पुरीपीठाधीश्वर के साथ विचार-विनिमय करते हुए मुनि जी

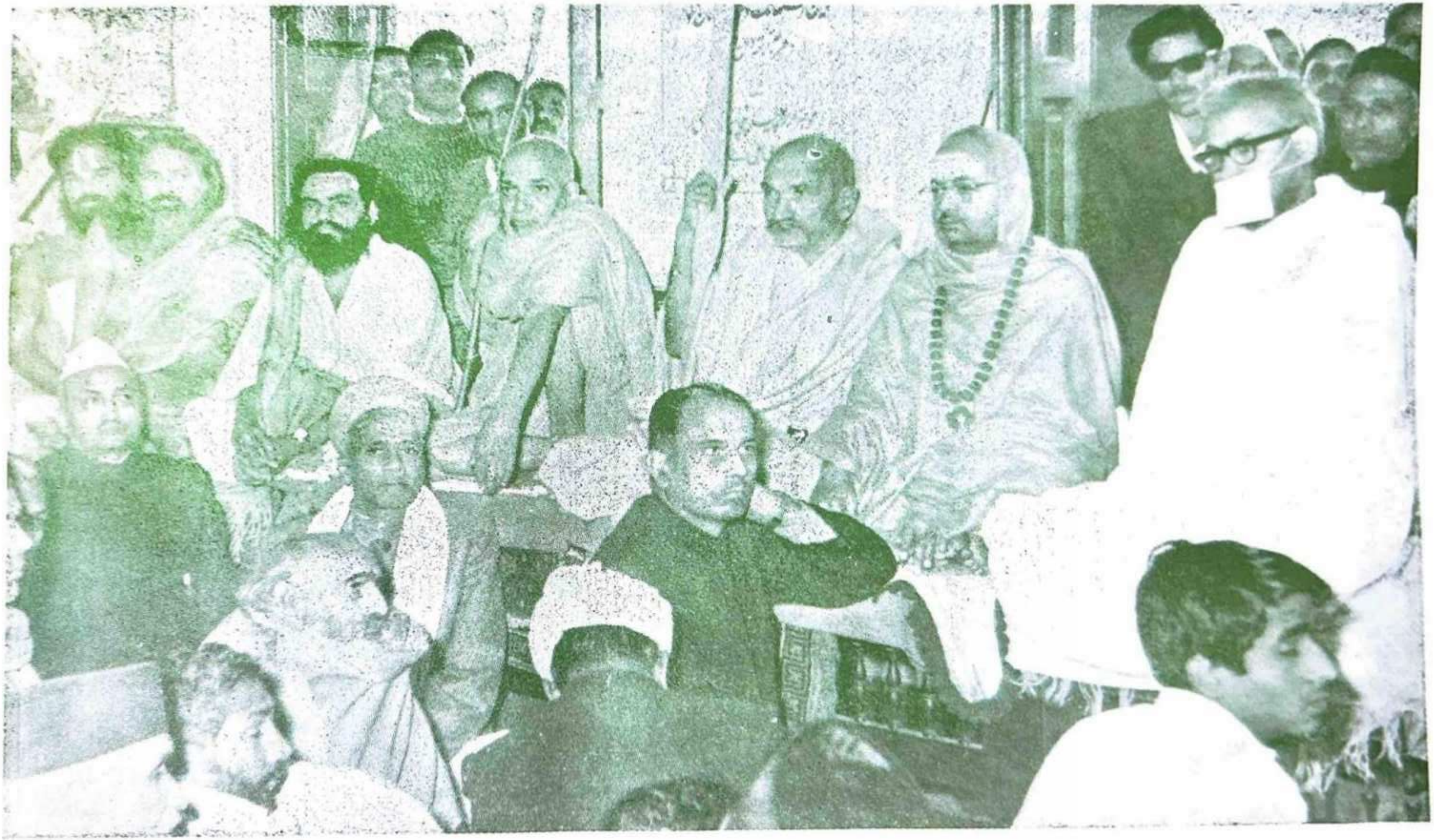

गोरक्षा आन्दोलन के अवसर पर मुनि जी द्वारा किये गये अनशन को खोलने के अवसर पर (दायें से) मुनि जी, शंकराचार्य द्वारिकापीठ, जगद्गुरू शंकराचार्य बद्रीनाथ पीठ, स्वामी करपात्री जी म० आदि संतगण

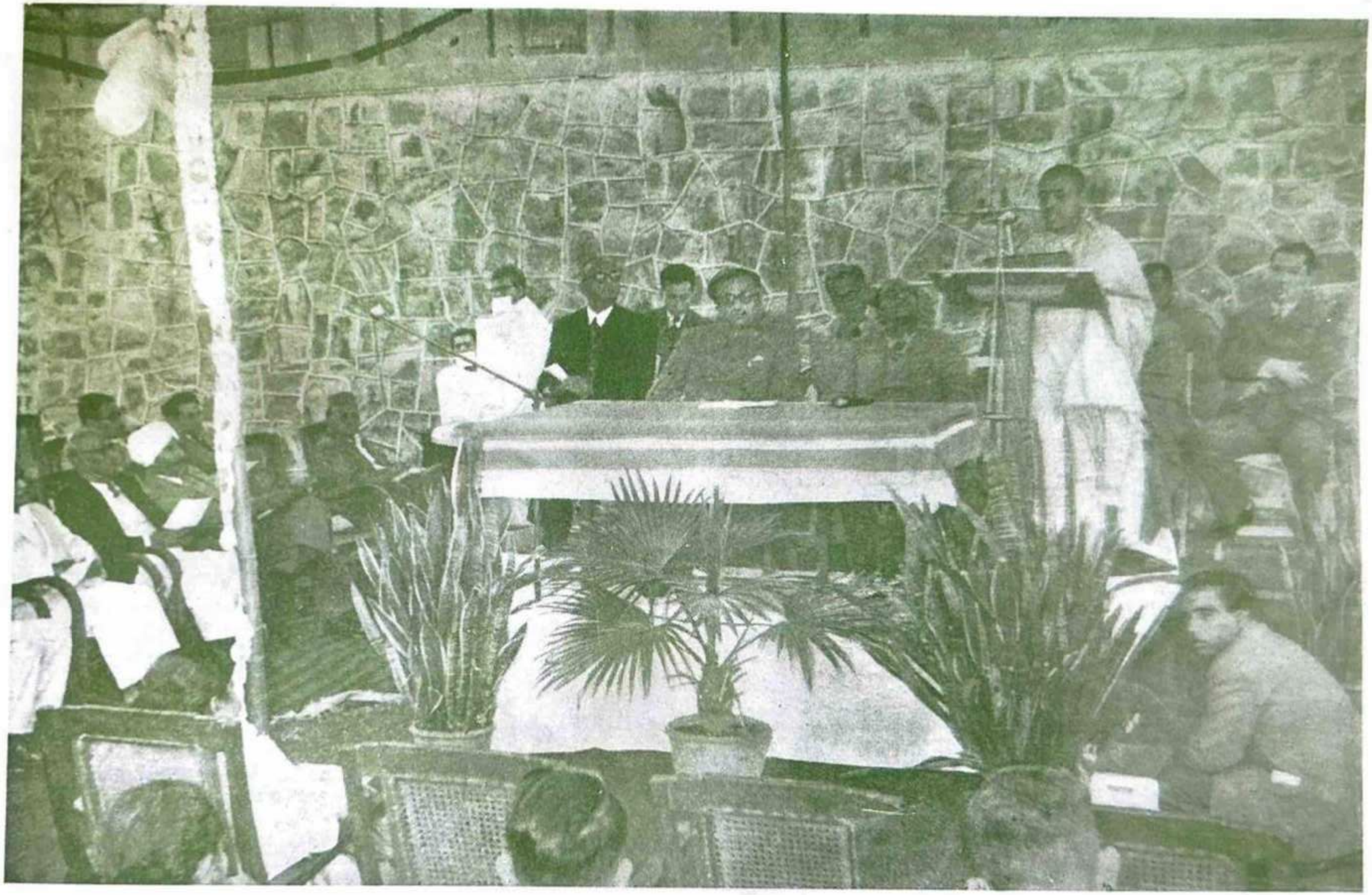

विचारगोष्ठी में श्रीलंका के प्रधानमन्त्री श्री भण्डारनायके, आर्यवंश महाथेरा, केन्द्रीय मन्त्रीगण, मुनिजी एवं विभिन्न देशों के राजदूत, सन् १९५८

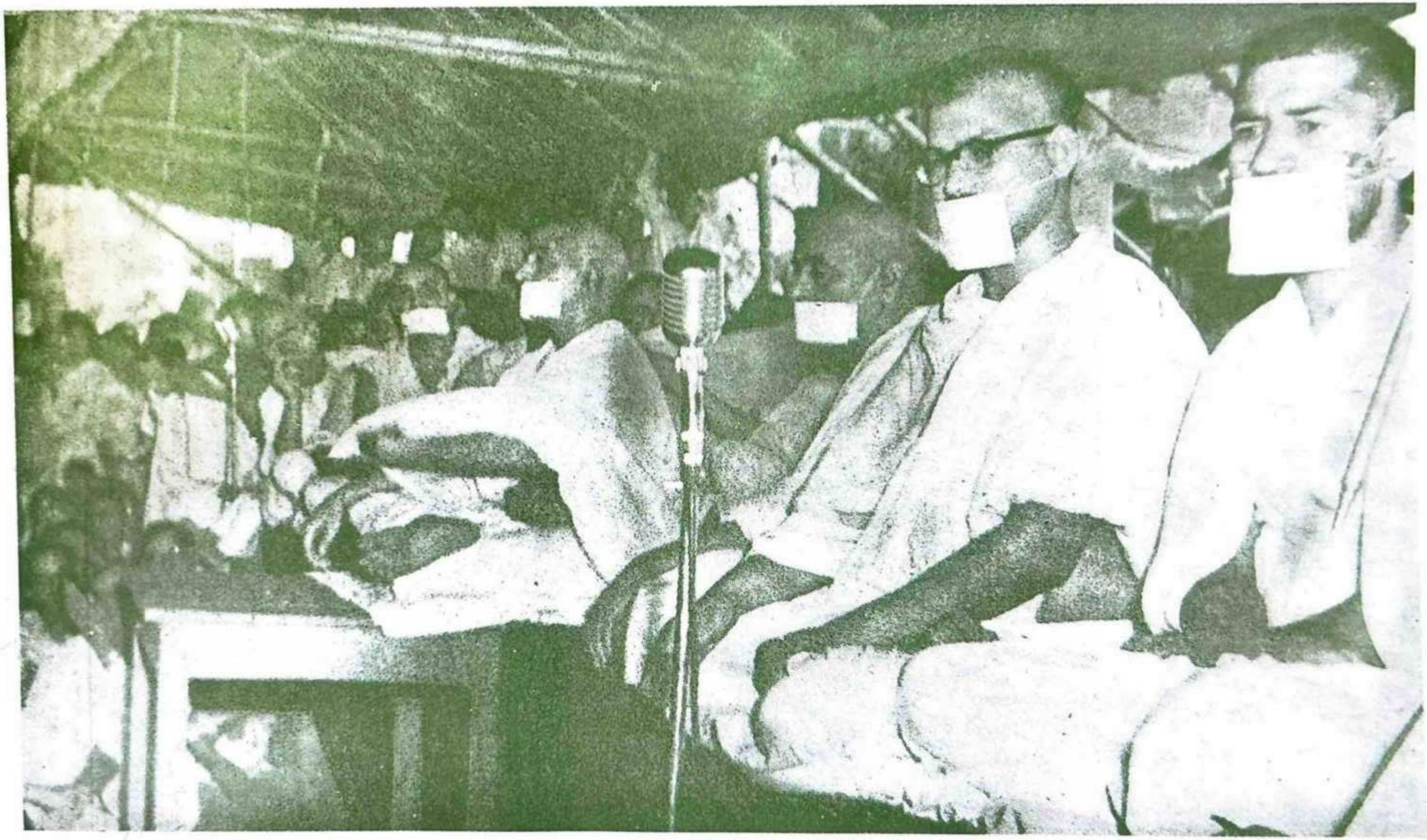

सामूहिक संवत्सरी-महोत्सव के अवसर पर आचार्य तुलसी के साथ मुनि जी और श्री सुभाग मुनि जी

तृतीय विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर (दायें से) मुनि जी, स्वामी प्रेमानन्द, प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री, गृहमंत्री श्री गुलजारी लाल नन्दा एवं श्री मोरारजी देसाई आदि

तृतीय विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर (बायें से) मुनि जी, श्री सुभाग मुनि जी और दिगम्बराचार्य श्री देशभूषण जी महाराज

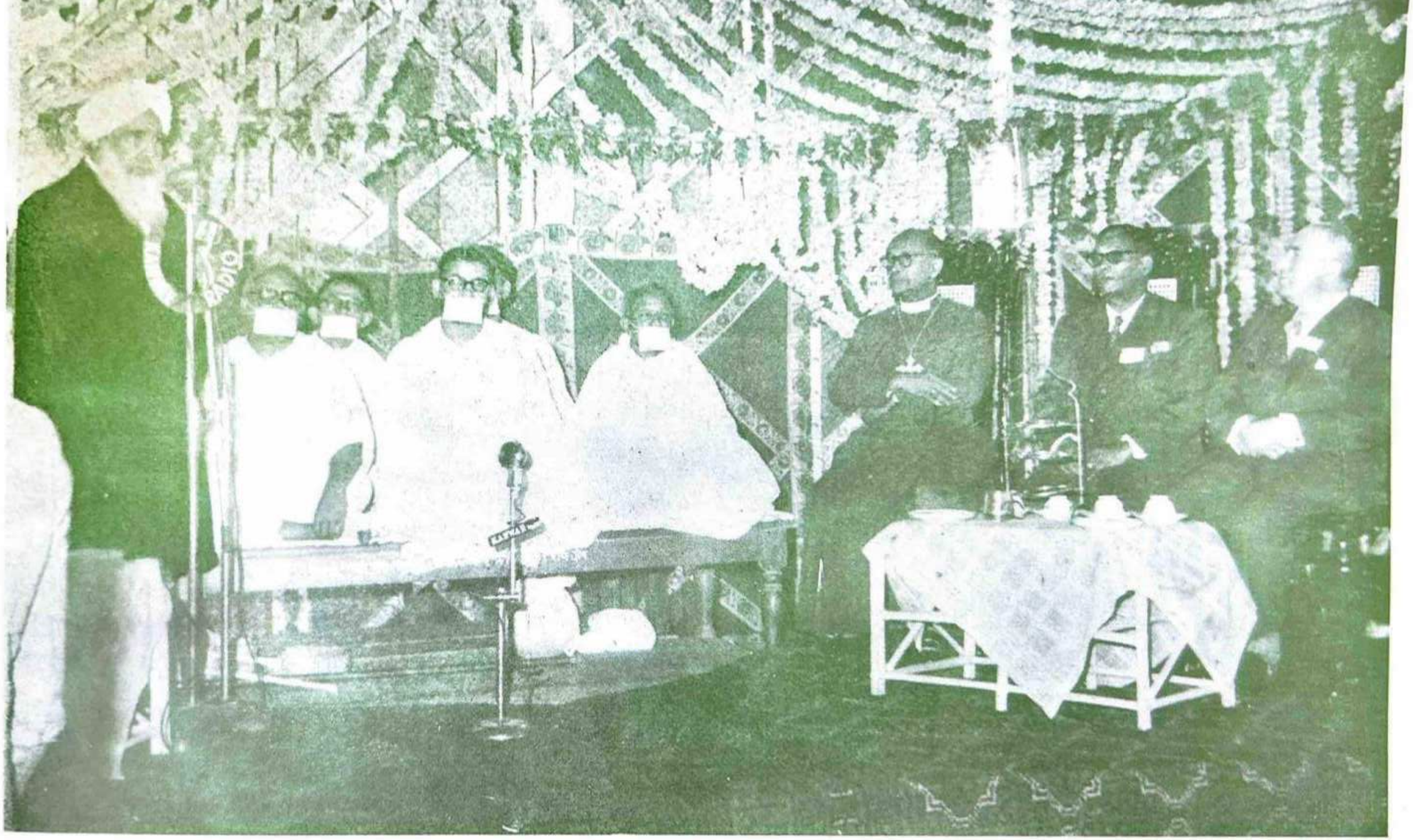

रोमन कैथोलिक धर्मनेताओं के साथ विचार-विनिमय के अवसर पर (बायें से) सन्त कृपाल सिंह जी, श्री विमल मुनिजी, मुनिजी, भण्डारी श्री ज्ञानमुनि तथा इंगलैण्ड, फ्रांस और कनाडा के धर्म प्रतिनिधि

कश्मीर की बर्फीली घाटियों में श्री सुभाग मुनि जी एवं मुनि जी

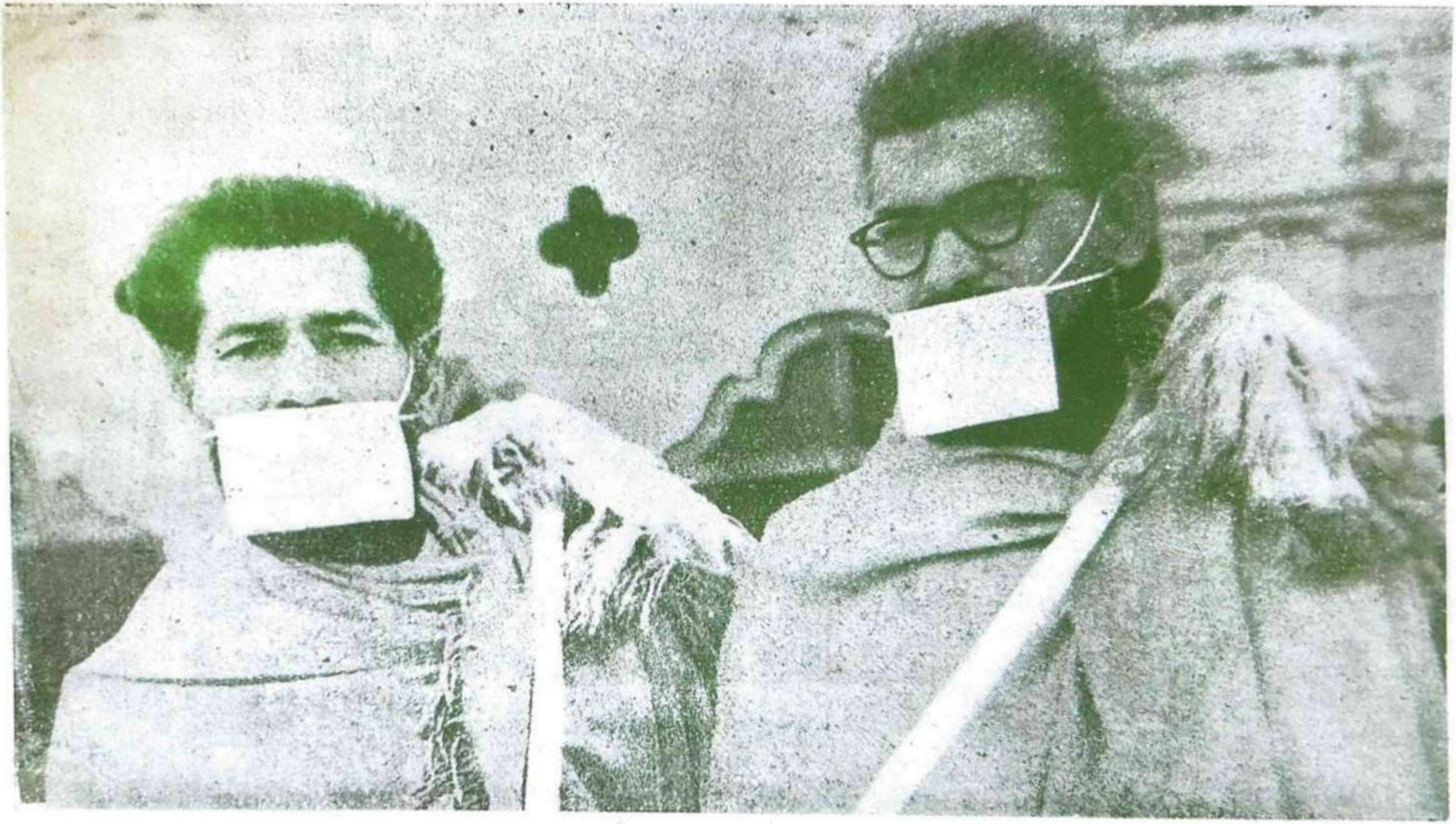

कश्मीर की यात्रा के दो सहयात्री श्री सुभाग मुनि जी एवं मुनि जी

काश्मीर धर्म सम्मेलन के अवसर पर (दायें से) श्री सुभाग मुनिजी, शेख अब्दुल्ला, मुनिजी, स्वामी श्रीचन्द, चिनार, अफ़जलबेग, मुफ्ती आजम काश्मीर आदि धर्म नेतागण

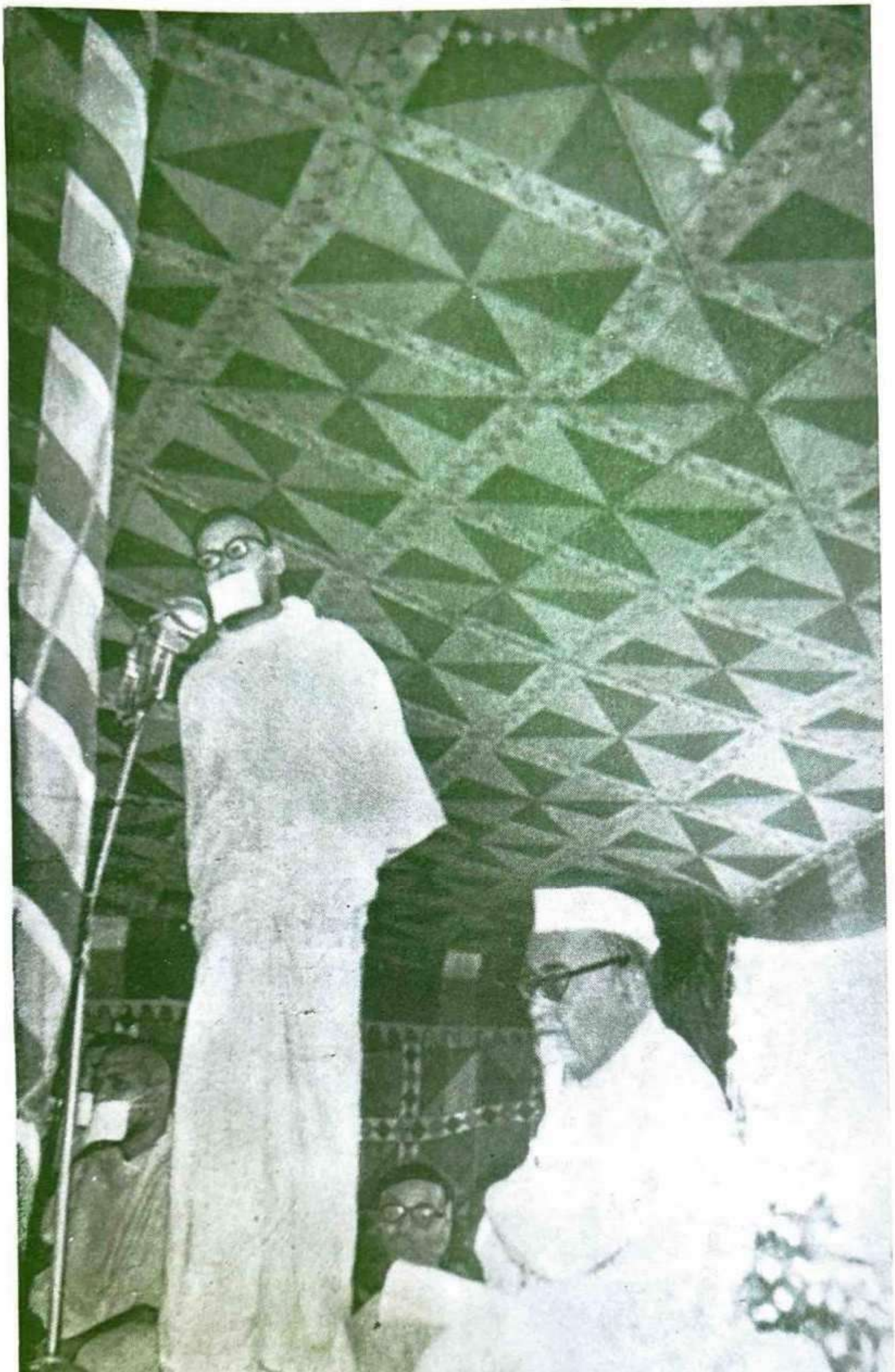

कश्मीर के लिए विदाई समारोह के अवसर पर तत्कालीन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन के साथ मुनि जी

मुनि जी से मंत्रणा करते हुए लक्समबर्ग सन् १९७०

मुनिजी विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए आये हुए देशी-विदेशी धर्म प्रतिनिधियों के बीच

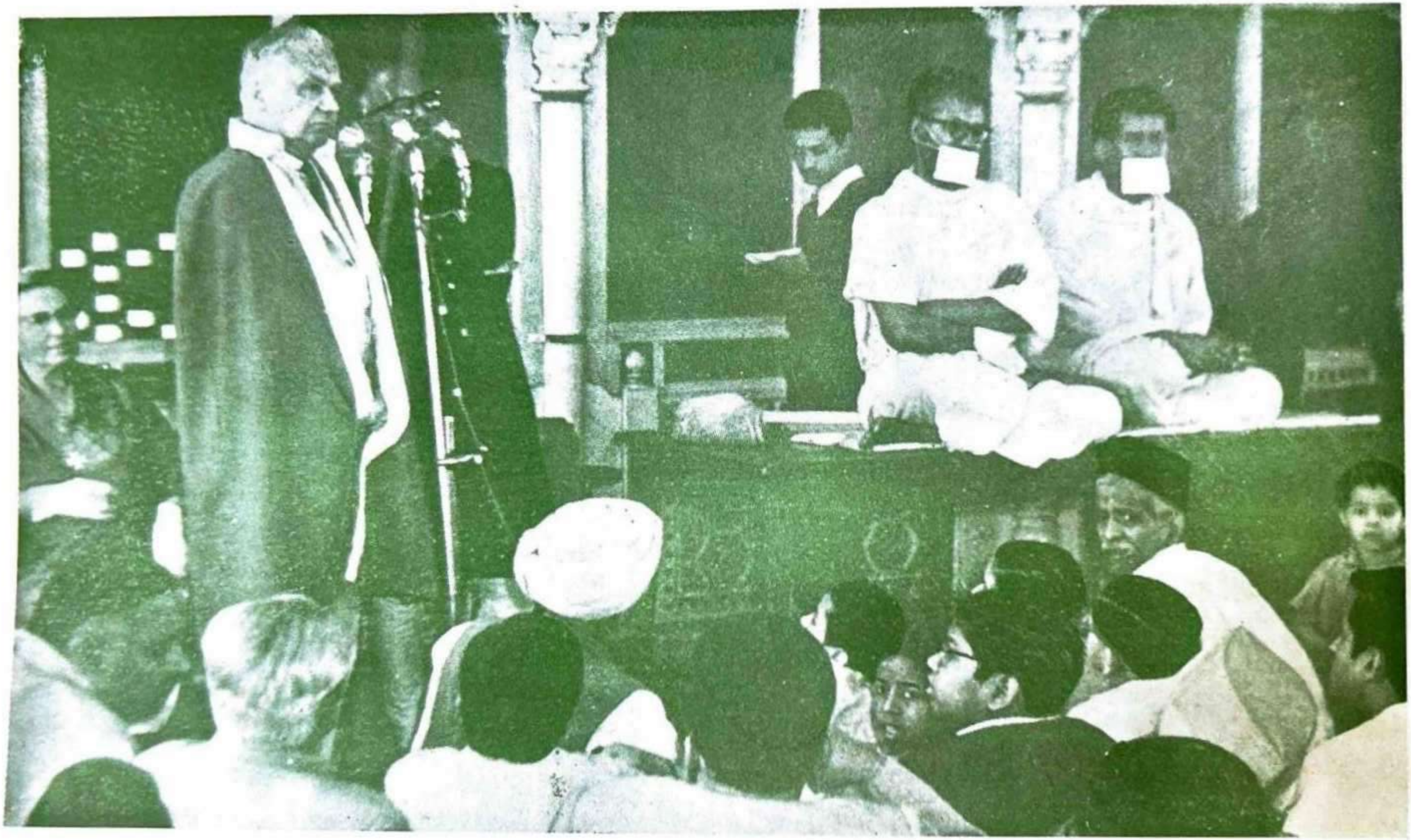

बैरन ब्लमबर्ग ईसाई जगत् द्वारा मुनि जी को प्रदत्त उपाधि से सम्मानित कर रहे हैं

विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर जन समुदाय को उद्बोधित करते हुए मुनि जी

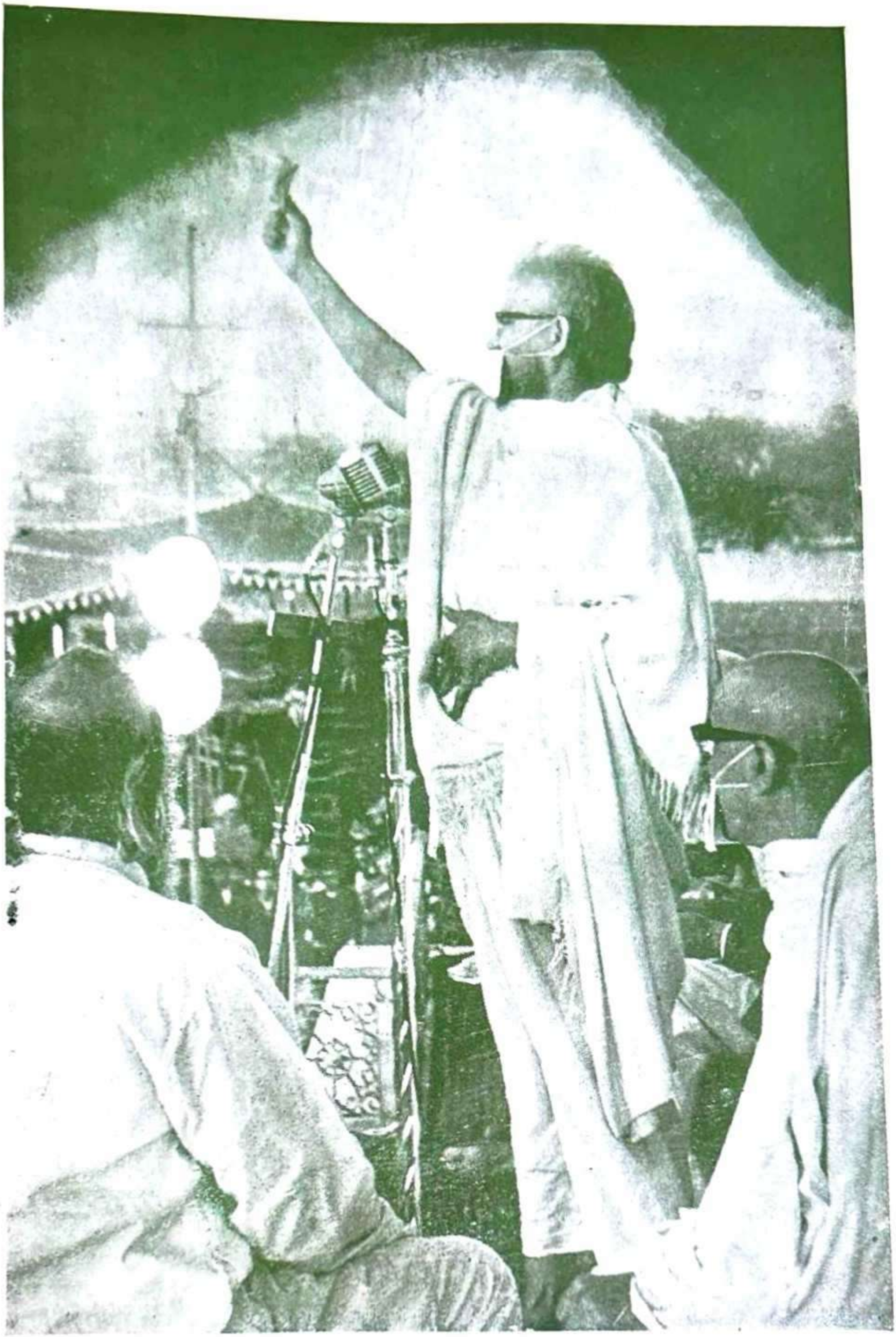

चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर जनमत का आह्वान करते हुए मुनि जी साथ में उपाध्याय कवि श्री अमर मुनि जी म०

चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर सीमांत गांधी खान अब्दुल गफ्फार के साथ मुनि जी

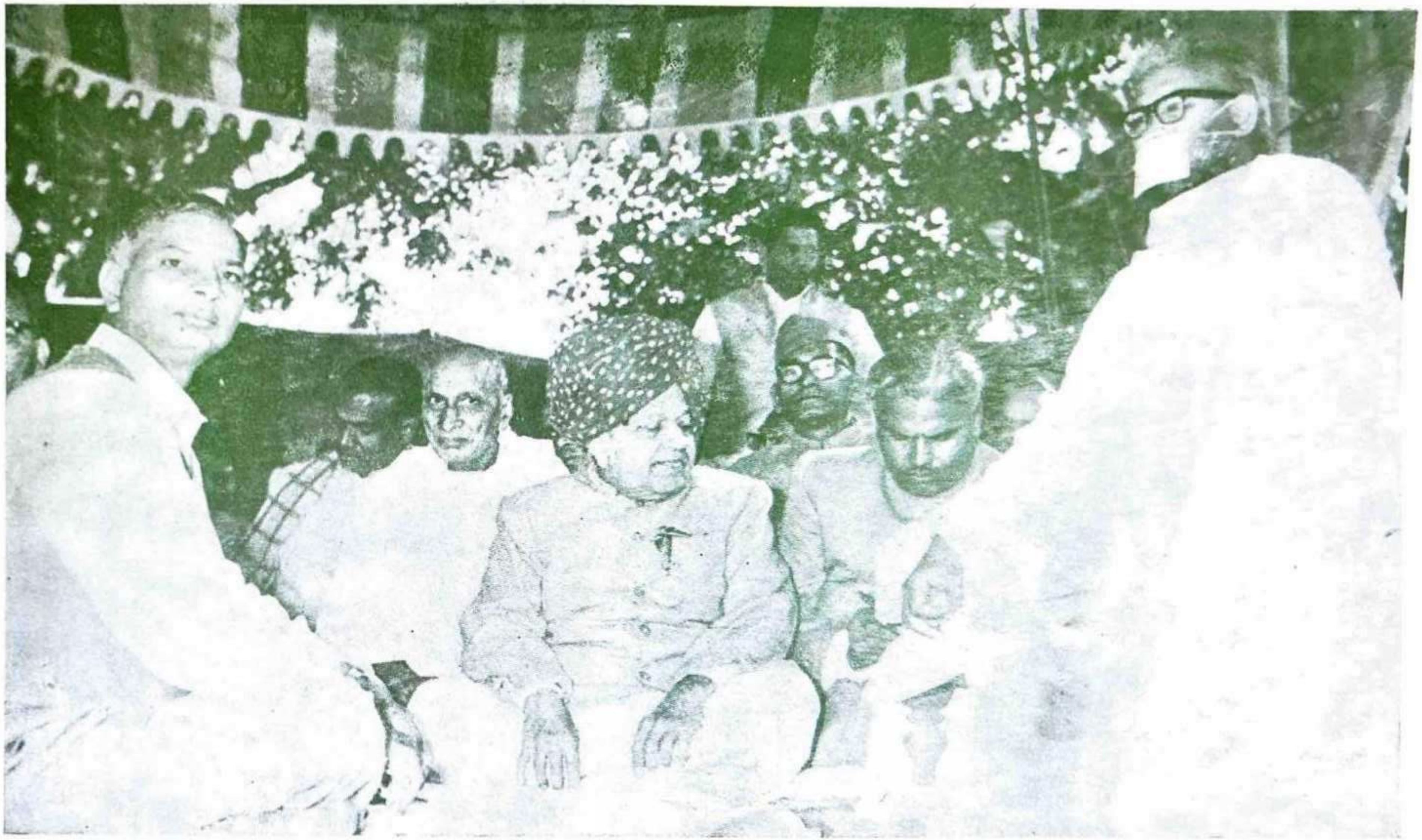

शिकोहपुर (वर्तमान सुशीलगढ़) अपनी जन्मभूमि में समारोह के अवसर पर हरियाणा के मन्त्री राव महावीर सिंह, श्री कृष्ण चन्द्राचार्य, द्रोणाचार्य कालेज के प्राचार्य श्री महेन्द्र कुमार कौशिक एवं मुनिजी

अपार जनसमूह को उद्‌बोधित करते हुए मुनि जी

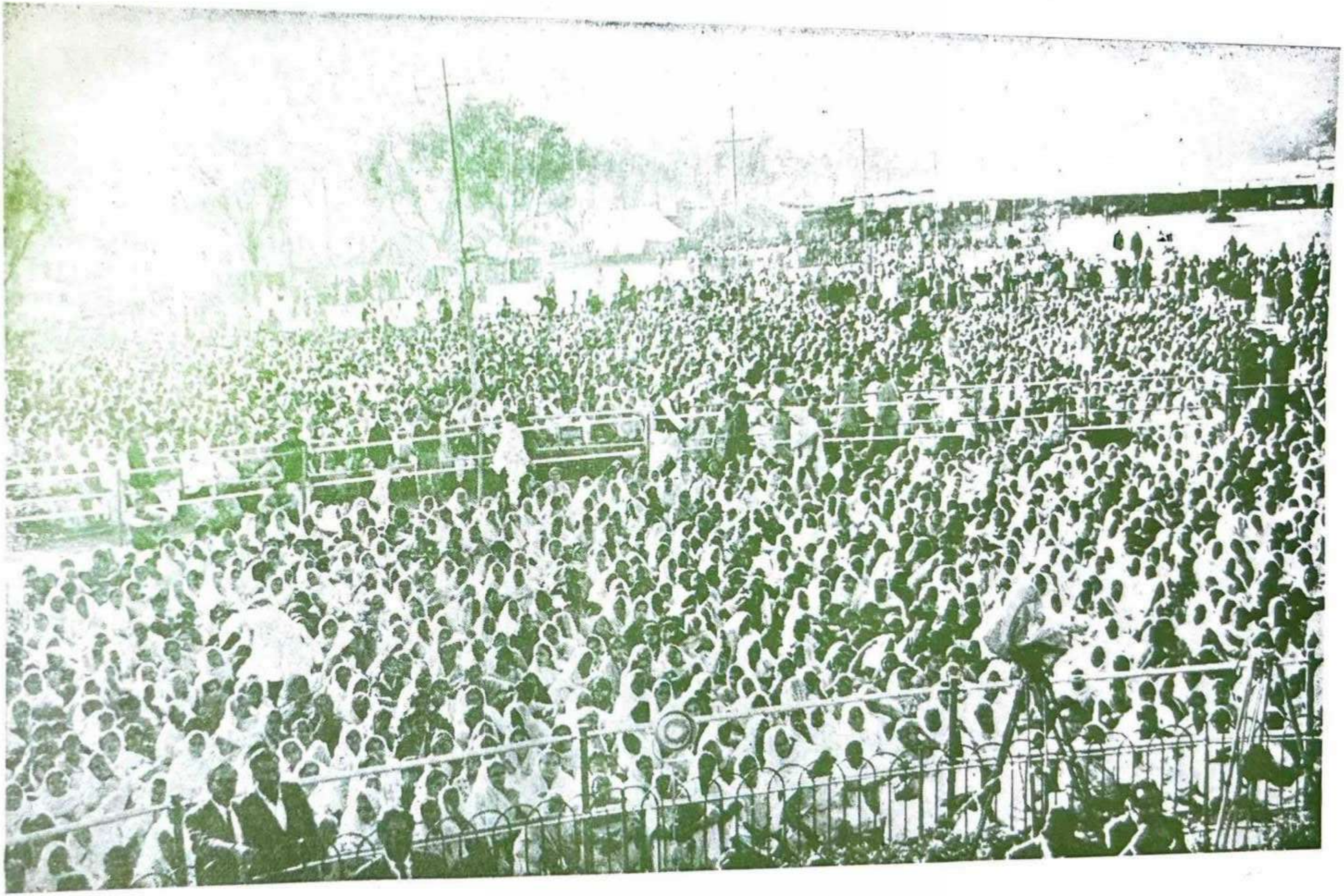

चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर एकत्रित जनसमूह

चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन में सम्मिलित होने वाले देशी एवं विदेशी प्रतिनिधि

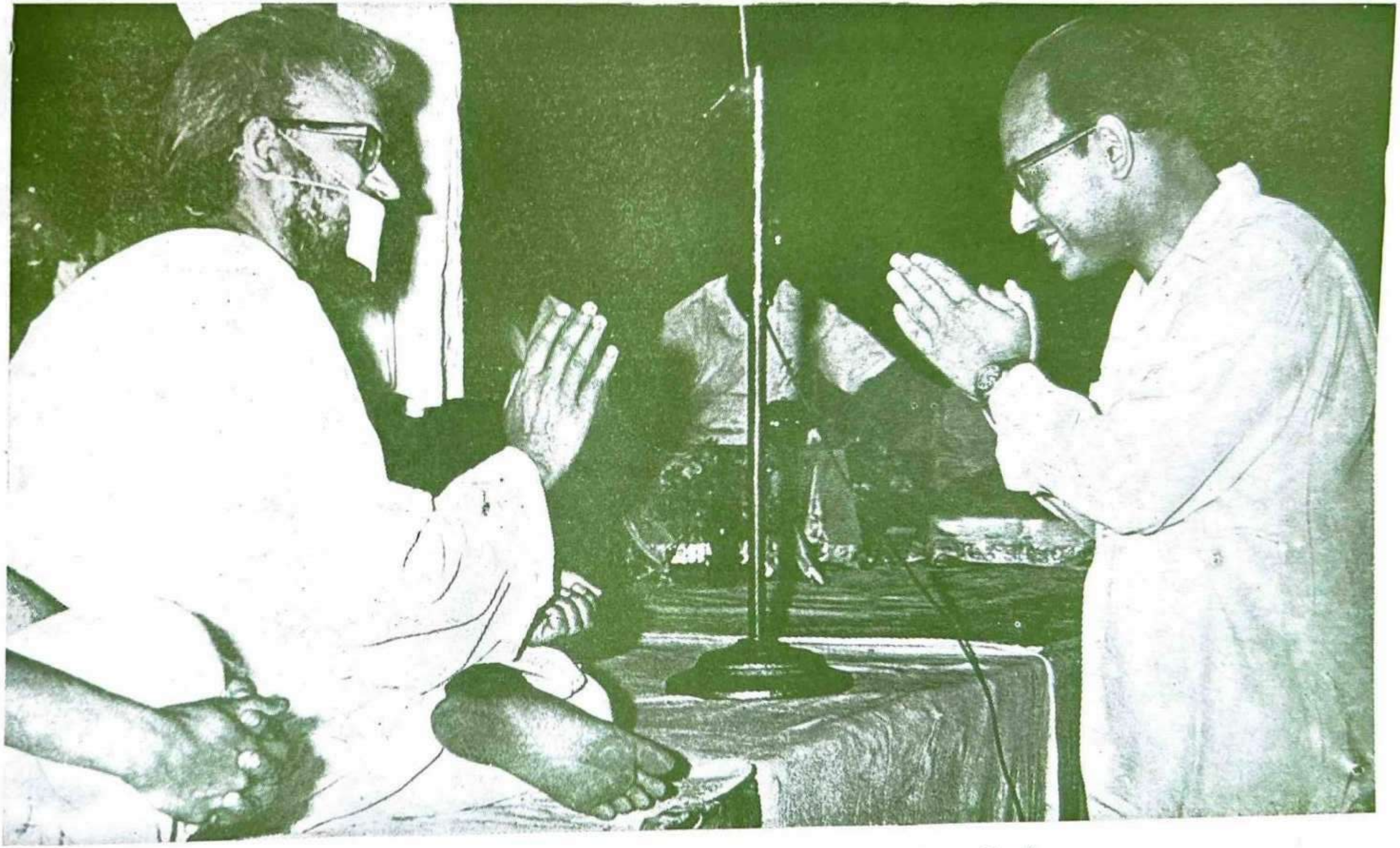

मुनिजी से आशीर्वाद ग्रहण करते हुए प्रसिद्ध बिधिवेत्ता डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

एक विद्वद्गोष्ठी में (बायें से) डा० बूलचन्द, डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, मुनिजी और श्री सुभाग मुनिजी एवं श्री जगन्नाथ नाहर

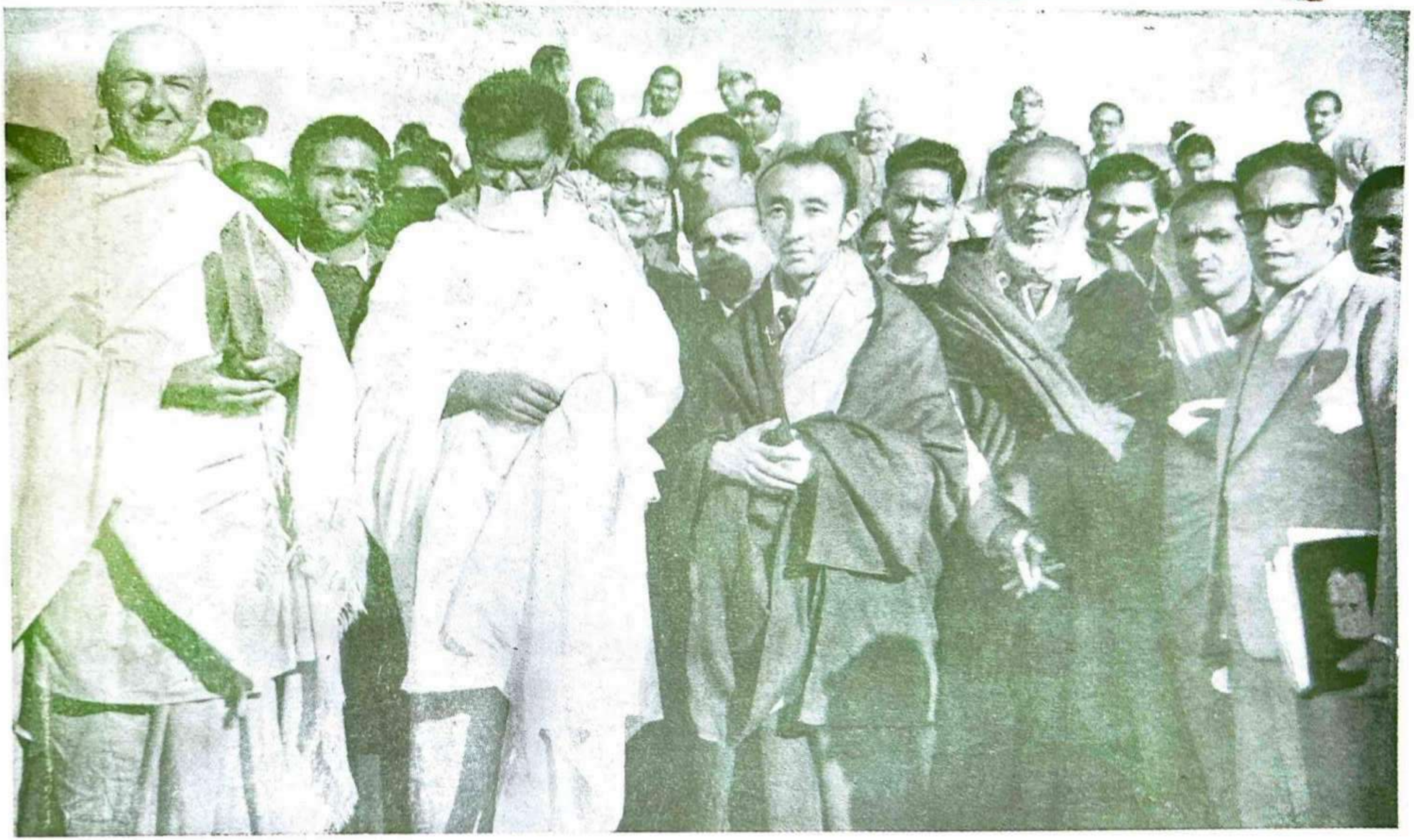

राजघाट पर कसाइयों के द्वारा पशुबलि विरोध का संकल्प ग्रहण करने के अवसर पर (बायें से) स्वीट्जरलैण्ड के धर्मगुरु, मुनिजी, लामा कुशिक बकुला, महाबोधि सोसायटी के मन्त्री आर्यवंश तथा अन्य कार्यकर्ता

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन को आशीर्वाद प्रदान करते हुए मुनि जी

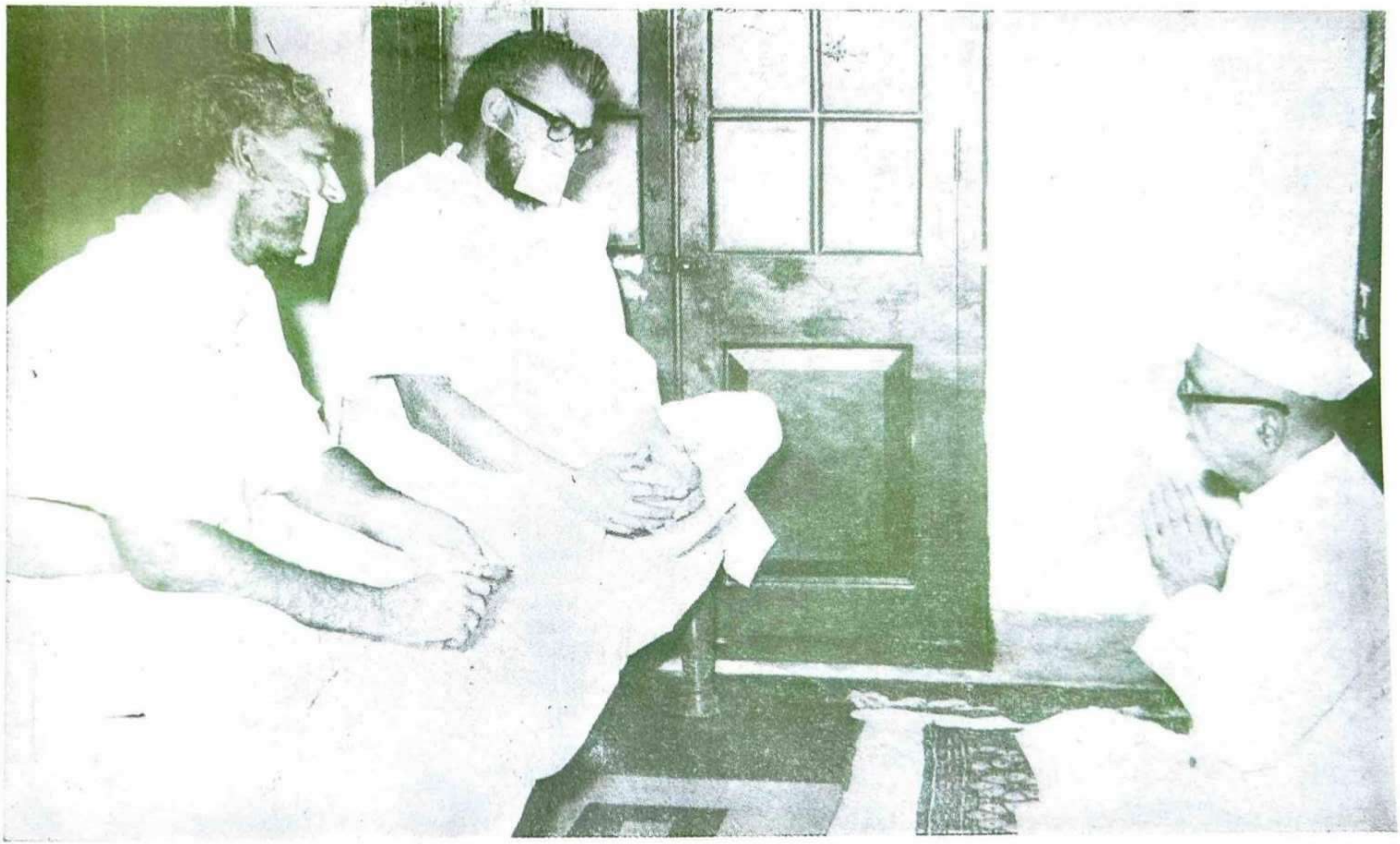

तत्कालीन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन, मुनि श्री शान्तिप्रिय जी एवं मुनिजी के सान्निध्य में

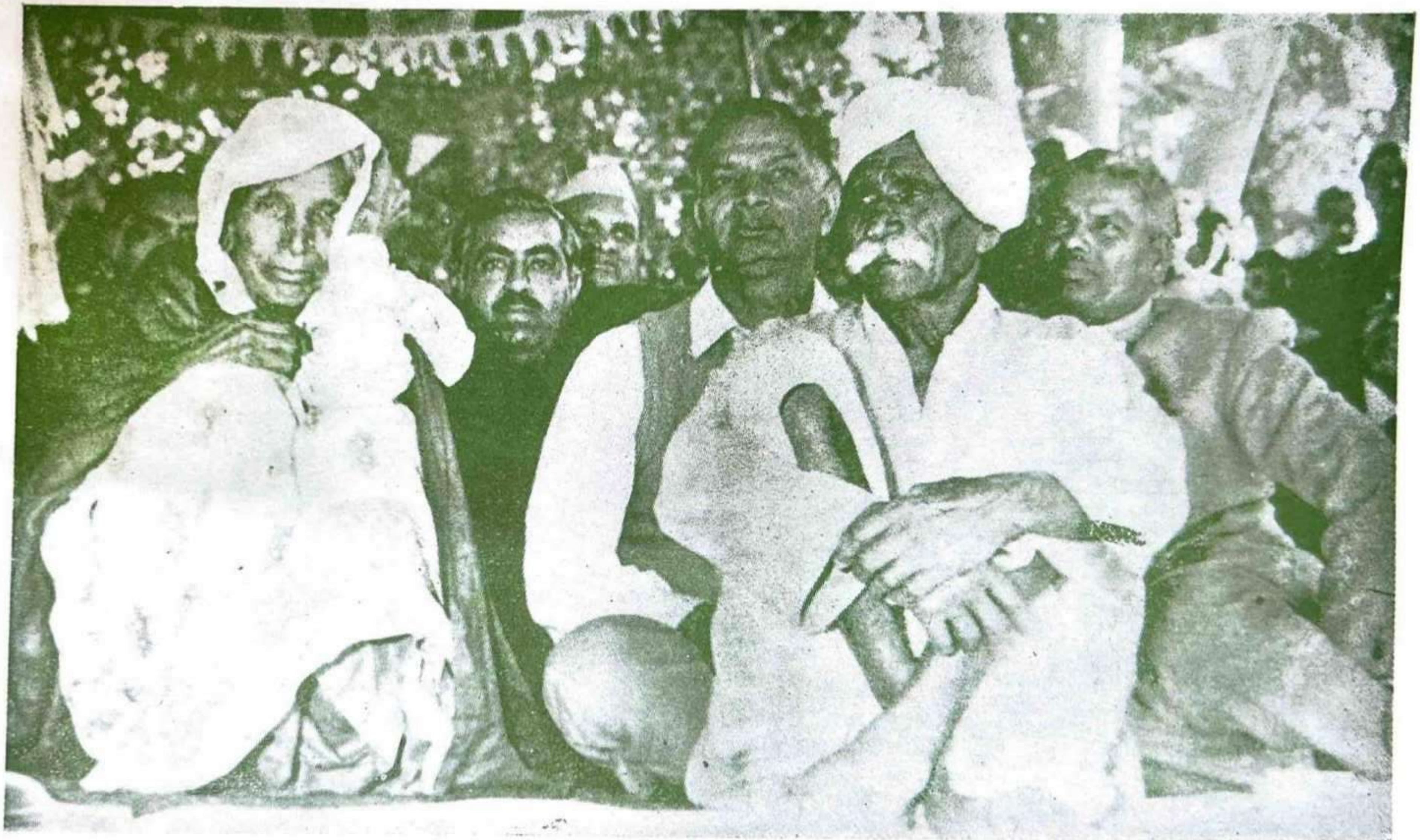

शिकोहपुर (वर्तमान सुशीलगढ़) में आयोजित जन-जागृति सम्मेलन के अवसर पर (दायें से) डा० के० सी० जैन, श्री महेन्द्र प्रकाश कौशिक, पण्डित सुनहरा सिंह (मुनि जी के संसारी पिता), राव महावीर सिंह एवं मुनि जी की संसारी माता श्रीमती भारती देवी

शिकोहपुर, जिला गुड़गाँव में आयोजित जन-जागृति सम्मेलन में उपस्थित अपार जन-समूह

महान् चिन्तक मुनि श्री सुशील कुमार जी

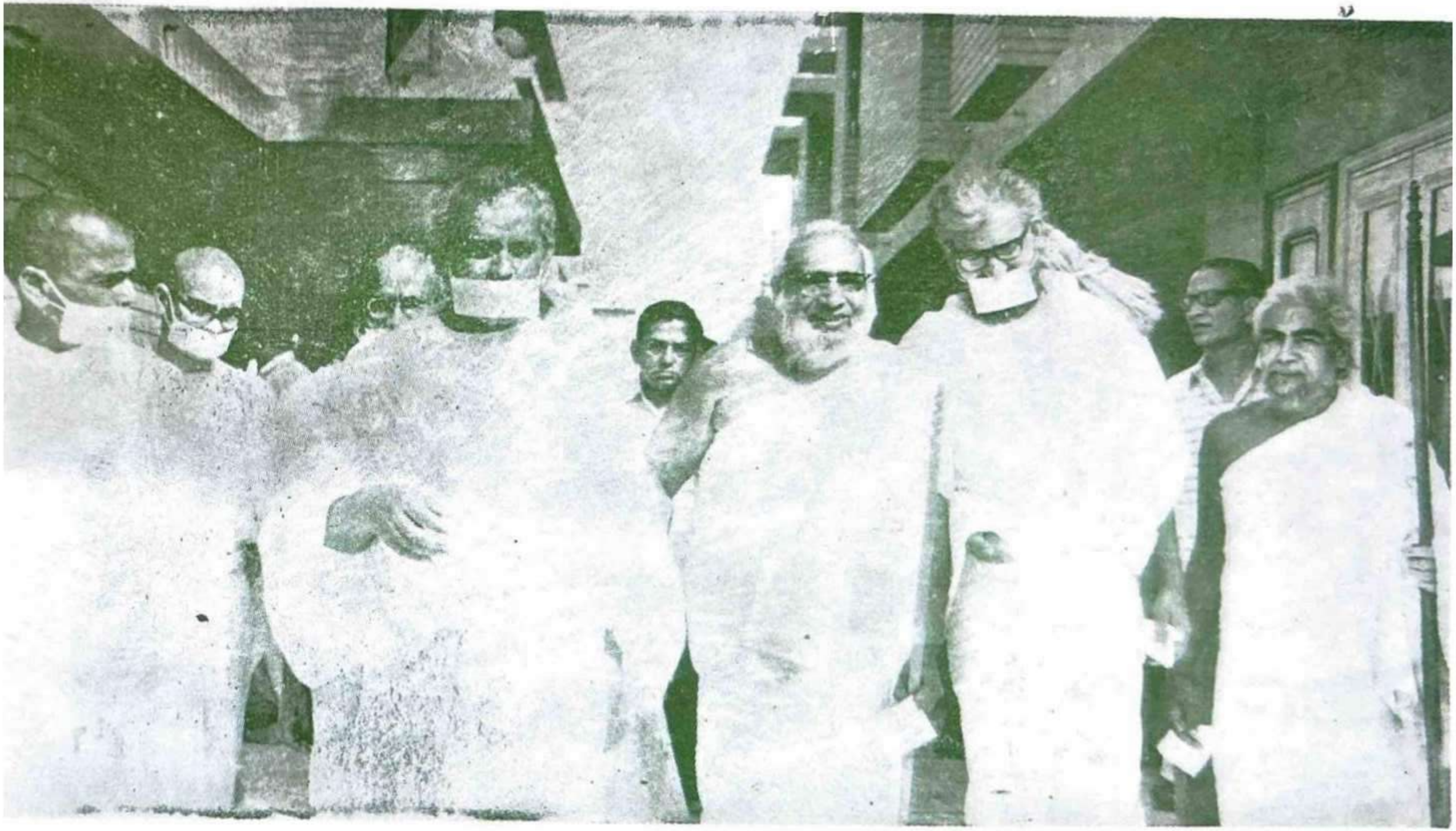

(बायें से) . मध्य में मुनि महेन्द्र कुमार एवं मुनि कांतिसागर के साथ मुनि जी

श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ निर्वाण-शताब्दी के कार्यक्रमों की चर्चा करते हुए मुनिजी

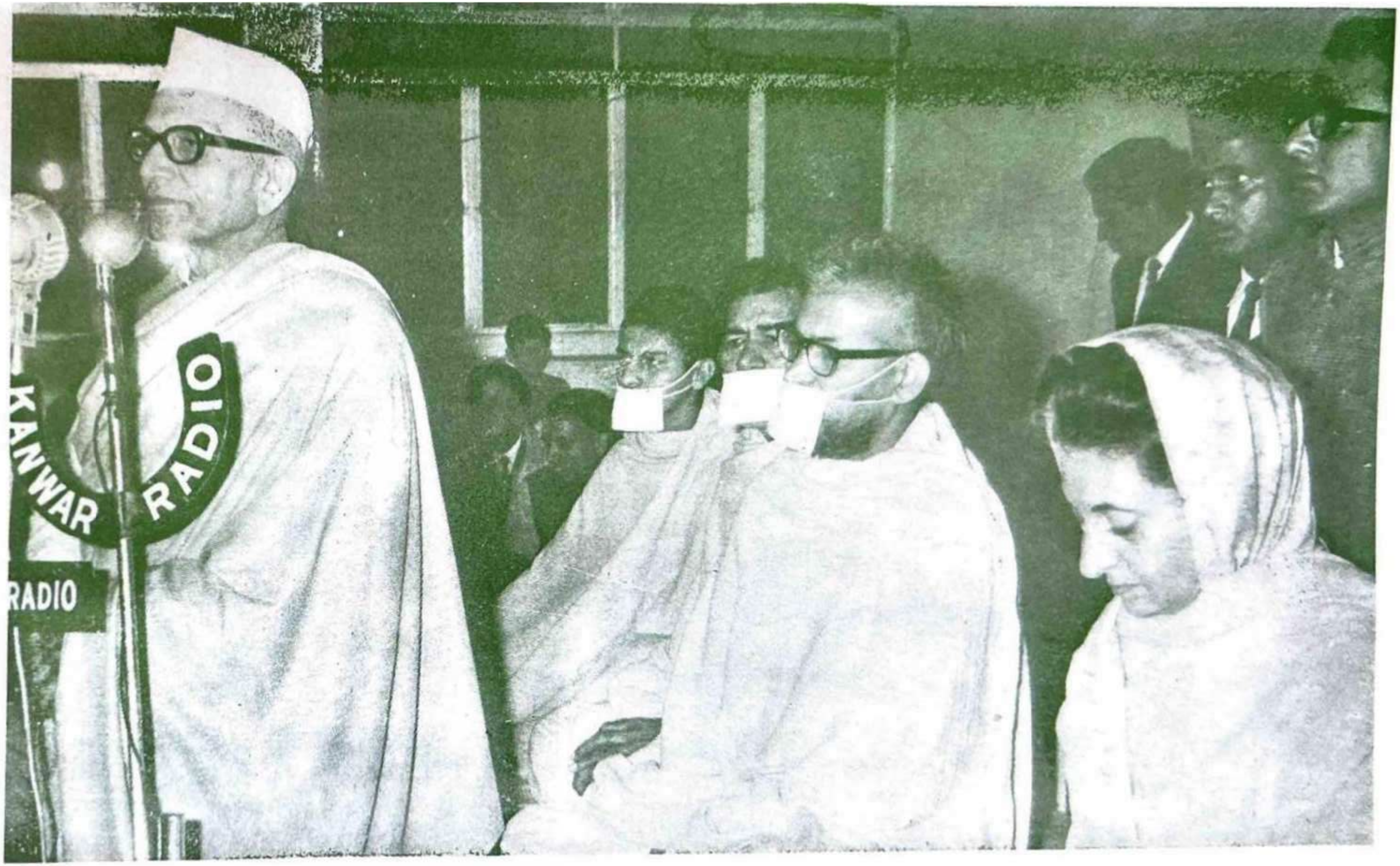


भगवान् महावीर निर्वाण-शताब्दी की राष्ट्रीय समिति के गठन के अवसर पर (माइक पर) श्री मोरारजी देसाई, श्री अशोक मुनि जी, श्री सुभाग मुनि जी मुनि जी एवं भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी

श्रीमती इन्दिरा गांधी मुनि जी से आशीर्वाद ग्रहण करती हुई

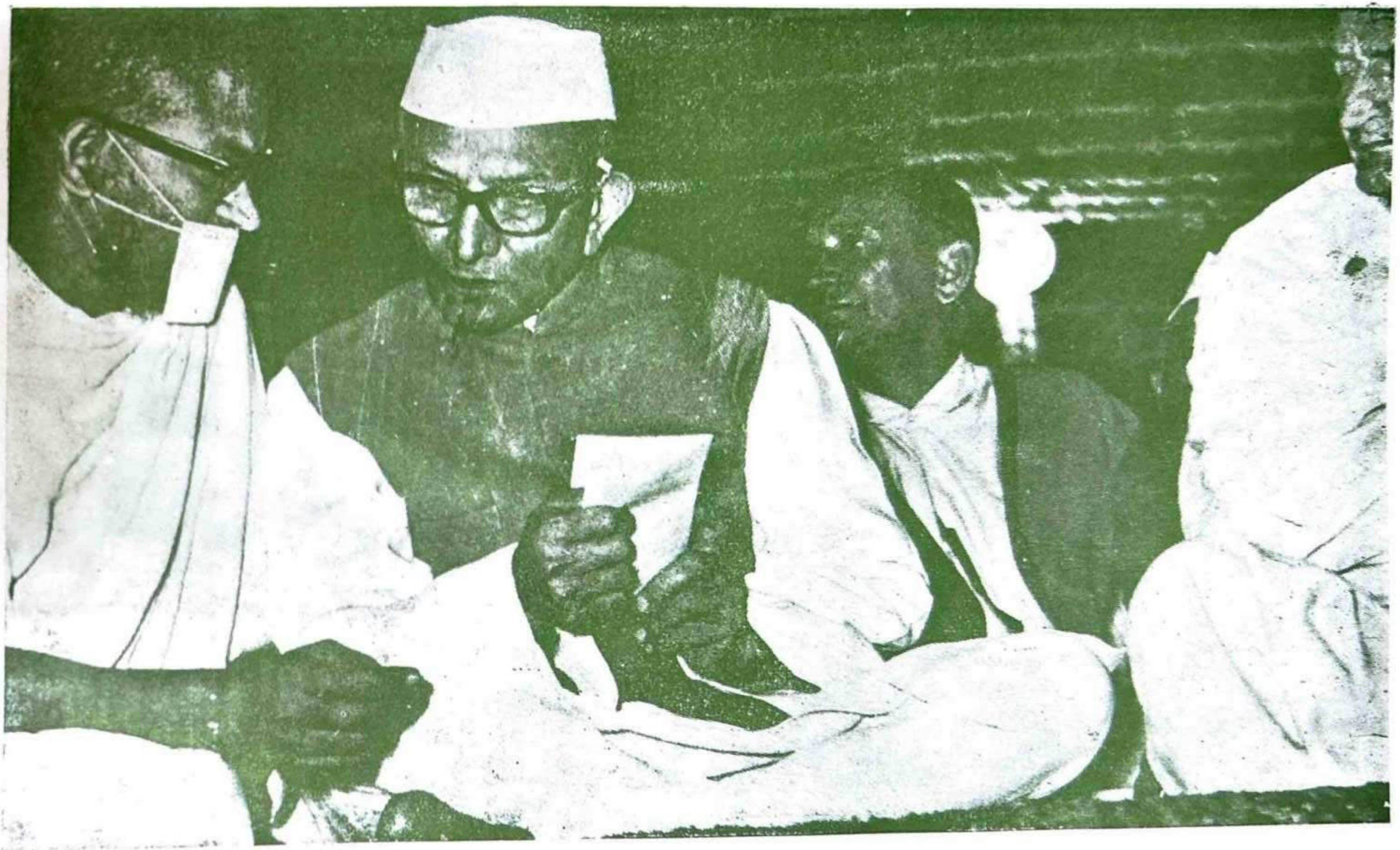

श्री मोरारजी देसाई के साथ भगवान् महावीर निर्वाण-शताब्दी के कार्यक्रमों की चर्चा करते हुए मुनि जी

मुनिजी द्वारा संस्थापित भगवान् महावीर संस्कृत-प्राकृत विद्यापीठ की छात्र-छात्रायें

मुनिजी अपने शिष्य-परिवार के साथ

जैन साध्वियों एवं जिज्ञासुओं को बोध प्रदान करते हुए श्री सुभाग मुनि जी एवं मुनि जी

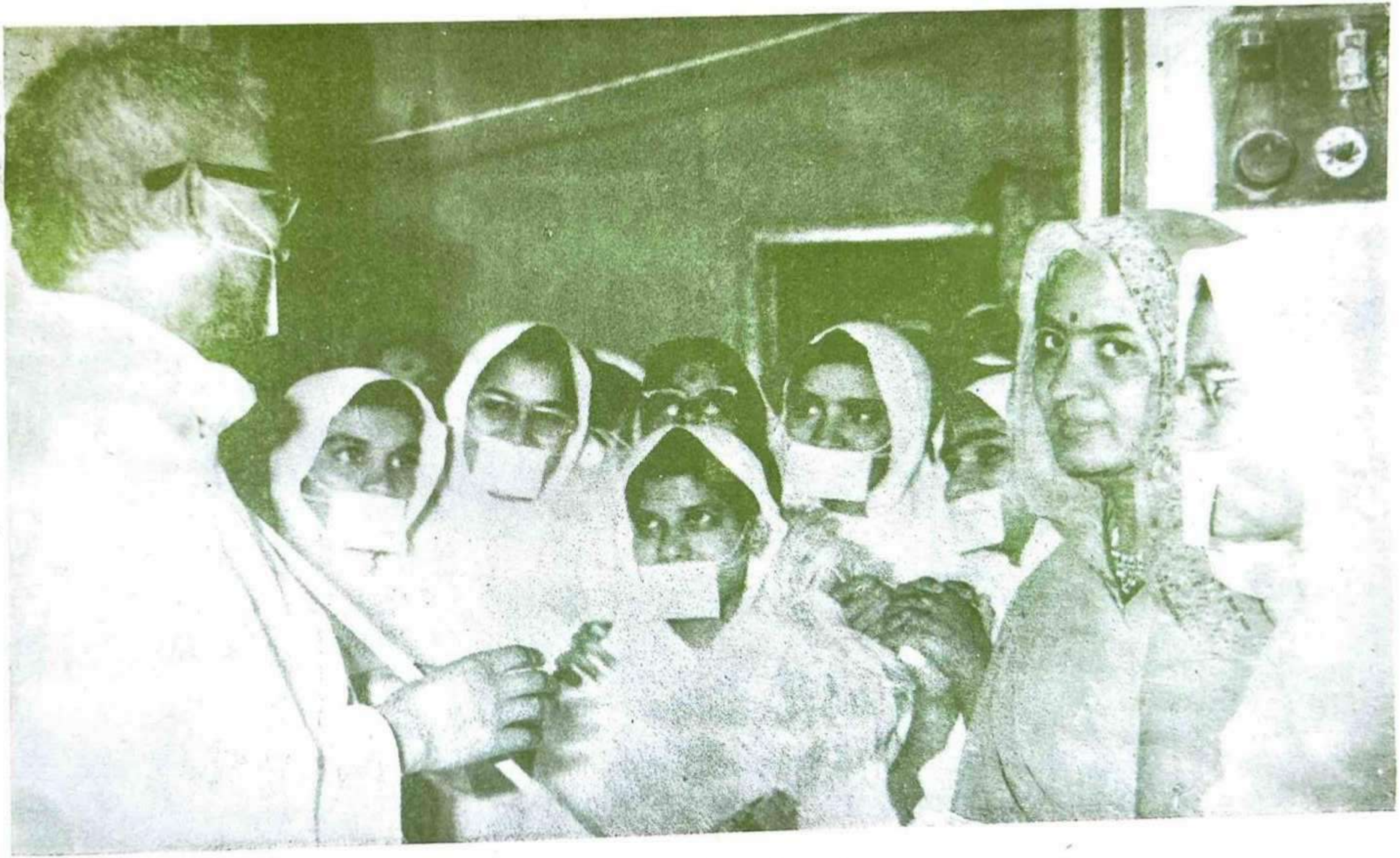

मुनिजी, साध्वियों से बातचीत करते हुए

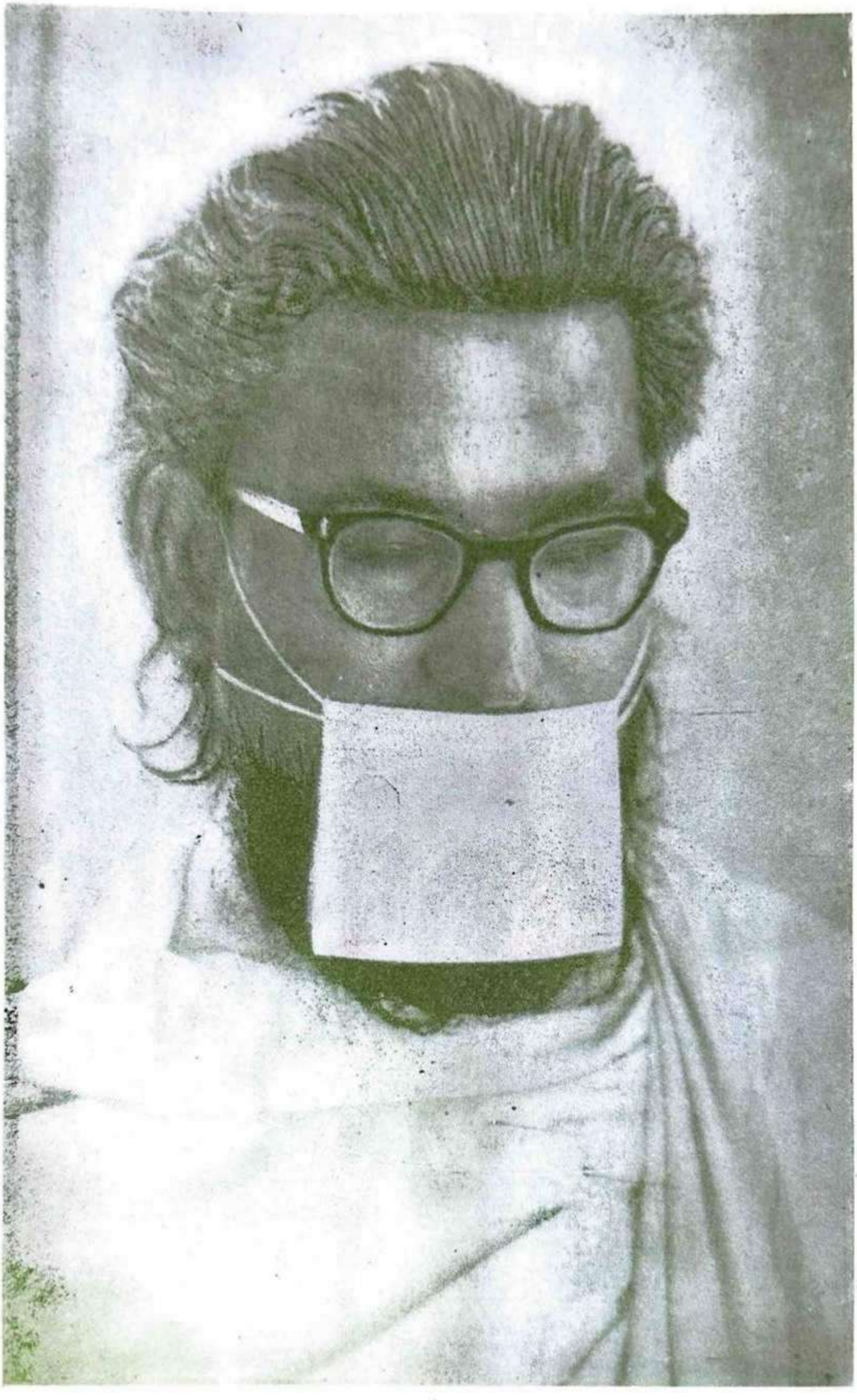

गम्भीर चिन्तन की मुद्रा में मुनि श्री सुशील कुमार जी

मुनिजी के सान्निध्य में दीक्षार्थी जगन्नाथ विजयेश को तिलक करते हुए विश्व विश्रुत
शिक्षा शास्त्री एवं वैज्ञानिक डा० दौलतसिंह कोठारी

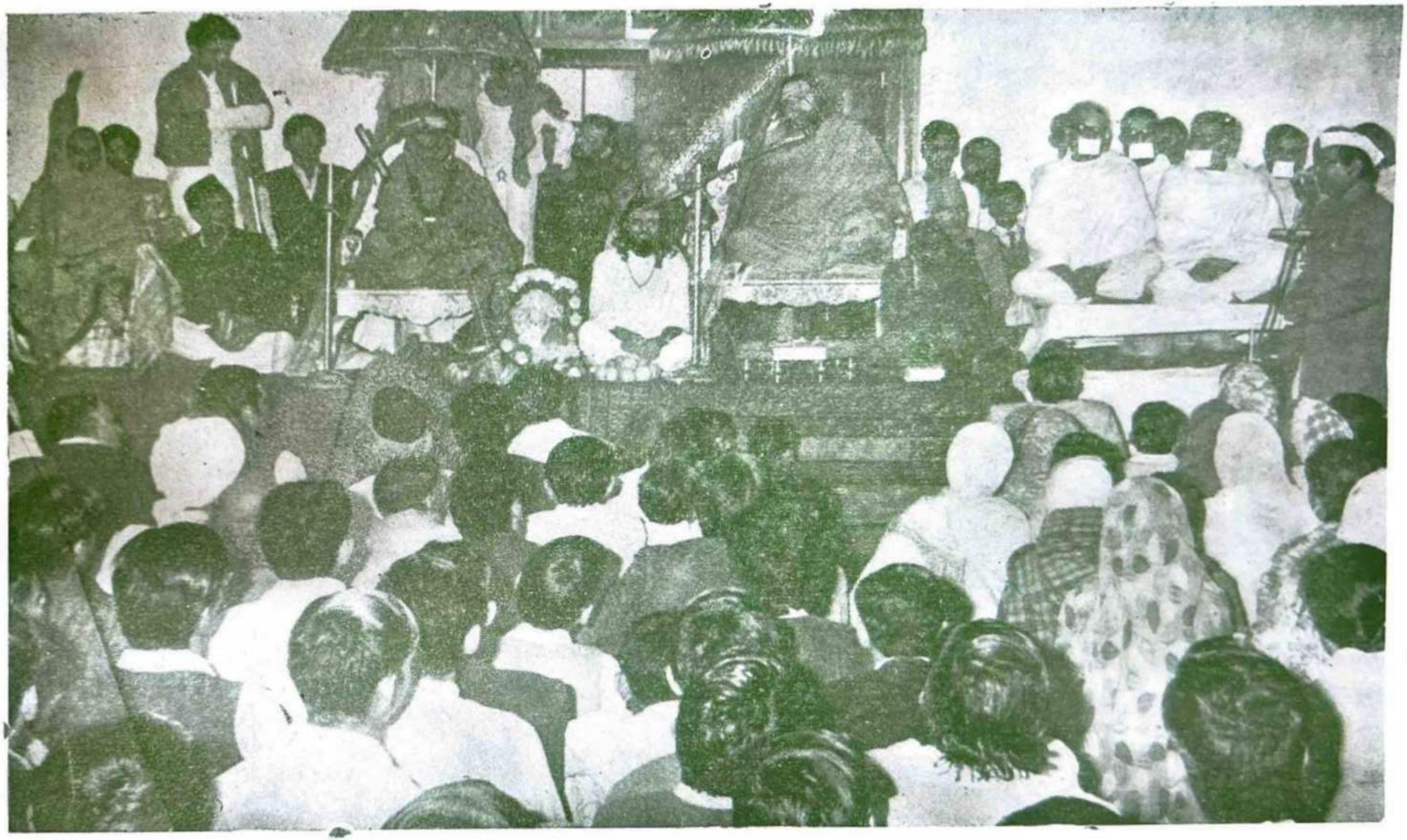

नवपट्टाभिषिक्त शंकराचार्य श्री स्वरूपानन्द जी सरस्वती के अभिनन्दन के अवसर पर (बायें से) पुरी के शंकराचार्य श्री निरंजन देव तीर्थ, द्वारिकापीठाधीश एवं श्री स्वरूपानन्दजी के साथ मुनिजी, श्री अमरेन्द्र मुनिजी, श्री सुभाग मुनिजी आदि

श्री महावीर विश्वविद्यापीठ के छात्र-छात्राओं एवं शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए मुनिजी

वर्तमान राष्ट्रपति श्री वराह गिरी वेंकट गिरी के साथ विचार-विनिमय करते हुए मुनिजी

अहिंसा भवन में आयोजित महावीर जयन्ती के अवसर पर वर्तमान राष्ट्रपति श्री वराह गिरी वेंकट गिरी के साथ मुनिजी

राष्ट्रपति गिरी को आशीर्वाद प्रदान करते हुए मुनिजी

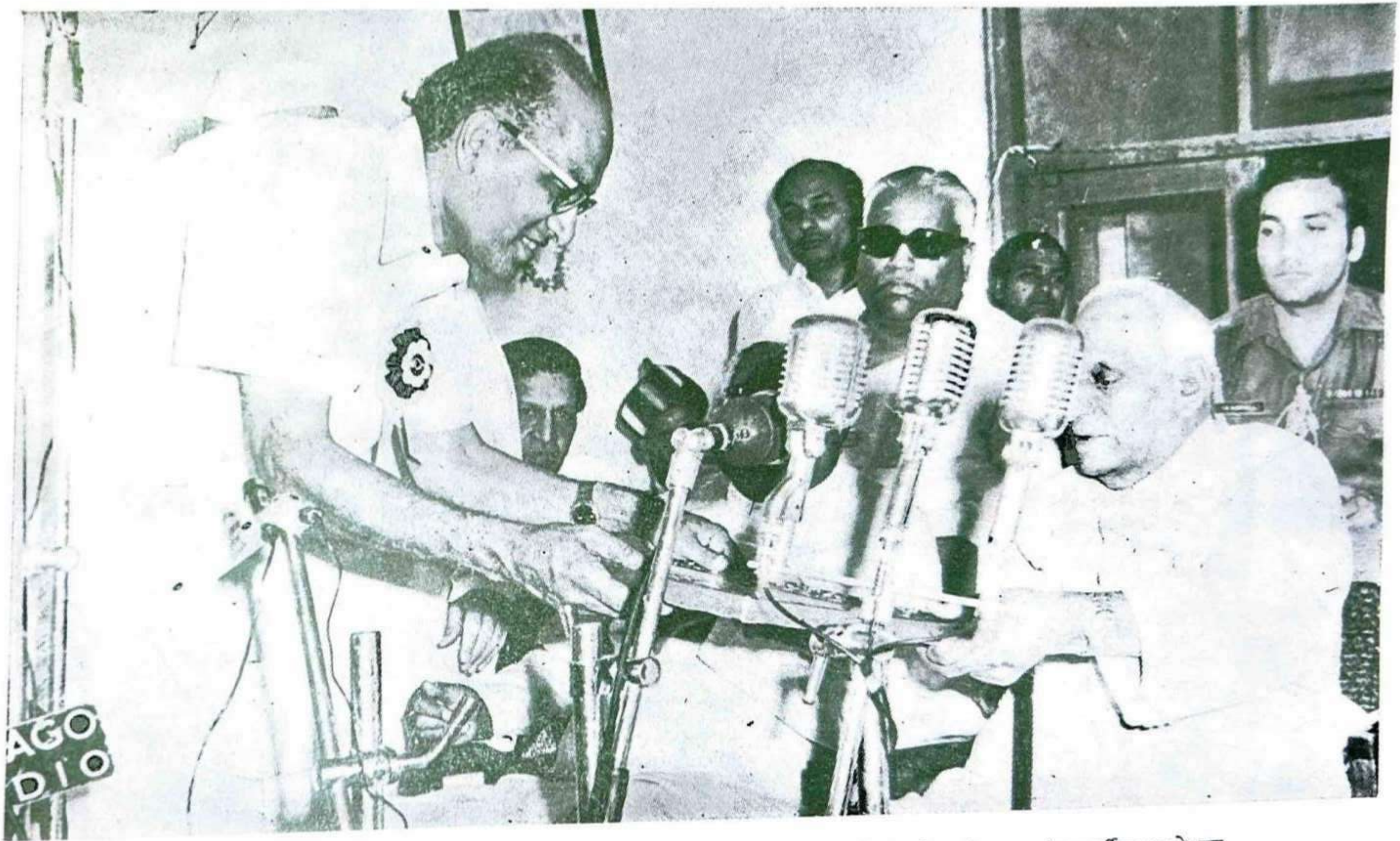


मुनिजी के अनन्य भक्त श्री अरिदमन जैन, राष्ट्रपति श्री वराह गिरी वेंकट गिरी को नमोक्कार मंत्र समर्पित करते हुए

श्री वराह गिरी वेंकट गिरी और श्री जगजीवन राम के बीच मुनिजी

वर्तमान प्रतिरक्षामंत्री श्री जगजीवन राम को आशीर्वाद प्रदान करते हुए मुनिजी

आत्मलीनता के एक क्षण में मुनिजी

उद्‌बोधन की गम्भीर मुद्रा में मुनिजी